# आर्यशूर की जातकमाला - एक आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद युनिवर्सिटी

को

डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

मार्गनिर्देशक :

प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डेय

अनुसन्धाता :

सुरेन्द्र पाल सिंह

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद युनिवर्सिटी इलाहाबाद

१९९२

## कृतज्ञता ज्ञापन

सर्वप्रथम मैं परमपूज्यपाद पिता श्रीमत्भूपाल सिंह जी के श्रीचरणों की वन्दना करता हूँ जिनके विविध धार्मिक ज्ञान एवं शुभाशीष से मैं प्रस्तुत बौद्ध धर्म विषयक गवेषणा के लिए सक्षम हो सका साथ ही वात्सल्यमूर्ति परमपूजनीया माता श्रीमतीरामप्यारी जी के चरणों का कोटिशः नमन करता हूँ जिनका शुभाशीष सदा-सर्वदा मेरे साथ रहा।

पूज्यपाद गुरुवर प्रो0 सुरेशचन्द्र पाण्डे जी का आभार मैं श्रद्धा, प्रणिपात एवं विनयपूर्वक शिरसा वहन करता हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के निर्माणार्थ प्रभूत अनुग्रह एवं सर्वविध साहाय्य प्रदान किया। उनके सहानुभूतिपूर्ण वात्सल्य की छत्रछाया में ही यह शोधकार्य पूर्ण हुआ अतः मात्र कृतज्ञता ज्ञापित कर उनसे अनृण होना कदापि सम्भव नहीं है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के समादरणीयविभागाध्यक्ष डॉ0 [illegible] श्रीवास्तव जी की शुभकामनाएँ मुझे प्राप्त होती रही हैं इसके लिए मैं विनम्र भाव से उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

समय-समय पर अपना अमूल्य सुझाव देने के लिए अनुभवी मित्र डॉ शेषनाथ द्विवेदी के प्रति जितनी भी कृतज्ञता ज्ञापित की जाय कम है। मेरे इस विनम्र प्रयास में गुरुओं के आशीर्वाद एवं मित्रों की शुभकामनाओं का भी योगदान रहा है जिसके लिए मैं हृदय से सबका आभारी हूँ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिसने अपनी रिसर्च फेलोशिप प्रदान कर मुझे हर तरह की कठिनाइयों का सामना करने और यथा समय शोधकार्य पूर्ण करने के लिए आर्थिक सम्बल प्रदान किया।

अन्ततः मैं अपने टंकक मित्र श्री विजय शंकर ओझा जी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने शोधानुभव और शुद्धतम टंकण-कार्य के द्वारा मुझे यथा समय सहयोग प्रदान किया।

मेरी तथा टंकक मित्र के प्रमादवश वर्ण-मात्रा आदि की अशुद्धियाँ रह गई होंगी अतः पाठकों से निवेदन है कि इन्हें सुधारकर पढ़ लेंगे। क्योंकि –

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

विनयावनत

सुरेन्द्र पाल सिंह

# भूमिका

बौद्ध धर्म एवं दर्शन पर आश्रित संस्कृत में लिखे गये काव्यों में आर्यशूर रचित "जातकमाला" अत्यन्त प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय काव्य है। वस्तुत: आर्यशूर को अश्वघोष की तरह महाकाव्यत्व के निर्वाह की एकसूत्रता नहीं मिली है क्योंकि जातकमाला का प्रत्येक जातक अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है जिसकी कथा पालि जातक में उपजीव्य वस्तुरूप में प्राप्त हुई है। उस कथावस्तु का अतिक्रमण न तो उचित था और न अपेक्षित ही। भगवान् बुद्ध जिस रश्मि से देदीप्यमान थे उसीका प्रबल प्रकाश इन जातकों को प्रभाभास्वर करता है। ये जातककथाएँ साधारण जनता को ही नहीं [illegible] को भी प्राणिमात्र के मोक्ष-तत्त्वों का परिचय सुन्दर तथा बालबोध रीति से कराती हैं और यही इन जातक - कथाओं की निर्मिति का मूल उद्देश्य है।

जहाँ गद्यलेखन में जातकमाला पर ललितविस्तर का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित हो है वहीं पद्यों में पालि वाङ्मय की छाप दिखती है या संस्कृत के अशुद्ध प्रयोग भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं। उनकी प्रतिक्रिया में आर्यशूर ने जातकमाला में अपने मौलिक श्लोक लिखकर यह दिखलाया है कि पालि-गाथाओं को किस प्रकार सफलतापूर्वक संस्कृत में उतारा जा सकता है। आर्यशूर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने बुद्ध के उपदेश को पाणिनिसम्मत शुद्ध संस्कृत के माध्यम से प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

विशेषरूप से बौद्धों के बीच में ही प्रचलित होने से जातकमाला की ओर समालोचकों की दृष्टि नहीं पड़ी फलत: इस पर कोई संस्कृत टीका नहीं मिलती। जान्स्टन ने जिन दो टीकाओं को उल्लेख किया है वे तिब्बतीय भाषा में हैं। प्रथम टीका के लेखक धर्मकी कहे जाते हैं और दूसरी पञ्जिका है। इनके अभाव में जातकमाला का अर्थ [illegible] के आधार पर ही जाना जा सकता है।

जातकमाला का प्रथम संस्करण हालैण्ड निवासी डॉ० हेन्ड्रिक कर्न ने तैयार किया था जो 1890 ई० में हार्वर्ड प्राच्यमाला के प्रथम ग्रन्थ के रूप में हार्वर्ड विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किया गया था। इसके सम्पादन का आधार था, कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की दो पाण्डुलिपियाँ (संख्या 1328 एवं 1415) तथा पेरिस के राष्ट्रीय ग्रन्थागार की एक पाण्डुलिपि (सं० 15)। इस संस्करण के विषय में प्रो० मैक्समूलर ने कहा है कि डच विद्वान् कर्न द्वारा प्रस्तुत जातकमाला का संस्करण उत्कृष्ट है और सम्भवतः उसमें पिरवर्तन न हो सकेगा।[1]

रायल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के पुस्तकालय में जातकमाला की दो पाण्डुलिपियाँ हैं जो नेपाल से आई हैं। ये दोनों नेवारी लिपि में लिखी हैं। इनमें से एक में अविषह्य जातक से प्रारम्भ होने वाले पाँच जातक हैं। यह (जी० 1980) ग्यारहवीं श० की नेवारी लिपि में तालपत्र पर लिखी है और खण्डित है। दूसरी पाण्डुलिपि (बी० 13) 18वीं श० की नेवारी लिपि में कागज पर लिखी है। इसमें "सुभाषराज" नामक एक जातक अधिक है। दोनों पाण्डुलिपियाँ कर्न के संस्करण से मिलती हैं। जातकमाला का चीनी अनुवाद सन् 960 से 1127 ई० के बीच हुआ जिसमें मात्र 14 जातकों का समावेश है।

इसका अंग्रेजी अनुवाद सर्वप्रथम प्रो० जे०एस०स्पेयर ने किया है। यह संस्करण आक्सफोर्ड की बौद्धधर्म-ग्रन्थमाला के प्रथम ग्रन्थ के रूप में सन् 1895 ई० में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस में छपकर प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक मैक्समूलर थे। स्पेयर ने ही

---

1. The edition of the Sanskrit text by Pro. Kern is not only an 'edito princeps' but the text as restored by him will probably remain the final text.

सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान जातकमाला की साहित्यिक विशेषताओं की ओर आकृष्ट किया। इन्होंने इस ग्रन्थ के पूरे एक अनुच्छेद में इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[1]

भारतवर्ष में भी जब विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में जातकमाला का सन्निवेश हुआ तब चुने हुए जातकों के कतिपय संस्करण प्रकाशित हुए। इन संस्करणों में पं०बटुकनाथ शास्त्री के संस्करण में चुने हुए ।। जातक उनकी बाला नामक संस्कृत टीका के साथ प्रकाशित हुए। श्री सूर्यनारायण चौधरी ने भी क्रमशः प्रथम 20 जातकों का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम संस्करण तथा शेष जातकों को पूराकर द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया है।

मिथिला विद्यापीठ दरभंगा से बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली के अन्तर्गत डॉ० पी०एल० वैद्य के सम्पादन में सन् 1959 ई० में जातकमाला का एक संस्करण प्रकाशित हुआ है। इसमें आर्यशूर के नाम से प्राप्त "सुभाषितरत्नकरण्डक कथा" परिशिष्ट के रूप में पहली बार प्रकाशित हुई है।

डॉ० कमलाकान्त मिश्र ने "जातकमाला एक अध्ययन" नामक एक शोधप्रबन्ध गंगानाथा झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद से सन् 1977 ई० में प्रकाशित किया है। आपने लेखक आर्यशूर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा संस्कृत साहित्य में जातकमाला की पृष्ठ-भूमि निर्धारित किया है साथ ही संस्कृत आलोचना के सिद्धान्त जैसे रस-भाव-रीति-गुण छन्द-अलंकोरों के आलोक में भी जातकमाला का मूल्यांकन किया है।

---

1. It has perhaps been the most prefect writing of its kind. It is distinguished no less by the superiority of its style than by the loftiness of its thoughts. Above all, I admire his moderation . Unlike so many other Indian mastery in the art of literary composition he does not allow himself the use of embellishing apparel.

जातकमालाकार का व्यक्तित्व एवं काल निर्धारण तथा मातृचेट व अश्वघोष से उनकी अभिन्नता विषयक अध्ययन किया जाय तो महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आ सकते हैं। जातकमाला के साहित्यिक पर्यालोचन के साथ ही पालि जातकट्ठकथा से उसका तुलनात्मक विवेचन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इससे कलाकार कवि आर्यशूर का काव्यात्मक परिवर्तनजन्य वैशिष्ट्य प्रस्तुत होगा। इसी प्रकार पालि जातकों का उद्गम, स्वरूप, प्राचीनता, संख्या, जातकट्ठकथा के लेखक व उनका समय विषयक मत भी अपना अलग स्थान रखते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ उपर्युक्त दिशा में किया गया एक विनम्र प्रयास है।

## विषयानुक्रमणिका

सहायक ग्रन्थ सूची - पृष्ठ संख्या 436 से 461

# प्रथम अध्याय

## जातकमालाकार आर्यशूर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

## आर्यशूर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

"जातकमाला" के लेखक आर्यशूर के व्यक्तित्व के विषय में अन्त:साक्ष्यों का नितान्त अभाव है। कला और सौन्दर्य के उपासक, रूप और ऐश्वर्य के प्रशंसक, प्रवृत्तिपरक कवि कालिदास ने यदि अपनी कृतियों में अपने जीवन पर कुछ प्रकाश नहीं डाला है तो त्याग-तपस्या, करुणा और परोपकार की अमृत रस-धारा बहाने वाले निवृत्तिपरक कवि आर्यशूर भला अपने विषय में क्या लिख सकते थे ? कुछ बाह्य तथ्यों के आधार पर ही इनके व्यक्तित्व का निर्धारण किया जा सकता है। किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचने के पहले विभिन्न विद्वानों के विचार जान लेना आवश्यक है।

विण्टरनित्ज के अनुसार जहाँ तक शैली का प्रश्न है कविशूर[1] या आर्यशूर "कल्पनामण्डितिका" का घनिष्ठ रूप से अनुकरण करता है। साथ ही यह भी कहते हैं कि जैसे कि एक दूसरी कृति (आर्यशूर की) चीनी भाषा में 434 ई0 में अनूदित हुई है, अत: कवि चौथी श0 का सम्भवत: हो सकता है।[2]

---

1. विण्टरनित्ज, जे॰एस॰स्पेयर, मैक्समूलर, जी॰के॰नारीमन आदि ने आर्यशूर को शूर भी कहा है।  द्रष्टव्य---
   विण्टरनित्ज कृत हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर II, पेज 273·
   जे0एस0 स्पेयर सम्पादित जातकमाला भूमिका पृष्ठ - 24
   प्रो0 मैक्समूलर, स्पेयर सम्पादित जातकमाला, प्रस्तावना पृष्ठ -16-17
   जी0के0नारीमन-लिटरेरी हिस्ट्री आफ संस्कृत बुद्धिज्म, पृष्ठ -41
2. The Jatakamala by the poet Sura or Aryasura, resembles the Kalpanamandatika very closely as far as style is concerned.

   As another work by Aryasura was already translated into Chinese in 434 C.AD., the poet probably belongs to the 4th Century A.D.

   (History of Indian Literature, Vol. II, Page-270)

कीथ ने आर्यशूर के व्यक्तित्व पर व्यापक प्रकाश डालते हुए कहा है कि "अश्वघोष का प्रभाव आर्यशूर द्वारा रचित जातकमाला में निश्चित रूप से परिलक्षित होता है। इसमें बुद्ध के पूर्व जन्मो के कार्यो की उपदेशपूर्ण लघु कथाओं के रूप में व्याख्यानों या उपदेशों का सुन्दर और रोचक संग्रह है। काव्यशैली की संस्कृत में इन कथाओं का लिखा जाना ही संस्कृत में इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि संस्कृत का प्रयोग राजकीय क्षेत्रों में साहित्य सर्जन और शास्त्रार्थों के लिए होने लगा था और उन राजकीय क्षेत्रों से आर्यशूर के निकट सम्बन्ध की हम असन्दिग्ध रूप से कल्पना कर सकते है।" उन्होंने आगे लिखा है कि "ईत्सिंग ने लिखा है कि जातकमाला उसके समय बौद्धों में प्रचलित एक पुस्तक थी। अजन्ता के रंगीन भित्तिचित्रों में ऐसे चित्र और पद्य हैं जो इस समय जातकमाला का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। दुर्भाग्यवश इस साक्ष्य का काल निश्चित नहीं है परन्तु लेखशैली से इन भित्तिचित्रों का समय छठो शताब्दो प्रतीत होता है। यह इस बात से भी मेल खाता है कि आर्यशूर के एक अन्य ग्रन्थ का अनुवाद 434 ई0 में चीनी भाषा में किया गया था। इसलिए आर्यशूर ने तीसरी या चौथी शताब्दी में अपने ग्रन्थों की रचना की होगी।[1]

जी0के0 नारीमन ने भी जातकमाला का सूत्रालंकार से शैलीगत पर्याप्त साम्य बताया है तथा सूत्रकालंकार की शैली का अनुकरण करने से आर्यशूर को उससे

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, हिन्दी अनुवाद - मंगल देव शास्त्री पृष्ठ-85

अवान्तरकालिक कहा है।[1]

गङ्गाराम गर्ग ने आर्यशूर को जातकमाला का लेखक बताया है, और इत्सिंग के विवरणानुसार अजन्ता के भित्तिचित्रों में जातककथाओं का चित्रण होने से उस समय उनका अस्तित्व सिद्ध किया है। साथ ही यह भी कहा है कि जातकमाला के 434 ई0 में चीनी भाषा में अनूदित होने से आर्यशूर सम्भवत: तीसरी या चौथी शताब्दी में रहे होंगे।[2] इसी तरह के विचार सुरेश चन्द्र बनर्जी ने "ए कम्पेनियन टू संस्कृत लिटरेचर" में व्यक्त किये हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. " Better known is poet Sura or Aryasura, probably issuing from the same school, although of a considerably younger date whose Jatakamala strongly, resembles the Sutralankara in style ".

(Literary History of Sanskrit Buddhism , Page 41 )

2. A Sanskrit writer and author of the Sanskrit rendering of Jataka tales in the form of Jatakamala. The Chinese traveller Itsing mentions the Jatakamala and frescoes of Ajanta bear out the existence of the text at that time. . . . . . . . . . The Jatakamala was rendered into Chinese in A.D. 434 and Aryasura, therefore, probably lived in 3rd ,4th Century A.D.

(An Encyclopedia of Indian Literature P. 26) .

प्रो0 मैक्समूलर ने आर्यशूर के तिथिनिर्धारण को कठिन बताया है। तारानाथ के विवरणानुसार उन्होंने आर्यशूर,अश्वघोष,पितृकेट,मातिकेतृ आदि को एक ही व्यक्ति बताया है। इसी आधार पर वह यह भी कहते है कि आर्यशूर ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में राजा कणिक{कनिष्क} के समकालिक थे और उन्होंने 100 जातक लिखने प्रारम्भ किये थे, किन्तु 34 जातक लिखकर ही वे मर गये। इस,प्रकार यदि तारानाथ के विवरण पर विश्वास करें तो आर्यशूर बुद्धचरित के लेखक अश्वघोष से भिन्न थे और प्रथम श0 ई0 में रहे होंगे। आर्यशूर छन्दोविशेषज्ञ बताये गये हैं {तारानाथ पी0 1,8 1}लेकिन प्रो0 मैक्समूलर ने अन्तत: कहा है कि तिथियाँ भारतीय साहित्यिक इतिहास में कमजोर बिन्दु रही हैं। तिब्बती साहित्य और तारानाथ द्वारा अपनाये गये प्रमाणों के अध्ययन को उन्होंने भविष्य में इस विषय में नवप्रकाश डालने वाला कहा है।[1]

---

1. The date of Aryasura is difficult to fix. Tarantha states that Sura was known by many names such as Aswaghosha, Pitriketa, Matikitra. He also states that towards the ends of his life sura was in correspondence with king Kanika (Kaniska ?) and that he began to write 100 Jatakas but died when he had finished only thirty four. It is certainly curious that our Jatakamala contains thirty four Jatakas. If, therefore, we could rely on Taranatha Aryasura being identical with Aswaghasha, the author of the Buddhacharita, would have lived in the first century of our era. He is mentioned a great authority of metres (Tarantha P I 81 ) and he certainly handles his metres with great skill, but dates are always the weak point in the history of Indian Literature. Possibly the study of Tibetan Literature and a knowledge of the authorities on which Taranatha relied, may through more light hereafter on the date of Sura and Aswaghosha.

(Pro. Maxmuller, in the preface page XVI-XVII of Jatakamala edited by Speyer )

जे0एस0स्पेयर अपनी जातकमाला की भूमिका में कहते हैं कि लेखक के व्यक्तित्व व समय के विषय में जानकारी नहीं के बराबर है। हस्तलिपि में वह आर्यशूर नाम से कहा गया और चीनी परम्परा में भी इसकी अभिपुष्टि होती है। जातकमाला का चीनी भाषा में अनुवाद 960 और 1127 ई0 में हुआ है। स्पेयर ने तारानाथ के विवरण का खण्डन किया है और कहा हैं कि शैली और भावों की दृष्टि से एकदम भिन्न दो कृतियाँ-जातकमाला और बुद्ध चरित-एक व्यक्ति की रचनाएँ नहीं हो सकती है। डॉ0 ओल्डनबर्ग का हवाला देते हुए स्पेयर ने कहा है कि आर्यशूर का समय अधिकतम सातवीं शताब्दी हो सकता है जबकि ईत्सिंग जातकमाला के विषय में वर्णित करता है। साथ ही आर्यशूर के कर्मफल के ऊपर रचित सूत्र के 434 ई0 में चीनी भाषा में अनुदित होने से उनका समय इसके पहले ही निर्दिष्ट किया है। इस निष्कर्ष के समर्थनमें वह तात्कालिक भाषागत शुद्धता और लालित्य का,प्रमाण देते हैं जो उस समय के उच्चस्तरीय साहित्यानुराग को प्रदर्शित करते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि कर्म आर्यशूर को कालिदास और वाराहमिहिर की शताब्दी में रखने के लिए इस तर्क से परिचित थे। तिस पर भी स्पेयर आर्यशूर को बुद्धचरित से उत्तरवर्ती बताते हैं।[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Concerning the person of the author and his time nothing certain is known. That he was called Aryasura is told in the manuscripts and is corrcborated by Chinese tradition, the Chinese ~~tradition~~ translation of the Jatakamala made between 960 and 1127 A.D. bears Aryasura as famous teacher and the author of the our collection of stories Tarantha identifies him with Aswaghosha and adds many names by which the same great man should be known. It is however impossible that two works so entirely different in

आर्यशूर अश्वघोष के अनुयायी बौद्ध दार्शनिकों में से हैं। बुद्धचरित के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दार्शनिक पृष्ठभूमि में तो बुद्ध-चरित का प्रभाव जातकमाला में दिखाई ही पड़ता है, शैलीगत एवं वर्णनात्मक साम्य भी पर्याप्त-रूपेण परिलक्षित होता है। दृष्टान्त के लिए बुद्धचरित के प्रथम सर्ग के श्लोक 40 से

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

style and spirit as the Buddhacharita and Jatakamala, should be ascribed to one and the same author as to his time Dr. Oldenburg observes that the terminus antequem is the end of the 7th C.A.D. since it seems that the Chinese traveller Itsing speaks of our garland of Birth Stories. If No.1349 of Bunyiu Nangio's catâlogue of the Chinese tripitika, being Sutra on the fruits of Karma briefly explained by Aryasura, is written by our Author there seams to be no reasonable objection to this Sura must have lived 434 A.D. when the latter work is said to have been translated into Chinese. This conclusion is supported by the purety and elegance of the language which necessarily , point to a period of a high standard of literary taste and a flourishing state of letters. Pro.Kern was introduced by this reason to place Sura approximately in the century of Kalidash and Varahamihira , but equally favourable circumstances may be supported to have existed a couple of centuries earlier. I think however, he is posterior to the author of the Buddhacharita. For other questions, concerning to the Jatakamala which it would be too long to dwell upon here, I refer to Kern's preface and Oldenburg in Journal of Asiatic Society 1893 P.P. 306-309.

( Speyer's Jatakamala , Introduction Page XXVII )

लेकर 45 तक के श्लोकों की तुलना जातकमाला के "हस्ति-जातक" के श्लोक 26 से 30 तक के श्लोकों से की जा सकती है। बुद्ध के जन्म होने पर प्राकृतिक प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अश्वघोष उक्त सर्ग में कहते हैं-

यस्मिन् प्रसूते गिरिराजकीला वाताहता नौरिव भूश्चचाल ।
सचन्दना चोत्पलपद्मगर्भा पपात वृष्टिर्गगनादनभ्रात् ॥
वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः ।
सूर्यः स एवाभ्यधिकं चकाशे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः ॥

× × ×

पुष्पद्रुमाः सुकुसुमं पुफुल्लुः समीरणोद्भ्रामितदिक्सुगन्धः ।
सुसम्भ्रमद्भृंगवधूपगीतं भुजंगवृन्दापिहिताततवातं ॥
क्वचित्क्वणत्तूर्यमृदंगगीतैर्वीणामुकुन्दामुरजादिभिश्च ।
स्त्रीणां चलत्कुण्डलभूषितानां विराजितं चोभयपार्श्वतस्तु ॥

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

लगभग इसी प्रकार की प्रतिक्रिया हस्तिजातक में बुभुक्षितों के लिए हाथी द्वारा अपने शरीरत्याग करने पर आर्यशूर ने व्यक्त की है-

सुगन्धिभिश्चन्दनचूर्णरञ्जितैः प्रसक्तमन्ये कुसुमैरवाकिरन् ।
अतान्तवैः काञ्चनभक्तिराजितैस्तमुत्तरीयैरपरे विभूषणैः ।।
स्तवैः प्रसादग्रथितैस्तथापरे समुद्यतैश्चाञ्जलिपद्मकुड्मलैः ।
शिरोभिरावर्जितचारुमौलिभिर्नमस्क्रियाभिश्च तमभ्यपूजयन् ।।
सुगन्धिना पुष्परजोविकार्षिणा त्तरंगमालारवनेन वायुना ।
तमत्यजन् केपिदथाम्बरेऽपरे वितानमस्योपदधुर्घनैर्घनैः ।।
तमर्चितुं भक्तिवशेन केचन व्यरासयन् द्यां सुरदुन्दुभिस्वनैः ।
अकालजै पुष्पफलैः सपल्लवैर्व्यभूषयंस्तत्र तरूनथापरे ।।
दिशः शरत्कान्तिमयीं दधुः श्रियं खेः करा प्रांशुतरा इवाभवन् ।
मुदाभिगन्तुं तमिवास चार्णवः कुतूहलोत्कम्पितवीचिविभ्रमः ।।

बुद्ध जन्म पर जैसे भूविचलनादि प्राकृतिक चित्र अश्वघोष ने अंकित किये हैं, आर्यशूर ने भी बोधिसत्त्व द्वारा दानादि के उपक्रम में वैसे ही भूविचलनादि दृश्य कई अन्य जातकों में भी खींचे हैं। इसी प्रकार जागतिक निस्सारता, मृत्यु के ध्रुवसत्यता के प्रति सम्पूर्ण शक्तियों की असफलता आदि भाव व्यक्त करके अश्वघोष ने बुद्धचरित के ग्यारहवें सर्ग के श्लोक 24 से 33 तक में जिस प्रकार प्रव्रज्या को ही एकमात्र अनुकरणीय बताया है, उसी प्रकार के उपदेश आर्यशूर ने "अयोगृह जातक" में श्लोक 21 से 41 तक के श्लोकों में अभिव्यक्त किये हैं। दोनों के भावसाम्य सुधीजनों द्वारा सहजानुगम्य हैं। अपरञ्च, बुद्धचरित के सर्ग 13 में मार का जैसा भयावह चित्रण हुआ है वैसा ही न्यूनाधिक रूप में जातकमाला में श्रेष्ठिजातक

के अन्तर्गत हुआ है। शैलीगत साम्य तो साहित्यालोचकों को सर्वत्र प्राप्त होगा।अत: इस दृष्टि से पूर्णनिश्चयेन आर्यशूर को उत्तरवर्ती कहा जा सकता है। कहा जाता है कि आर्यशूर                    ने कर्मफल के ऊपर एक सूत्रग्रन्थ लिखा था जिसका 434 ई0 में चीनी अनुवाद हो चुका था। सम्भव है कि "पारमितासमास"के रचयिता और कर्मफल पर सूत्रग्रन्थ के रचयिता एक ही व्यक्ति थे।[1]

सर्वाधिक सन्तोषप्रद कथन डॉ पी0एल0वैद्य का लगता है। वह कहते हैं कि "आर्यशूर जो कि शुद्ध अलंकृत संस्कृत में काव्य-रचना करने वालों में अग्रणी हैं- की जीवनी तथा काल मे विषय में जानकारी नहीं के बराबर मिलती है। तथापि कुमारलात और "कल्पनामण्डतिका" के वे ऋणी जान पड़ते हैं। इसलिए उनका जीवन-काल ईशा की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ से बहुत पहले का नहीं माना जा सकता। वैसे भी उनकी एक रचना का चीनी अनुवाद चीनी भाषा में 434 ई0 में हुआ था, इससे उनकी जन्मतिथि 400 ई0 के बाद नहीं रखी जा सकती है। अत: मैं उनका जीवनकाल 300 से 400ई0 निर्धारित करता हूँ।[2] इसके समर्थन मे वह अजन्ता के

---

1• वाचस्पतिगैरोला, संस्कृत साहि0 का इतिहास पृ0 765

2• Very little is known about the life and date of Aryasura, the author of the Jatakamala, who is the prerunner of the poets of classical chaste and ornate Sanskrit. He, however, seems to be considerably indebted to Kumarlata and his 'Kalpanamandatika'. He, therefore cann't be much older than the beginning of the 4th Century A.D. One of his works translated into Chinese in 434 A.D., he can n't be put later than 400 C.A.D. I, therefore assign him to 350-400 C.A.D. . . . . . . . Stories from Jatakamala were used in Ajanta cave and frescoes with verses from it inscribed below them which fact ,indicates that the work was popular in the 6th C.A.D.

(Jatakamala edited by P.L.Vaidya, Preface )

भित्तिचित्रों पर जातकों का वर्णन बताकर ग्रन्थ के 6ठी शताब्दी में ख्याति प्राप्त कर लेने का उचित तर्क भी देते हैं।

इन अर्युक्त कथनों पर परपतङ्गम दृष्टिपात करते हुए कहा जा सकता है कि आर्यशूर का समय 400 ई० के बाद और 300 ई के पहले नहीं हो सकता है। अवधेय है कि जातकमाला का चीनी भाषा में अनुवाद 960 और 1127 ई० के बीच हुआ था। ईत्सिंग के अनुसार सातवीं शती के अन्तिम भाग में भारतवर्ष में जातकमाला का व्यापक प्रचार था। अजन्ता की दीवारों पर जातकमाला के क्षान्तिवादी, मैत्रीबल, रूरू, शिबि, महाकपि, महिष आदि जातकों के दृश्य चित्रित हैं और दृश्यपरिचय के लिए उन जातकों से उपयुक्त श्लोक भी उद्धृत हुए हैं। श्लोकों के अभिलेख की लिपि छठी शताब्दी की है। इससे अनुमान होता है कि जातकमाला की ख्याति पाँचवीं शताब्दी तक हो चुकी थी। प्रबल पक्ष तो यह है कि आर्यशूर ने कर्मफल के ऊपर एक सूत्र लिखा था जिसका चीनी अनुवावाद 434 ई० मेंहुआ है। यदि इस सूत्र के लेखक शूर ही हैं तो वह अवश्य ही इस अनुवादकाल से पहले हुए। भाषा के अध्ययन के आधार पर नलिनाक्षदत्त ने आर्यशूर को तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी के आसपास माना है।[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. It is perhaps from 3rd or 4th Century A.D. the highly learned Buddhist gave preference to Paninian Sanskrit and adopted that language in the composition of their works. To this category belonged writers like Ashwaghosha, Nagarjuna, Aryadeva, Asang, Vasubandhu, Shantideva, Kshemendra as also others."

Jatakamala Ek Adhyanayan, P 40 )

तीसरी शताब्दी से पहले उनका समय इसलिए नहीं रखा जा सकता क्योंकि आर्यशूर पर अश्वघोष का स्पष्ट प्रभाव घोषित किया जा चुका है और विण्टरनिट्ज, पी0एल0वैद्य, जी0के0नारीमन और डॉ आर0सी0द्विवेदी एवं प्रो0भट्ट तथा कीथ ने आर्यशूर को कुमारलात की "कल्पनामण्डितिका" का अनुयायी बताया है। डॉ आर0सी0द्विवेदी एवं प्रो0 भट्ट ने जातकमाला की भूमिका में आर्यशूर को चतुर्थ शताब्दी की शुरूआत से अधिक प्राचीन नहीं बताया है।[1]

---

1. The Jatakamala has two commentaries, one by a Dharmakirti and the other by an unknown author. Its Chinese translation, containing 14 stories only was done some time during 960- 1127 C.A.D. The influence of Kumarlata on the Jatakamala, makes it evident, that the latter cann't be much older than the beginning of the 4th C.A.D.

(Jatakamala by R.C.Dwivedi and Pro. Bhat, Introduction P. XXX ).

## व्यक्तित्व

आर्यशूर सम्भवत: राजकीय क्षेत्र से सम्बन्धित रहे होंगे क्योंकि काव्यशैली की संस्कृत में इन जातककथाओं का लिखा जाना ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि संस्कृत का प्रयोग राजकीय क्षेत्रों में साहित्य-सृजन और शास्त्रार्थों के लिए होने लगा था और उन क्षेत्रों से आर्यशूर के निकट सम्बन्ध की हम असन्दिग्ध कल्पना कर सकते हैं।[1] हम यह जानते हैं कि आर्यशूर ने शिबि, कुल्माषपिण्डी, मैत्रीबल, विश्वन्तर, यज्ञ, उन्मादयन्ती, कुम्भ, बुद्धबोधि, हंस, महाबोधि, शरभ, रुरु, महाकपि क्षान्ति, सुतसोम और अयोगृह जातकों में राजाओं अथवा विभिन्न राजकीय परिवेषों का वर्णन किया है। इन विभिन्न जातकों में वर्णित राजा, मंत्री और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों, कर्तव्यों, नीतियों का जैसा साधिकार वर्णन कवि की तूलिका से निस्सृत हुआ है वह दरबारी वातावरण के घनिष्ठ परिचय या सम्बन्ध बिना असम्भव है। मैत्रीबल, विश्वन्तर, हंस, क्षान्ति आदि जातकों का सटीक राजकीय तथ्यों से युक्त होना कवि को राजकीय क्षेत्र से सम्बद्ध करने के लिए युक्तियुक्त तर्क कहा जा सकता है।

यह तो प्राय: निश्चित है कि जातककथाओं का प्रयोग भिक्षु लोग उपदेशों में करते थे और यही उद्देश्य जातकमाला का भी उपदेशक के लिए था। भिक्षु लोग धार्मिक वार्तालाप के अन्तर्गत दरबारी आयाम में जहाँ संस्कृतकाव्यत्व समझा जाता और प्रशंसित होता था- इन जातकों का प्रयोग करते थे और इस परिप्रेक्ष्य में

---

1. {हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर -बाइ कीथ, पेज 67}

आर्यशूर भी स्वयं सम्भवत: एक दरबारी उपदेशक ही थे।[1]

सर्वथा अविस्मरणीय है कि आर्यशूर ने काव्य जगत् में गद्य के माध्यम से उपदेश की परम्परा का श्रीगणेश किया। अत: गद्यकाव्य साहित्य के आदि लेखक के रूप में स्मरण किये जाते हैं। इनकी महानता इसलिए स्तुत्य है क्योंकि बौद्ध धर्मोपदेशों को पाणिनीय व्याकरण की अनुगामिनी शुद्ध संस्कृत भाषा के माध्यम से लोक के सम्मुख प्रस्तुत किया। बौद्ध रत्नत्रय-बुद्ध,धम्म और संघ के प्रति इनकी अटूट निष्ठा थी। कृतियों से सुस्पष्ट है कि बौद्ध धम्म के महायान शाखा के प्रति अधिक आग्रहशील थे। काव्यशैली के माध्यम से कवि के स्वभाव का स्पष्ट भान होता है क्योंकि प्राय: सौम्य वक्ता वैदर्भी का और उद्धत वक्ता गौडी का आश्रयण किया करता है। वैदर्भी शैली का अनन्य उपासक होने से आर्यशूर का सरल और सौम्य व्यक्तित्व,दुर्लक्ष्य नहीं है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. So far as the Jatakas are designed to be employed by monks in their sermons, the Jatakamala also serves this purpose for the preacher. On the poet who was probably himself a preacher at the court, has none but monks before his eyes, who held their religious, discourses in courtly circles where Sanskrit poesy was understood and appreciated.

(Literary History of Sanskrit Buddhism Page- 42)

तिब्बतीय बौद्धधर्म के प्रसिद्ध इतिहासकार तारानाथ का कथन है कि आर्यशूर ने एक बाघिन और उसके बच्चे को भूख से मरते देखकर उनके आगे अपने शरीर का उत्सर्ग करना चाहा। प्रथमतः तो उनको भय हुआ किन्तु बुद्ध के भय से निर्भय होकर अपने रक्त से 79 श्लोकों की स्तुति लिखी फिर अपने शरीर के रक्त को पीने के लिए बाघिन व उसके बच्चे को दिया। रक्त पीने के बाद जब उसके शरीर के भीतर कुछ शक्ति का सन्चार हुआ तो आचार्य ने अपना शरीर उसके सामने समर्पित कर दिया। अपने गुरु से सुने हुए व्याघ्री जातक के बोधिसत्त्व के अलौकिक कार्य का उन्होंने अनुसरण किया। जिस कवि और आचार्य ने हृदय की समस्त श्रद्धा एवं भक्ति भाव के साथ प्रतिभा-प्रसूत काव्य कुसुमाञ्जलियों से बोधिसत्त्व के दिव्य और अद्भुत कर्मों की पूजा की हो(पूर्व जन्मसु मुनेश्चरितादभुतानि भक्त्या स्वकाव्यकुसु-माञ्जलिनार्चयिष्ये) उसने यदि अवसर पाकर बोधिसत्त्व के आदर्शों के अनुसरण में अपने शरीर का भी उत्सर्ग कर दिया हो तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

प्रो० मैक्समूलर ने आर्यशूर के इस कृत्य को भी एक जातक माना है।[1] इस प्रकार यह अनुश्रुति चाहे सहवर्ती धर्मावलम्बियों के दिमाग में भावना-प्रवाह करने की उत्तेजक वक्तृता रही हो या बुद्ध के,पति समर्पित एक महायानी व्यक्तित्व का उत्सर्ग रहा हो लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि इसी प्रकार के धार्मिक उन्माद से आविल हृदय वाले महायानी अग्रदूतों के कारण ही धर्म की विजय-वैजयन्ती देश की सीमाओं

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. We are told that Aryasura in order to follow the example of Buddha in a former birth, threw himself, in this life, before a starving tigress to be devoured. Let us hope that this too was only a Jataka.

(Speyer's Jatakamala, editor's preface, Page XIV ).

को लांघकर फहरी थी। अत: धर्म के नीतिगत प्रवाह में आकण्ठ निमग्न कवि के लिए अपने सन्त (बुद्ध) के अनुकरण में जीवन का उत्सर्ग भी विश्वास की परिधि से बाहर नहीं है।[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. In this legend, I recognise, the sediment, so to speak of the stream of emotion caused by the stimulating eloquence of that gifted Mahayanist preacher on the minds of his Co-religionists. Any one who could compoce discourses such as there must have been capable of himself performing the extraordinary exploits of a Bodhisatteva. In fact, something of the religious enthusiasm of those ancient opostles of the Mahayana, brought the Saddharma to China and Tibet pervades the work of Sura and it is not difficult to understand that in the memory of posterity, he should have been represented as a saint who professed the ethics of his religion.

(Introduction of Jatakamala .P. XXVIII edited by Speyer ).

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आर्यशूर में प्राणियों के प्रति दया कूट-कूट कर भरी थी। ऐसा कई जातकों से स्पष्ट प्रतीत होता है। सर्वाधिक अव-धेय तथ्य तो यह है कि कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रकृति-पर्यवेक्षण से ओतप्रोत था। उदाहरण के लिए हंस जातक के झील का वर्णन ﴾श्लोक2-3 तथा 8 से 16 तक﴿ लिया जा सकता है। प्रकृति के बाह्य पक्ष के समान अन्तर्पक्ष भी कमजोर नहीं था। प्रकृति का जितना अधिक उन्होंने पर्यवेक्षण किया था उससे भी अधिक उन्होंने मानवीय भावों का एहसास किया था। यह तो नहीं कह सकते कि विश्वन्तर जातक में कवि ने अपने ही बीते दिनों की याद की है, किन्तु उपदेश काव्य होते हुए भी इसमें कवि ने करुणा की जो अजस्र धारा प्रवाहित की है वह मनुष्य के अन्तस्तल में उनके पैठ का स्पष्ट प्रमाण है।[1]

---

1. Apparently Sura, to whom Jatakamala is ascribed, was a poet richly gifted by nature, whose talent must have been developed by thorough and extensive literary studies '.

(Jatakamala, introduction Page XXIV )
Edited by Speyer.

## सामाजिक परिवेष

चूँकि आर्यशूर का समय चौथी श0ई0 प्राय: स्वीकार किया जाता है, अत: वह गुप्तवंशीय शासन काल में थे। गुप्त युगीन समाज में वर्णव्यवस्था पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित थी। परम्परागत 4 वर्णों के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियाँ भी अस्तित्व में आ गई थी। किन्तु इस समय जाति व्यवस्था उतना अधिक जटिल नहीं हो पाई थी जितनी परवर्ती काल में देखने को मिलती है। स्मृति ग्रन्थों से दास प्रथा के प्रचलन का,पमाण मिलता है। समाज में प्राय: सजातीय विवाह होते थे। कभी-कभी अनुलोम विवाह भी होते थे। नारद एवं पराशर स्मृतियों से विधवा-विवाह का समर्थन मिलता है।सतीप्रथा का कोई प्रमाण अब तक नहीं मिलता है। समाज में वेश्याओं का अस्त्तित्व तो था किन्तु इस वृत्ति को निन्दनीय कहा गया है। पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं था किन्तु कुलीन वर्ग की महिलाएँ बाहर निकलते समय अपने मुँह पर घूँघट डालती थीं।

गुप्त राजाओं का काल आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। सिंचाई की समुचित व्यवस्था थी। उद्योग-धन्धे उन्नति पर थे। व्यापार व्यवसाय के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। व्यवसाय एवं उद्योगों का सन्चालन श्रेणियाँ करती थीं।

गुप्तराजाओं का समय हिन्दू धर्म की उन्नति के लिए प्रख्यात है।अधि-कांश राजा वैष्णव मतानुयायी थे किन्तु स्वयं नैष्ठिक वैष्णव होते हुए भी उनका दृष्टिकोण पूर्णतया धर्मसहिष्णु था। विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों को फलने-फूलने का समुचित अवसर प्रदान किया गया था। समुद्रगुप्त ने अपने पुत्र की शिक्षा के लिए बौद्धविद्वान् वसुबन्धु को नियुक्त किया था। फाह्यान जो स्वयं बौद्ध था-समुद्रगुप्त के धार्मिकसहिष्णुता की प्रशंसा करता है।

गुप्त साम्राज्य के स्थापना के साथ ही संस्कृत राजभाषा के पद पर आसीन हुई। गुप्त शासक स्वयं संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रेमी थे तथा योग्य कवियों एवं साहित्यकारों को राज्याश्रय प्रदान किया था। "प्रयागप्रशस्ति" समुद्रगुप्त के कविराज कहती है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजसभा में नवरत्न विद्यमान थे।

गुप्तकाल की अधिकतर मूर्तियाँ हिन्दू देवताओ से सम्बन्धित हैं। कुछ बुद्ध मूतियाँ भी मिली हैं-सारनाथ की बुद्धमूर्ति, मथुरा की बुद्धमूति, सुल्तानगंज की बुद्धिमूर्ति। वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में गुप्तकाल में चित्रकला अपनी पूर्णता को प्राप्त कर चुकी थी। इस काल के चित्रकला के इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में स्थित अजन्ता तथा ग्वालियर, प्रमध्य प्रदेश के समीप स्थित बाघ नामक पर्वत गुफाओं से प्राप्त होते हैं। अजन्ता के भित्तिचित्रों में जातकमाला के दृश्य एवं श्लोक प्राप्त होते हैं। अजन्ता में पहले 29 गुफाओं में चित्र बने थे, किन्तु अब मात्र 6 (1-2, 3-10 तथा 16-17) में चित्र शेष है। चित्रों के 3 प्रमुख विषय हैं, अलंकरण, चित्रण और वर्णन। फूलपत्तियाँ आदि अलंकरण का काम करती हैं। अनेक बुद्धों एवं बोधिसत्त्वों का चित्रण हुआ है। जबकि जातक कथाओं से ली गई कथाएँ वर्णनात्मक दृश्यों के रूप में उत्कीर्ण हुई हैं।

जातकमाला की कथाएँ जीव मात्र को ही एकसूत्र में पिरोती हैं। इस तरह सबके लिए सबको सोचने और कर्म करने की प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। मैत्री-धर्म का तात्पर्य केवल मानव से मानव की ही नहीं अपितु सभी जीवों के प्रति मैत्री भावना रखने की बात कवि ने कही है। मुख्यत: हम देखते हैं कि रामायण और महाभारत में प्राणी अपने कर्मों का फल भोगते नजर आते हैं, जीवमात्र तो उसके

हिताहित के साथी है। पर जातकमाला में सभी प्राणियों का परस्पर मैत्रीभाव विशेष दर्शनीय है।

मनोरञ्जक जातक कथाओं में सुपारग जातक विशेष उल्लेखनीय है। इसमें भरूकच्छ्(भड़ौच) से हुई समुद्री यात्रा का वर्णन है। इसमें यह भी कहा गया है कि यात्रा सुचारू रूप स चलाने के लिए जो नौकाशास्त्रज्ञ जहाज पर था वह अन्धा होने के बावजूद भी बहुत कुशल था। भड़ौच से ईरान की खाड़ी तक सात बन्दरागाहों कानाम इस जातक में दिया गया है।

जातक कथा में भौगोलिक बाते भी आई हैं। गान्धार और कम्बोज से कलिंग, आन्ध्रप्रदेश और कश्मीर तथा हिमालय प्रदेश से अवन्ती एंव अश्मक(वर्तमान खानदेश) आदि तक के देशों का जातकथाओं में उल्लेख मिलता है। लंका और जावा देशों का जातककथाओं में उल्लेख मिलता है। लंका और जावा देशों के सम्बन्ध में भी उस समय लोगों को पर्याप्त ज्ञान था। यहाँ के कई प्राचीन नगरों के बारे में जातककथाओं में महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ दिये गये हैं। हिमालय तथा गंगा नदी की भी चर्चा की गई है। कोसी नदी का नाम आया हैं। मगध देश की कई नदियों और गावों के नाम भी जातक कथाओं में मिलते हैं।

जातक कथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है उस युग का भारत या तो मोक्षार्थी था अथवा यक्ष,भूत,पिशाच्च आदि उपदेवताओं का पूजक। या तो सर्वोच्च आध्यात्मिक स्थिति में पहुँचकर लोग तत्त्वचिन्तन करते थे या अज्ञान के सबसे निचले स्तर पर गिरकर प्रेतपूजा करते थे। इसके अतिरिक्त जीवन स्तर का कोई तीसरा विकल्प था ही नहीं। बौद्ध या जैनों के आचार्य शून्य की ओर देखते थे और जन सामान्य यक्षों व प्रेतों के डर से थर-थर काँपता था। यह युग चमत्कारों का युग था। आकाश में उड़ जाना, अदृश्य होना, पिशाचादि के भय से लोगों को

की ही पूजा होती थी।

लोगों में चरित्र की कमी नहीं थी। राजा हो या प्रजा- चरित्रवान् होते थे। चरित्रवानों की ही समाज में प्रतिष्ठा होती थी। उन्मादयन्ती जातक में एक कहानी दी गई है। किसी राजा ने पुरोहितों को उन्मादयन्ती की वधू-परीक्षा लेने के लिए भेजा था। उन्हें भोजन के लिए बैठाया गया। जैसे ही उन्होंने हाथसे सुग्रास उठाये, वैसे ही सुशोभिता उन्मादयन्ती उनके सामने आई। उसे देखते ही ब्राह्मणों का संयम टूट गया। वे भूल गये कि भोजन अभी समाप्त नहीं हुआ है। किसी ने हाथ से पकवान्न सिर पर चढ़ाया, किसी ने शरीर पर लगाया। सभी मुँह में डालना भूल गये। उन्मादयन्ती बोली कि ये ब्राह्मण मेरी परीक्षा के योग्य नहीं। इनको यहाँ से भगा दो। इसकी प्रतिक्रिया में ब्राह्मणों ने उसकी शादी राजा से नहीं होने दी। एक दिन राजा की आँख उस पर पड़ी और टिक गई। राजा मोहित हो गये किन्तु शीघ्र ही धैर्य और धर्माभ्यास ने उन्हें मोहमुक्त कर कर्तव्य-बोध कराया। राजा ने शीघ्र ही अपने चरित्र की रक्षा कर ली। जातक युग की ऐसी चारित्रिक विशेषता थी।

चिन्तन और अनुभव की अन्तिम सीमा छूकर चिन्तक या विचारक जो कुछ करता है वह निश्चय ही जनहितार्थ परमौषधि है। जातककथाएँ ऐसे ही सन्दर्भ में अत्यधिक महत्त्व रखती हैं। मनुष्य ,संसार, दु:ख, पुरुषार्थ, लोभ, ईर्ष्या, मोह, द्वेष आदि विषयों के सन्दर्भ में तात्कालिक वातावरण कैसा था ? समाज किन कुरीतियों से घिरा था ? इन बातों की जानकारी हमें जातक कथाओं से मिलती है। तात्कालिक समाज में बातचीत का ढंग कैसा था ? वादविवाद उपस्थित होने पर किस प्रकार तर्क का उपयोग या दुरुपयोग होता था ? इसका उत्तर हमें इन जा-

प्रवृत्ति कैसी थी? आदि के विषय में भी ये जातककथाएँ हमें बताती हैं। यही कारण है कि कुल 547 जातक-कथाओं से मात्र 34 जातक चुनकर विद्वान् लेखक आर्यशूर ने संस्कृत भाषा में अवतरित किया है।

जातकों की एक अन्य मुख्य विशेषता यह है कि नैतिक और चारित्रिक क्षेत्र में पशु मनुष्य से आगे थे। मनुष्य धोखा दे सकता है किन्तु जानवर, पक्षी नहीं। पशुओं में ऐसे गुण दिखाये गये हैं जो मनुष्य में दुर्लभ हैं। यथा शश जातक में शश के अन्दर ऐसे गुण दर्शाए गये हैं-

जातिः क्वेयं तद्विरोधि क्व चेदं त्यागौदार्यं चेतसः पाटवञ्च ।
विस्पष्टोऽयं पुण्यमन्दादराणां प्रत्यादेशो देवतानां नृणां च ।।

हंस जातक पशुओं की श्रेष्ठता स्पष्टरूपेण व्यक्त करता है-

कृतमधुरोपचारवचनप्रच्छन्नतीक्ष्णदौरात्म्यानि च प्रायेण पेलवघृणानि शठानि मानुषहृदयानि।

पश्यतु स्वामी-

वाशितार्थस्वहृदयाः प्रायेण मृगपक्षिणः ।
मनुष्याः पुनरेकीयास्तद्विपर्ययनैपुणाः ।।
उच्यते नाम मधुरं स्वनुबन्धि निरत्ययम् ।
वाणिजोऽपि हि कुर्वन्ति लाभसिद्ध्याशया व्ययम्।।

इसी हंस जातक में राजा पक्षी को धोखा देता हुआ दिखाया गया है जो कृत्रिम झील बनवाकर हंस को पकड़वाता है। तब हंस कहता है-

विस्मृतात्ययशंकानां सूक्ष्मैर्विश्वासनक्रमैः ।
विकरोत्येव विश्रम्भः प्रमादापनयाकरः ।।

इसी कथा में बोधिसत्त्व का संगी सुमुख अपने स्वामी को संकट में नहीं छोड़ता और यहाँ तक कि शिकारी उसके सच्चाई और निष्ठा से हार जाता है। वह इस प्रकार प्रशंसा करता है-

मानुषेष्वप्ययं धर्म आश्चर्यो दैवतेषु वा ।

स्वाम्यर्थे त्यजता प्राणान् यस्त्वयात्र प्रदर्शित:।।

और इस प्रकार पशु पक्षियों का आचरण मनुष्यों से बढ़कर है और उनकी कहानियों में बुराई कम या नहीं ही है। किन्तु जब कहानियाँ मनुष्यों से सम्बद्ध कही गई हैं तो उनमें धोखा, निर्दयता आदि दुर्गुण प्रचुर मात्रा में हैं।

जातकमाला की कहानियों के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि इसमें ब्राह्मण देववाद, और कर्मकाण्ड को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और कहानियों में उसकी यत्र तत्र निन्दा और बुराई की गई है। इसमें वर्णित चरित्र बौद्ध और बौद्धेतर साहित्य में वर्णित चरित्रों से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। जैसे यज्ञ जातक में पशु का आत्मबलिदान निर्णायक रूप से यह नहीं सिद्ध करता कि बौद्ध धर्म के अनुगमन के कारण ऐसी आलोचना वैदिक धर्म की की गई है। वस्तु स्थिति तो यह है कि धर्म के बलिदानात्मक स्वरूप के विरूद्ध उपनिषदों में ही आवाज उठती सुनाई देती है। यही प्रधान कारण है कि आत्म मुक्ति के साधन के रूप में अब तक मान्य बलिदानात्मक कर्मकाण्ड को त्यागा गया है और ज्ञान को मुक्ति का साधन बताया गया है।

## धर्म

बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ जातकमाला के रचियता आर्यशूर के बौद्ध होने में तो कोई सन्देह का अवकाश रह ही नहीं जाता। वह उन म-हान् बौद्ध विद्वानों में से हैं, जिन्होंने बुद्ध के उपदेशों को पाणिनीय व्याकरण की अनुगामिनी शुद्ध संस्कृत भाषा

में समाज के समक्ष रखने का स्तुत्य प्रयास किया। वाचस्पति गैरोला ने भी आर्यशूर को अश्वघोष का अनुयायी बौद्ध दार्शनिक कहा है[1] और प्राय: सभी विद्वानों ने अश्वघोष को महायानी सिद्ध किया है तो शूर के महायानी होने में भी सन्देह नहीं होना चाहिए।

प्रबल प्रमाण तो यह है कि जातकमाला का अपर नाम "बोधिसत्त्वावदानमाला" है और बोधिसत्त्व की कल्पना महायान बौद्ध धर्म की एक प्रमुख विशेषता है, अत: कवि महायानी ही था। अवधेय है कि महायान बौद्धधर्म का मेरुदण्ड है, भगवान् बुद्ध के प्रति अटूट श्रद्धा, उनके आचार प्रधान धर्म पर प्रगाढ़ विश्वास और योग की साधना। ये तीनों बातें कवि की कृति में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। डॉ कमलाकान्त मिश्र ने भी कवि के व्यक्तित्व के बारे में कहा है कि रत्नत्रय-बुद्ध, धम्म और संघ- के प्रति इनकी अटूट निष्ठा थी। यह महायान धर्म की ओर अधिक आग्रहशील थे।[2] तारानाथ के अनुसार उसने अपने गुरु से सुने हुए व्याघ्र जातक के बोधिसत्त्व के अलौकिक कर्मों का अनुसरण किया था। इस प्रकार पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति के साथ प्रतिभा-प्रसूत काव्य-कुसुमाञ्जलियों से बोधिसत्त्व के दिव्य कर्मों की पूजा करने वाले व्यक्ति के लिए अवसरवशात् बोधिसत्त्व के आदर्शों के अनुसरण में अपने शरीर का उत्सर्ग भी आश्चर्यजनक नहीं और यह एक कट्टर महायानी का ही कृत्य हो सकता है।

---

1. गैरोलाकृत संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 765

2. "जातकमाला-एक अध्ययन" पृ04।

जो0के0नारीमन ने भी उसी सम्प्रदाय का अनुकर्ता कहा है।[1] पी0एल वैद्य अवदानमालाओं के लेखकों को महायान सम्प्रदाय के अनुकर्ता मानते हैं। वह कहते हैं कि अवदानशतक और अन्य अवदानमालाओं में यह अन्तर है कि अवदानमालाओं के लेखक महायान सम्प्रदाय के मानने वाले थे। बुद्ध के परिवाराकोंमें बोधिसत्त्व का परिचय अमिताभ तथा सुखावती के प्रसंग इस बात को स्पष्टतया प्रमाणित करते है।[2] इस प्रकार बोधिसत्त्वावदानमाला के लेखक आर्यशूर को निस्सन्देह महायानी कहा जा सकता है।

## पाण्डित्य

आर्यशूर के विशाल अध्ययन एवं पर्याप्त विद्वत्ता का स्पष्ट प्रमाण उनका काव्य जातकमाला दे रहा है। वे मुख्यत: दार्शनिक हैं। दर्शन की तार्किक भाषा में बौद्ध धर्म के मान्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक आचार्य हैं जो अपने आप में पाडित्य का प्रमाणक है। भारवि में राजनीतिक पटुता अवश्य दीखपड़ती है, श्रीहर्ष में दार्शनिक उद्भटता अवश्य उपलब्ध होती है, किन्तु आर्यशूर में दोनों का मन्जुल समन्वय है। हंस जातक, क्षान्ति जातक आदि जातकों से उनकी राजनैतिक पैठ सुस्पष्ट होती है। राजधर्म के सम्बन्ध में उन्होंने अनेक जातकों में पाण्डित्यपूर्ण बखान किया है। महाबोधि जातक में अहेतुवाद, ईश्वरवाद, कर्मवाद, उच्छेदवाद का खण्डन और अपने पक्ष का मण्डन कवि के दार्शनिक ज्ञान एवं पाण्डित्यपूर्ण तर्कशीलता का स्पष्ट परिचायक है।

---

1. Better known is poet Sura or Aryashura , probably issuing from the same school, although of a considerably younger date whose Jatakamala strongly resembles the Sutralankara in style .

(Literary History of Sanskrit Buddhism P.41)

महाबोधि जातक के 8 वें श्लोक के आधार पर यह प्रतीत होता है कि कवि को पशु चेष्टाओं का भी ज्ञान था। इसी प्रकार रूरूजातक के प्रथम परिच्छेद में कवि का वैविध्ययुक्त वानस्पतिक एवं पाशविक ज्ञान स्पष्ट प्रकट होता है। शक्र जातक में युद्ध विषयक ज्ञान परिलक्षित होता है। वैसे तो आर्यशूर धर्मोपदेष्टा कवि हैं तथापि कामशास्त्र विषयक उनका ज्ञान कोई कम नहीं है। उन्मादयन्ती जातक इसका स्पष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार क्षान्ति जातक के 6-8 श्लोक में कामिनियों की विविध चेष्टाओं का रूचिर वर्णन मिलता है। भौगोलिक तथा सामुद्रिक शास्त्र जैसे दुरूह विषयों में भी कवि की अप्रतिहत गति है। सुपारग जातक इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है। जिसमें भड़ौच से लेकर ईरान तक सात बन्दरगाहों का प्रामाणिक वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार अनेक स्थलों से आर्य-शूर की बहुश्रुतता एवं बहुज्ञता अभिव्यक्त होती है।

## रचना उद्देश्य

जातकमाला में अवतारी भगवान् बुद्ध के श्री मुख से कही गई उन्हीं के पूर्वजन्मो की 34 कहानियाँ हैं। बुद्धत्व प्राप्ति में जिन आवश्यक पारमिताओं का महत्त्व होता है उन्हें ये कथाएँ उजागर करती हैं। प्रत्येक कहानी का प्रारम्भ उद्देश्य कथन के माध्यम से हुआ है। उद्देश्य कथन के बाद जो शब्दावली आती है वह है "तद्यथानुश्रूयते" अर्थात् जैसी कि अनुश्रुति है। उद्देश्य का प्रतिपादन कथा के प्रवाह में कैसे किया गया है यह कथा के अन्त में कहा जाता है। कर्न की सम्मति है कि कथाओं के उपसंहारात्मक वाक्य प्रक्षिप्त हैं।[1] कथा का तात्पर्य स्पष्टरूप से अन्त में बतलाना आधुनिक मनीषा को ठीक नहीं जँचता। फिर भी परशुराम शर्मा

---

1. जातकमाला, प्रस्तावना, पृष्ठ 10

इसे प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं।[1] जो कुछ भी हो ये कथाएं साधारण जनता को ही नहीं अपितु विद्वानों को भी प्राणिमात्र के मोक्षदायी तत्त्वों का परिचय सुन्दर तथा सुबोध रीति से कराती हैं और वही इन जातक कथाओं की निर्मिति का मूल उद्देश्य है।[2]

सम्भव है आर्यशूर बौद्ध धर्मोपदेष्टा रहे हों और दरबारी आयाम में जहाँ संस्कृत काव्य-कला समझी जाती और प्रशंसित होती थी-अपने धार्मिक व्याख्यान करते थे। इस प्रकार धार्मिक प्रवचनों के रूप में जातकमाला का प्रादुर्भाव हुआ हो। क्योंकि यह तो प्राय: मान्य और विश्वनीय ही है कि जातक कथाएँ भिक्षुओं के द्वारा धार्मिक प्रवचनों में प्रयुक्त होती थीं। अत: बहुत कुछ सम्भव है कि जातकमाला की रचना भी उपदेष्टा कवि ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की हो। क्योंकि कवि के समक्ष मात्र भिक्षु दिखाई पड़ते थे जो राजकीय चाहारदीवारी मे धार्मिक वार्तालाप किया करते थे। इस अभिप्राय की सम्पुष्टि जी0के0 नारीमन ने भी की है।[3]

---

1. परशुरामशर्मा द्वारा सम्पादित जातकमाला, प्रस्तावना, पृ012

2. ईत्सिंग, तकाकुसु: ईत्सिंग के प्रवास पृ0 63

3. So far as the Jatakas are designed to be employed by monks in their sermons, the Jatakamala also serves this purpose for the preacher. Only the poet who was probably himself a preacher at the court has none but monks before his eyes who held their religious discourses in courtly circles where Sanskrit poesy was understood and appreciated.

(Literary History of Sanskrit Buddhism P. 42)

करुणा और मैत्री पर आधारित जातक कथाओं के माध्यम से आर्यशूर ने ऐसी संस्कृति उपनिबद्ध करने का प्रयास किया है जो प्राणिमात्र की संस्कृति हो। इन कथाओं की शिक्षा से दीक्षित संसार सदैव श्रद्धा, आदर और गौरव के साथ बुद्ध को स्मरण करे- यही कवि का उद्देश्य था। बुद्ध जिस रश्मि से देदीप्यमान थे उसी का प्रबल प्रकाश इन जातकों को प्रभाव-भास्वर करता है। कवि ने बुद्ध के सन्देशों को सामान्य कथाओं के माध्यम से मानव मन पर अंकित करने का प्रयास किया है। बौद्धसिद्धान्तों को कोमलकान्त पदावली की शय्या देकर आर्यशूर ने उसे जनमन तक पहुँचाना चाहा है। प्रारम्भ के ही 3 श्लोकों में कवि ने स्वयं कहा है कि "मैं आस्था के साथ अपनी काव्य कुसुमाञ्जलि से सुगत के पूर्वजन्मों के किये गये उन सुकर्मों की पूजा करूँगा जो, मंगलमय,ख्यात,प्रशंसनीय,मनोहर एवं अनोखे हैं। इन समादरणीय चरित्रचित्रित संकेतों से बौद्ध धर्म का उपदेश अनायास उपलब्ध होता है, उन्हें जानकर मलिन मन वालों को भी प्रसन्नता प्राप्त होती है। इनसे धर्म कथाओं को रुचिरता और अधिक बढ़ जाती है। तीसरे श्लोक में स्पष्ट रूप से कवि कहता है कि "जनहित के लिए परम्परित एवं शास्त्रविहित उन लोकोत्तम चरितों का वर्णन कर मैं अपनी काव्य प्रतिभा को कर्णप्रिय बनाने की चेष्टा करूँगा।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि बौद्ध देशना के प्रचार की जिस भव्य भावना ने अश्वघोष की भारती को काव्यमयविग्रह पहनने का आग्रह किया उसी ने आर्यशूर की वाणी को काव्यमयी सज्जा से अलंकृत होने को बाध्य किया। दोनों के इस भव्य मार्ग में पधारने के उद्देश्य समान ही थे, "रूक्षमनसामपिप्रसाद"=रूखे मन वाले पाठकों को प्रसन्न कर बौद्ध उपदेशों का विपुल प्रचार और प्रसार करना। दोनों अपने -अपने उद्देय में पूर्णतया सफल हुए हैं। जिसके प्रमाणों का निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है। बौद्ध कथाओं का काव्यात्मक रोचक आख्यान शैली में अवतार

## अश्वघोष व मातृचेट से अभिन्नता, मतखण्डन

अश्वघोष, मातृचेट और आर्यशूर के विषय में पर्याप्त जानकारी के अभाव के कारण तीनों को अभिन्न मानने का भ्रम अधिकांश विद्वानों को रहा है। अश्वघोष के मातृचेट, आर्यशूर आदि कितने ही नामों का चीनी तथा तिब्बती ग्रन्थकारों ने उल्लेख किया है। परन्तु इस कथन में कुछ सत्यता प्रतीत नहीं होती।[1] जिस प्रकार अश्वघोष व आर्यशूर को कतिपय विद्वान् एक मानते हैं उसी प्रकार मातृचेट व अश्वघोष को भी कुछ विद्वान् एक मानते हैं। इस प्रकार परम्परया या प्रत्यक्ष रूप से मातृचेट भी आर्यशूर से अभिन्न कह दिये जाते हैं।

प्रथमत: मातृचेट व अश्वघोष की अभिन्नता के विषय में विचार कर रहे हैं। सुरेशचन्द्रबनर्जी तारानाथ के अनुसार मातृचेट को अश्वघोष से एकीकृत करते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि कुछ आधुनिक विद्वान सोचते हैं कि एक धार्मिक सम्प्रदाय होने से मातृचेट का अश्वघोष रूप में भ्रम हो गया।[2] जी0के0नारीमन कहते कहते हैं कि "तिब्बती इतिहासकार तारानाथ का अनुसरण करने पर मातृचेट तो अश्वघोष का मात्र अपर नाम है। फिर भी कोई भी साहस पूर्वक यह नहीं कह सकता

---

1• संस्कृत सुकवि समीक्षा, पृ0 123

2• Identical with Ashwaghosha, according to Tibetan tradition recorded by Taranatha some modern scholars think that Matrichita was confused with Aswaghosha because both belonged same school and were perhaps contemporaneous.

( A Companion to Sanskrit Literature P. 71)

कि हमारा मातृचेट "महाराजकणिकलेख" के लेखक मातृचेट से अभिन्न है।[1] गङ्गाराम गर्ग ने भी तारानाथ का हवाला देते हुए सुरेशचन्द्रबनर्जी के समान विचार अभिव्यक्त किये हैं।[2]

---

1. To follow the Tibetan historian Taranatha, Matricheta is only the other name of Ashwaghosha (F.W.Thomas, Orientalisten Congress XIII, 1902, Page 40) One dare not to decide whether our Matricheta is identical with the Matricheta, the author of Maharaya Kanika-lekha ( Thomas, Indian Antiquary, 1903, P 345 FF and S.C. Vidyabhushana, Journal of Asiatic Society of Bengal, 1910, P. 477 FF )

(Literary History of Sanskrit Buddhism P. 40)

2. According to Tibetan tradition , he is identical with Ashwaghosha, though some modern scholars think that Matricheto is confused with Ashwaghasha because both belonged to the same school and were perhaps contemporaneous.

(An Encyclopaedia of Sanskrit Literature )

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि विद्वानों ने मातृचेट व अश्वघोष की एकता तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के कथनानुसार स्थापित की है। फिर भी, तारानाथ का मातृचेट और "महाराजकणिकलेख" का लेखक मातृचेट एक हों- यह भी निश्चितरूपेण नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार की आशंका थॉमस और विद्याभूषण ने व्यक्त की है।[1]

निष्पक्ष साहित्यालोडन करने के बाद हम यह मथितार्थ निकालते हैं कि मातृचेट व अश्वघोष दोनों पृथक् हैं। समकालिक और एक ही धर्म सम्प्रदाय के होने के कारण दोनों को भ्रमवशात् अभिन्न मान लिया गया। अवधेय है कि मातृचेट अपने दो स्तोत्रग्रन्थों "वर्णार्हवर्णस्तोत्र" और "अध्यर्धशतक" के कारण बौद्धजगत् में "स्तुतिकार" की महनीय ख्याति से मण्डित हैं। जबकि "बुद्धचरित्", सौन्दरनन्द" महाकाव्य और "शारिपुत्रप्रकरण" जैसी विविध रचनाओं वाला कवि अश्वघोष उनसे अभिन्न कैसे हो सकता है। अपरञ्च, मातृचेट ने अपने दोनों स्तुतिग्रन्थों में मात्र अनुष्टुप छन्दों का प्रयोग किया है जबकि अश्वघोष को छन्दोविशेषज्ञ कहा गया है और नाना छन्दों के प्रयोग के प्रमाण उनके ग्रन्थ भी हैं। इस रूप में भी दोनों का व्यक्तित्व पृथक् लगता है। और भी, विण्टरनित्ज ने तारानाथ का हवाला देकर उनको श्रेष्ठ संगीतज्ञ घोषित किया है,[2] जबकि मातृचेट के साथ ऐसी कोई बात नहीं प्रकट होती है। यह भी दोनों में पार्थक्य सिद्ध करने का तथ्य कहा जा सकता है।

---

1. Indian Antiquary, 1903, P 345 F F )

and

(Vidyabhushana, Journal of Asiatic Society of Bengal, 1910, P. 477 F F )

धर्म के विषय में भी दोनों में वैभिन्न्य है। मातृचेट "वर्णार्हवर्णस्तोत्र" के एक श्लोक (8/23) के अनुसार निश्चितरूपेण महायानी सिद्ध होते हैं जबकि अश्वघोष मूलतः हीनयानी विद्वान् थे। एक अन्य तर्क यह है कि कनिष्क द्वारा आहूत चतुर्थ बौद्ध संगीति की प्रतिष्ठा तथा अध्यक्षता का गौरव विद्वानों ने अश्वघोष को ही दिया है, जबकि कनिष्क ने बौद्ध धर्म के दिव्य उपदेशों की शुश्रूषा से मातृचेट को दरबार में बुलाया था, किन्तु वार्द्धक्य के कारण वह कनिष्क को दरबार नहीं जा सका था और विवरणमय पद्यात्मक पत्र कनिष्क के पास भेजा था। 85 पद्यों का लघुकाव्यमय यह "महाराजकणिकलेख"[1] आज भी तिब्बती भाषा में अनूदित होकर सुरक्षित है। इस घटना का जिक्र बल्देव उपाध्याय, विण्टरनित्ज[2] एवं गैरोला[3] ने किया है। महाराजकणिकलेख के अनुवादक टॉमस की मान्यता का समर्थन विण्टरनित्ज ने किया है।[4] इस प्रकार कनिष्क का दरबारी अश्वघोष और दरबार में न जा सकने वाला मातृचेट ये दोनों अभिन्न कैसे हो सकते हैं।

---

1. इसका अंग्रेजी अनुवाद F.W. Thomas ने Indian Antiquary (भाग 32, 1903, पृ0 345 में किया है।
2. Winternitz, Hist. of Ind. Literature II P. 269-70)
3. गैरोला - संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ: 764
4. I agree with Thomas in thinking that Matricheta who is mentioned as the author of the letter is identical with Matricheta and that the king Kaniska of the Kusa dynasity is identical with the Kushana being Kanishka, although both points are disputed by S.C. Vidyabhushana (Winternitz, Hist. of Ind. Lit. II P. 27, Foot Note )

सच बात तो यह है कि अश्वघोष की विपुल प्रसिद्धि ने मातृचेट की कीर्ति को इतना आवृत कर लिया कि उसका व्यक्तित्व ही अभाव कोटि में गिना जाने लगा। दोनों की एकता भी चीनी परम्परा में सिद्ध मानी जाने लगी। किन्तु हम कह सकते हैं कि दोनों समकालिक होते हुए भी भिन्न व्यक्ति थे, इसमें सन्देहावकाश नहीं है।

चीनी यात्री ईत्सिंग के कथन से भी दोनों की एकता सिद्ध नहीं हो पाती। उसने मातृचेट के 150 पद्योंवाले स्तोत्रग्रन्थ "अध्यर्धशतक" की प्रशस्त प्रशंसा की है और लिखा है कि अश्वघोष वगैरह प्रसिद्ध विद्वान् मातृचेट की प्रशंसा करने से नहीं हिचकते थे।[1]

"डॉ॰ जान्स्टन मातृचेट की शैली को अश्वघोष से प्रभावित मानते हैं। मातृचेट कनिष्क का समकालिक था। इसी आधार पर डॉ॰ जान्स्टन ने अश्वघोष को कनिष्क से भी पहले माना है। अधिक सम्भावना इस बात की है कि अश्वघोष और मातृचेट दोनों ही कनिष्क के राज्यकाल में रहे होंगे और मातृचेट की रचनाओं से पूर्व कनिष्क के राज्यकाल में ही अश्वघोष की रचनाओं का खूब प्रचार हो गया होगा। जिसकी शैली से मातृचेट प्रभावित हुआ।[2] डॉ॰ भोलाशंकर व्यास ने भी कहा है कि "मातृचेट" की "शतपञ्चाशिका" की शैली अश्वघोष की शैली से स्पष्टतः प्रभावित जान पड़ती है। डॉ॰ जान्स्टन के अनुसार मातृचेट कनिष्क का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. संस्कृत सुकवि समीक्षा, पृ0 123

2. डॉ0 हरिदत्त शास्त्री, संस्कृत काव्यकार, पृ0 128

समकालिक था। सम्भवत: अश्वघोष और मातृचेट या तो समकालिक थे या दोनों में एक-आध पीढ़ी का अन्तर था।[1]

मातृचेट आरै अश्वघोष के समान अश्वघोष और आर्यशूर भी भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ ने अश्वघोष और आर्यशूर को एक ही व्यकति माना है।[2] तारानाथ के ही वर्णानानुसार प्रो0 मैक्समूलर एवं जे0एस0स्पेयर जैसे विद्वानों ने दोनें की अभिन्नता में आशंका अभिव्यक्त की है। वस्तुत: दोनों के ऐक्य निर्धारण के लिए अभी तक किसी निश्चित प्रमाण की प्राप्ति नहीं हो सकी है।

हम यह निश्चित रूपेण कह सकते हैं कि अश्वघोष और आर्यशूर भी नितान्त भिन्न व्यक्ति हैं। जैसे कि अश्वघोष को संगीतज्ञ कहा गया है[3] जबकि आर्यशूर के जीवन में संगीत की कोई झलक नहीं मिलती है, न हि जातकमाला में

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. संस्कृत कविदर्शन, पृ0 424

2. Maxmuller,Jatakamala edited by Speyer, Preface Page XVI )

(J.S.Speyer,Jatakamala, Introduction P. XXVII.)

3. (According to Tibetan biographer ) He was also excellent musician who himself composed pieces of music and travelled about with a band of Male and female singers in bazars . . . . . . The crowd stood still and listened . In this way he won many over to the religion.

(Winternitz, Hist. of Indian Lit. II P. 256)

उनके संगीतविषयक ज्ञान का कोई आभास मिलता है। इसी प्रकार आर्यशूर विशुद्ध संस्कृत भाषा के लिए प्रशंसित होते और जाने जाते हैं[1] और जातकमाला के परिशीलन से यह वस्तुतथ्य सिद्ध है। जगदीशचन्द्र मिश्र ने भी कहा है कि आर्य शूर पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने बुद्ध के उपदेशों को पाणिनीय सम्मत शुद्ध संस्कृत भाषा के माध्यम से संसार के समक्ष रखने का स्तुत्य प्रयास किया है,[2] जबकि अश्वघोष की भाषा पूर्णतया पाणिनीयसम्मत नहीं कही जा सकती।[3] कीथ ने भी कहा है कि "कभी -कभी अश्वघोष अपने विद्वत्ता के प्रदर्शन की गलती कर जाते हैं...... हमें ऐसे भी रूप मिलते हैं जो केवल रामायण के आधार पर ही क्षम्य माने जा सकते हैं।...... निपातों के प्रयोग में अश्वघोष ने बौद्ध संस्कृत में प्रायेण पायी जाने वाली अनियमितताओं को स्थान दिया है।अश्वघोष के कुछ शब्दों के लिङ्ग नितान्त अशुद्ध हैं।[4]

---

1. सुबन्धौ भक्तिर्न क इव रघुकारे न रमते धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम्।
   विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ।।
2. जगदीशचन्द्र मिश्र सम्पादित जातकमाला, भूमिका पृ0 10
3. His Sanskrit is faultless even though it does not always comply strictly with the rules of Panini.
   (Sukumarsen in Indian Historical Quarterly II, 1916 p.657 FF).
4.
5.

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनु0-मंगलदेवशास्त्री) पृ0 79-80

इसके अतिरिक्त अश्वघोष स्पष्टत: प्रथम शताब्दी के आसपास के कवि माने जाते हैं और नि:सन्दिग्ध रूप से कनिष्क के समकालिक थे, इस विषय में प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। जबकि आर्यशूर सामान्यतया तृतीय चतुर्थ शताब्दी के कवि माने जाते हैं। जातकमाला की भाषा के अध्ययन के आधार पर नलिनाक्षदत्त ने तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी का माना है।[1] जे०एस०स्पेयर ने भी जातकमाला की भाषागत शुद्धता एवं लालित्य के आधार पर कवि का यही समय निर्धारित किया है क्योंकि ये दोनों भाषागत तथ्य एक उच्चस्तरीय साहित्यानुराग और उत्कृष्ट शब्दप्रयोग वाले काल की ओर इङ्गित करते हैं।[2] इस प्रकार भाषागत आधार पर भी दोनों पृथक् सिद्ध होते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. It is perhaps from 3rd or 4th Century A.D., the high learned Buddhist gave preference to Paniriin Sanskrit and that language in the composition of their work. To this category belonged writers like Ashwajhosha, Nagarjun, Aryadeva, Asanga, Vasubhndhur, Shantideva, Kshemendra as also others. (Jatakmala Ek Adhyanayan, P. 40).

2. Jatakamala edited by J.S.Speyer , Introduction P. XXVII).

धर्म के आधार भी आर्यशूर एवं अश्वघोष पृथक् सिद्ध होते हैं। आर्यशूर निश्चितरूपेण महायानी थे, यह बात कवि के धर्म के विषय में पहले सविस्तार कही जा चुकी है, जबकि अश्वघोष मूलत: हीनयानी थे, भले ही बाद में महा-यानी हो गये हों। एस0सी0बनर्जी ने अश्वघोष को हीनयानी कहा है।[1] अवधेय है कि अश्वघोष के महायानी होने में प्रयोजक है"महायानश्रद्धोत्पादशास्त्र"।डॉ0 बलदेव उपाध्याय कहते हैं कि अश्वघोष की धार्मिक प्रवृत्ति तथा विश्वास महा-यान के तत्त्वों की ओर कथमपि नहीं है। उनके अनुसार बुद्ध धर्म का मेरुदण्ड है, बुद्ध भगवान के प्रति अटूट श्रद्धा,उनके आचार प्रधान धर्म में गाढ़ विश्वास तथा योग की साधना। अश्वघोष का धार्मिक विश्वास हीनयान धर्म में ही निश्चयरूप से माना जा सकता है। फलत: महायान के प्रौढ विकाश का प्रतिपा-दक "महायाश्रद्धोत्पादशास्त्र" हीनयानी अश्वघोष के मत्थे कभी नहीं मढ़ा जा सकता।[2] अन्यत्र कहते हैं कि अश्वघोष की धार्मिक भावना सर्वास्तिवादी सम्प्र-दाय की ही थी, इसका संकेत"विभाषा" की रचना में प्रयोजक होने से भी हमें मिलता है।[3]

वाचस्पति गैरोला कहते हैं कि "महायानश्रद्धोत्पादशास्त्र" के अंग्रेजी अनुवाद ती सुजुकी एवं रिचर्ड्स ने किये हैं। इस अनुवादकद्वय ने उक्तकृति को अश्व-घोष कृत सिद्ध किया है और इसके आधार पर यह भी सिद्ध किया है कि पहले

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1• ए कम्पेनियन टू संस्कृत लिटरेचर, पेज 17

2• संस्कृत साहित्य का इति-बल्देव उपाध्याय पृ0171

3• संस्कृत साहित्य का इतिहास (बल्देव उपाध्या) पृ0170

महायान सम्प्रदाय की माध्यमिक शाखा के पहले शून्यवादी आचार्य अश्वघोष थे विण्टरनित्ज और तकाकुसु इसको किसी दूसरे विद्वान की कृति बताते हैं। किन्तु डॉ० चारु की आधुनिकतम गवेषणा के आधार पर इसके लेखक अश्वघोष ही थे।[1] दूसरीतरफ डॉ कमलाकान्त मिश्र कहते हैं कि इसमें विज्ञानवाद और शून्यवाद का विकसित विवेचन है तकाकुसु, विण्टरनित्ज, राहुलसांस्कृत्यायन, डॉ०राधाकृष्णन आदि विद्वानों के अनुसार यह ग्रन्थ शून्यवाद के प्रथम आचार्य नागार्जुन (20 ईशवी) तथा विज्ञानवाद के प्रथम आचार्य असंग एंव वसुबन्धु के पहले का नहीं हो सकता। अतएव इस ग्रन्थ का रचयिता अश्वघोष दूसरा है जो 400 ई० के बाद हुआ होगा। इसके विपरीत टी सुजुकी आदि विद्वान् एक ही अश्वघोष मानते हैं। इनके अनुसार नागार्जुन से भी पहले प्रथम श०ई० में विरचित शून्यवादी विचारधारा की प्रथम कृति "अष्टसाहस्रिकप्रज्ञापारमिता" की रचना की थी। चीनी परम्परा भी इसी का समर्थन करती है। यह ग्रन्थ अश्वघोष के महायानी विचारधारा का प्रेरक रहा है।[2] विण्टरनित्ज, कीथ, जी०के०नारीमन आदि अश्वघोष को मूलतः सर्वास्तिवादीहीनयानी और बुद्धभक्ति के अतिशय दबाव के कारण बाद में महायानी होने वाला बताते हैं।[3] इस प्रकार कहा जा सकता है कि वह हीनयानी सर्वास्तिवदी विद्वान् थे, साथ ही महायान के योगाचार सम्प्रदाय के विज्ञानवादी दार्शनिक भी। हीनयानी कुछ त्रुटियों के परिमार्जन के

---

1. गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ0725
2. "जातकमाला एक अध्ययन" पृ0 12
3. Hist. of Indian Lit., II, P.256
   Hist. of Sanskrit Lit. (हिन्दी) अनु· मंगलदेवशास्त्री P. 70
   Literary Hist of Sanskrit Buddhism P.28-30

लिए उन्होंने "महायानश्रद्धोत्पादशास्त्र"की रचना की थी। स्पष्ट है कि मूलतः हीनयानी होते हुए भी अश्वघोष का महायान के विकास में योगदान रहा यह उनके काव्यों से भी सिद्ध है।[1] अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि महायानी आर्यशूर मूलतः हीनयानी अश्वघोष से पृथक् थे।

जी0के नारीमन, डॉ सूर्यकान्त, विण्टरनित्ज, आर0सी0 द्विवेदी एवं प्रो0 भाट तथा पी0एल0 वैद्य आदि विद्वान् आर्यशूर को सूत्रालङ्कार(कल्पना-मण्डितका) की शैली का अनुसर्ता कहा है। बहुत सम्भव है कि शैली के साम्य के कारण तथा आर्यशूर के जीवन विषयक अज्ञान के कारण अश्वघोष व आर्यशूर में अभिन्नता मानने लगे हों क्योंकि अभी तक"सूत्रालंकार" या "कलानामण्डतिका" अश्वघोष की हो रचना मानी जाती थी।405 ई0 में इसका चीनी अनुवाद करने वाले कुमारजीव इसका लेखक अश्वघोष बताते हैं किन्तु मध्य एशिया से प्राप्त इसके मूल संस्कृत के कतिपय अंशों से यह कुमारलात की कृति सिद्ध होता है।[3] अभी तक यह अधूरा मिलता है। युवानच्वाङ् के अनुसार कुमारलात सौत्रान्तिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक व तक्षशिला निवासी थे। और भी, आर्यशूर पर अश्वघोष के प्रभाव के कारण दोनों में अभिन्नता की परिकल्पना भी अनुचित हैं क्योंकि दोनों ही बौद्ध उपदेष्टा कवि हैं दोनों की विषयवस्तु एक है। तदनुसार शैली की स्निग्धता पदावली की मसृणता, भाषा की प्रसन्नता में साम्य तो सहजानुमान्य है। फिर भी, अनुकार्य और अनुकर्त्ता होने से दोनों में ऐक्य नहीं

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "संस्कृत कवि दर्शन"(भोलाशंकर व्यास)

2. संस्कृतवाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, पृ0 162

3. संस्कृत साहित्य का इतिहास(बल्देव उपाध्याय) पृ0 170

अपितु अनैक्य प्रतिपादन ही सिद्ध होता है।

तारानाथ का हवाला देते हुए जे0एस0स्पेयर ने भी बुद्धचरित और जातकमाला के लेखक को एक कहना असम्भाव्य कहा है। क्योंकि दोनों में शैलीगत पूर्णरूपेण अन्तर है।[1] अन्यत्र उन्होंने आर्यशूर को बुद्धचरित के लेखक से उत्तरवर्ती कहा है।[2] अन्ततः कहा जा सकता है कि आर्यशूर व अश्वघोष नितान्त भिन्न व्यक्ति हैं। आर्यशूर के जीवन विषयक अज्ञान एवं अश्वघोष की शैली से प्रभावित होने के कारण दोनों में अनौचित्यपूर्ण अभिन्नता का प्रतिपादन नहीं किया जाना चाहिए।

---

1. Taranatha identifies him with Ashwaghosha and adds many name by which the same great man should be known. It is , however, impossible that two works so entirely different in style and spirit as the Buddhacharita and Jatakamala, should be ascribed to one and the same author.

(Speyers Jatakamala P. XXVII XXVII )

2. I think, however, he is posterior to the author of the Buddhacharita (Jatakamala (Speyer's Introduction P. XXVIII).

मातृचेट व अश्वघोष का वैभिन्न्य सिद्ध किया ही जा चुका है। मातृचेट और आर्यशूर भी एक व्यक्ति नहीं हो सकते, क्योंकि मातृचेट के विषय में यह तो प्रायः निर्विवाद मान्य है कि वे कनिष्क के समकालिक लेखक थे, जबकि आर्यशूर का समय तीसरी शती से पहले कथमपि नहीं सिद्ध किया जा सकता। अपरञ्च, दोनों में भाषागत और शैलीगत साम्य दूर-दराज तक भी नहीं है। इस प्रकार मातृचेट, अश्वघोष और आर्यशूर तीनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं इसमें किञ्चित् वैविध्य नहीं है।

## कृतित्व

अधोलिखित ग्रन्थों की आर्यशूर की रचनाओं के अन्तर्गत गणना होती है-[1]

जातकमाला (बोधिसत्त्वावदानमाला)

सुभाषितरत्नकरण्डकथा

पारमितासमास

प्रतिमोक्षसूत्रपद्धति (मात्र तिब्बती अनुवाद में प्राप्त, टोहोकू सूची 4/03

बोधिसत्त्वजातकधर्मगण्डी (" " " " सूची 4/57)

सुपथनिर्देशपरिकथा ( " " " " सूची 4/75)

वस्तुत: आर्यशूर की कृतियों के बारे में भी कुछ निश्चित ज्ञात नहीं है। यहाँ तक कि उपर्युक्त रचनाओं के बारे में भी विप्रतिपत्तियाँ उठती हैं, आगे स्पष्ट होगा। कुछ विद्वानों की ऐसी धारणा है कि आर्यशूर ने कई अन्य बौद्ध ग्रन्थों का प्रणयन या कम से कम परिष्कार अवश्य किया है। पी०एल०वैद्य लिखते हैं कि "दिव्यावदान" का 38वाँ अवदान (मैत्रकन्यकावदान) आर्यशूर की ही रचना है यह मेरी निश्चित धारणा है क्योंकि उसकी भाषा, शैली तथा उपक्रमोपसंहार की पदावली वैसा स्पष्टतया सूचित करती हैं। मेरी यह भी धारणा है कि इस ग्रन्थ का 22 वाँ अवदान (चन्द्रप्रभावदान) और 32 वाँ अवदान आर्यशूर के द्वारा रचित या परिष्कृत हैं।[2]

---

1• "जातकमाला- एक अध्ययन" डा० कमलाकान्त मिश्र, पृ०4।

जातकमाला-पी०एल०वैद्य द्वारा सम्पादित, प्रस्तावना पृ०13

2• पी०एल० वैद्य द्वारा सम्पादित जातकमाला, भूमिका पृ042

सम्प्रति आर्यशूर के नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं वे हैं जातक-माला, पारमितासमास, तथा सुभाषितरत्नकरण्डककथा। अन्य सभी अपने मूल रूप को समाप्त कर चुके हैं, मात्र तिब्बतीय अनुवाद में प्राप्त होते हैं। अत: इन्हीं तीनों का विवेचन उपयुक्त प्रतीत होता है।

## जातकमाला

इसके विषय में आगे सविस्तर चर्चा होगी। इसमें भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों के दिव्य कर्मों को उपदेशपूर्ण लघुकथाओं के रूप में व्याख्यानों का रोचक संग्रह उपलब्ध है। भगवान् एक जन्म के प्रयत्नों से ही बुद्धत्व नहीं प्राप्त किये अपितु असंख्य जन्मों तक बुद्धत्व प्राप्ति के लिए भगीरथ प्रयत्न किये थे। उनके इन्हीं पूर्व जन्मों की कहानियों की माला "जातकमाला" कहलाती है। इसे "बोधिसत्त्वावदानमाला" भी कहते हैं। कथाओं की सामग्री प्राय: पहले से ही मिलती है। 12 कथाएँ पाली "चरियापिटक" में मिलती हैं। कुछ जातककथाएँ "महावस्तु" में भी मिलती हैं। जातकमाला में कुल 34 कहानियाँ हैं। ग्रन्थ बुद्ध तथा बोधिसत्त्व की वन्दना के साथ प्रारम्भ होता है। प्रत्येक जातककथा "तद्यथानुश्रूयते" इस शब्द समूह के साथ प्रारम्भ होता है।

## पारमितासमास

इसके रचयिता आर्यशूर बताये जाते हैं। इसकी मूलप्रति नेपाल महाराज की लाइब्रेरी में सुरक्षित है। इटली के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ तुचि ने इसकी प्रतिलिपि की थी, जिसे आधार मानकर उनकी शिष्या ए0फेरारी ने इटली भाषा में अनुवाद के साथ पारमितासमास का एक संस्करण सन् 1946 में रोम से "एनाली लिटरेन्सी" नामक पत्रिका के "x" भाग में प्रकाशित किया है। इस

ग्रन्थ में दानपारमिता, क्षान्तिपारमिता, शीलपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता और प्रज्ञापारमिता नामक छह समास या सर्ग हैं, जिनमें 364 श्लोक हैं। पारमिता अर्थात् नैतिक और आध्यात्मिक पूर्णता का जो आदर्श जातकमाला की कथाओं में पाया जाता है वही इस पारमितासमास में भी प्रतिपादित हुआ है। भाषा जातकमालावत् सरल है।

## सुभाषितरत्नकरण्डककथा

यह सर्वप्रथम डॉ एस०सी० बनर्जी द्वारा नेपाल में प्राप्त एकाकी पाण्डुलिपि से सम्पादित तथा 1959 ख्रिष्टाब्द में "मिथिला संस्कृत शोधसंस्थान" दरभंगा द्वारा "बौद्धसंस्कृतग्रन्थावली" के अन्तर्गत प्रकाशित हुई।[1] यह सद्धर्म को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से लिखा गया ग्रन्थ है। जनसाधारण के मस्तिष्क में बौद्ध धर्म के प्रति विश्वास उत्पन्न करने के लिए भिक्षुओं के उपदेशवाक्य के रूप में इसकी रचना हुई है। इसमें कुल 28 अध्याय हैं जो सबके सब पद्य में हैं। श्लोकों की कुल संख्या 190 है। कथाएँ निम्नलिखित हैं-

1. पुण्यप्रोत्साहन कथा ॥श्लोक 1 से 7 तक ॥
2. धर्मश्रवणप्रोत्साहनकथा ॥ " 8 से 14 " ॥
3. दुर्लभमानुष्य कथा ॥ " 15 से 20 " ॥
4. दानकथा ॥ " 21 से 33 " ॥
5. पुण्यकथा ॥ " 34 से 45 " ॥
6. विम्ब कथा ॥ " 46 से 52 " ॥
7. स्नानकथा ॥ " 53 से 55 " ॥
8. कुंकुमादिकथा ॥ " 56 से 58 " ॥

| | | |
|---|---|---|
| 9• | छत्रकथा | (श्लोक 59 से 61 तक) |
| 10• | धात्वारोपणकथा | ( " 62 से 64 " ) |
| 11• | मण्डलकथा | ( " 65 से 68 " ) |
| 12• | भोजकथा | ( " 69 से 72 " ) |
| 13• | पानकथा | ( " 77 ) |
| 14• | वस्त्रकथा | ( " 78 से 80 ) |
| 15• | पुण्यादि कथा | ( " 81 से 84 " ) |
| 16• | प्रणामकथा | ( " 85 से 90 " ) |
| 17• | उज्ज्वालिकादानकथा | ( " 91 से 94 " ) |
| 18• | प्रदीपकथा | ( " 95 से 99 " ) |
| 19• | विहारकथा | ( " 100 से 103 " ) |
| 20• | शयनासनदानकथा | ( " 104 से 106 " ) |
| 21 | क्षेत्रकथा | ( " 107 से 113 " ) |
| 22• | विचित्रकथा | ( " 114 से 157 " ) |
| 23• | शीलपारमिताकथा | ( " 158 से 165 " ) |
| 24• | क्षान्तिपारमिताकथा | ( " 166 से 175 " ) |
| 25• | वीर्यपारमिताकथा | ( " 176 से 180 " ) |
| 26• | ध्यानपारमिताकथा | ( " 181 से 184 " ) |
| 27• | प्रज्ञापारमिताकथा | ( " 185 से 189 " ) |
| 28• | पारमितापरिकथा | ( श्लोक 190 ) |

इसमें कुछ अध्याय लम्बे हैं तथा कुछ अत्यन्त छोटे। उदाहरणार्थ विचित्रकथा में 44 श्लोक हैं और पारमितापरिकथा में मात्र एक श्लोक। ग्रन्थान्त में छह पारमिताओं का परस्पर सम्बन्ध एवं महत्त्व प्रतिपादित हुआ है। प्रत्येक पारमिता का यहाँ पृथक् निदर्शन हुआ है तथा जीवन में आध्यात्मिक उन्नति की प्राप्ति के लिए इसे आवश्यक बाताया गया है। वास्तव में पारमिताओं के सिद्धान्त ने जनमानस को पर्याप्त प्रभावित किया है। तथा बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाया है। अन्य महायान ग्रन्थों की भाँति यह ग्रन्थ भी बुद्ध के प्रणमन से प्रारम्भ होता है।

नेपाल के पुस्तकालय में प्राप्त एकमात्र हस्तलिपि के आधार पर ग्रन्थ के रचयिता के रूप में शूर का नाम लिया गया है। किन्तु चतुर्थ शती में हुए आर्यशूर बौद्ध संस्कृत काव्य के एक प्रख्यात लेखक थे। उन्होंने परिष्कृत काव्य शैली में अपनी रचना की है। उनकी रचना में कृत्रिमता की अपेक्षा कलात्मकता अधिक है। उनकी यह विलक्षणता उनकी एकमात्र प्रकाशित रूप में प्राप्त कृति जातकमाला से भलीभाँति परिपुष्ट हो जाती है। शूर ने विशुद्ध संस्कृत भाषा के लेखक के रूप में कवियों में ख्याति प्राप्त की है। अभिनन्द ने लिखा है—

सुबन्धौ भक्तिर्न क इह रघुकारे न रमते ,
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः
तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ।।

और इसके द्वारा शूर [आर्यशूर] की विशुद्ध भाषा-शैली के लिए प्रशंसा करते हैं ।अतः उपर्युक्त वचन के आलोक में जातकमाला के रचयिता आर्य-

है। क्योंकि इसमें बहुत अपूर्णताएँ पायी जाती हैं। इसमें न काव्यशक्ति का दर्शन होता है और न ही प्रेरणामूलक कल्पना का। इसमें व्याकरण की अनेक त्रुटियों एवं सदोष छन्दों की भरमार है। विषय की दृष्टि से भी इसमें कोई उन्नयनकारी बात नहीं है। उदाहरणार्थ एक भाग में भिक्षुओं को दान देने का विषय है जिसमें एब तरह का दान उपदिष्ट है। अतएव "सुभाषितरत्नकरण्डककथा" का रचयिता या तो कोई अन्य व्यक्ति है या आर्यशूर नामक कोई परवर्ती लेखक।

इस प्रकार जातकमाला के शैली के लालित्य को देखकर, अन्य कृतियाँ भी उसी कवि की हों - यह बात गले के नीचे नहीं उतरती बहुतकुछ सम्भव है- आर्यशूर नामक दो कवि हुए हों। हम स्पष्टरूपेण जानते हैं कि नागार्जुन नामधारी दो व्यक्ति विभिन्न कालों में विद्यमान थे। एक माध्यमिक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे और दूसरे महान् तान्त्रिक आचार्य। अत: दोनों नागार्जुन एक दूसरे से चार सौ वर्ष आगे-पीछे थे, किन्तु तिब्बतीय परम्परा में असावधानीवश दोनों एक समझ लिये गये। ऐसी ही घटना आर्यशूर के विषय में भी हो सकती है। सम्भवत: दो आर्यशूर हुए होंगे। एक जातकमाला के लेखक दूसरे "सुभाषितरत्नकरण्डककथा" के। तिब्बतीय परम्परा में दोनों एक ही व्यक्ति के रूप में समझ लिये गये होंगे। अतएव चतुर्थ शताब्दी में हुए आर्यशूर को हम एकमात्र प्रामाणिक रचना "जातकमाला" का ही लेखक कह सकते हैं। इसी मत का प्रतिपादन डॉ॰ पी॰एल॰वैद्य तथा डॉ॰ ए॰सी॰बनर्जी ने अपने ग्रन्थ की भूमिका में किया है।[1]

---

1. पी॰एल॰वैद्य द्वारासम्पादित जातकमाला, प्रस्ता॰पृ॰14
वैद्य द्वारा सम्पादित जातकमाला के चतुर्थ परिशिष्ट में प्रकाशित सुभाषितरत्नकरण्डककथा की भूमिका

## द्वितीय अध्याय

## जातक कथाओं का उद्गम, स्वरूप, प्राचीनता, संख्या, जातकट्ठकथा के लेखक व समय

## जातकट्ठकथा-जातक कथाओं का उद्गम, स्वरूप, प्राचीनता, संख्या, पालि जातकट्ठकथा के लेखक व समय

अशोक के शिलालेखों[1] से हम जानते हैं कि ताम्रपर्णी द्वीप (श्रीलंका) भी उसके प्रभुत्व के अन्तर्गत आने वाला पड़ोसी देश था और वहाँ अशोक के धर्मप्रिय प्राचारक दूत भेजे गये थे। स्थविर महेन्द्र ने श्रीलंका के भिक्षुओं को सम्पूर्ण त्रिपिटक पढ़ाया था। यद्यपि महावंश के अनुसार वट्टगामणी अभय के शासनकाल में ई0पू0 27-1 ई0 में त्रिपिटक-पालि और अट्ठकथा का लेखबद्ध किया जाना वर्णित है[2] किन्तु जिन-जिन देशों में अशोक प्रेषित धम्म-प्रचारक गये अपने साथ त्रिपिटक भी लेते गये चाहे वह मौखिक रूप में ही क्यों न गये हों। उस समय पिटकों के भाणक आचार्य थे और वे उन अंगों को कण्ठस्थ रखते थे। भरहुत, सारनाथ, साँची आदि स्थानों से प्राप्त अभिलेखों में त्रिपिटक नामधारो[3], पंचनैकायिक[4] आदि भाणकों के उल्लेख मिलते हैं। अट्ठकथा ग्रन्थों से तथा त्रिपिटक में भाणवारो के निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि दीघ, मज्झिम, अगुंत्तर आदि निकायों के तथा विनय, अभिधम्म आदि पिटकों के अलग-अलग भाणक थे। कुछ भाणक त्रिपिटकधारी भी थे और यह परम्परा बौद्धकाल से ही चली आ रही थी। जिस समय अवन्ति जनपद

---

1. अशोक के अभिलेख पृ041 (डॉ0राजबली पाण्डे, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, लि0 कबीर चौरा वाराणसी)
2. महावंश, 33/100-101, पृ0195 आनन्द कौसल्यायन प्रयाग
   पिटकत्तय पालिं च............लिखापयुं ।। महावंश 33/100,101
3. "सारनाथ का इतिहास" पृ0 139, "भिक्षुस्य बलस्य त्रैपिटकस्य" भिक्षु धर्मरक्षित, वाराणसी 1961
4. स्तूप आफ भ्रहूता, पृ0142, कनिंघम, 1879

से "सोणकुटिकण्ण" श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध के पास आये थे और एकरात्रि में उन्होंने भगवान के पास निवास किया था। रात्रि के व्यतीत होने पर भगवान् ने आयुष्मान् सोण से पूँछा था कि भिक्षु धर्म का पाठ कर सकते हो? तब उन्होंने सोलह अट्ठ-वाग्गियों को सस्वर सुनाया था।[1] इससे यह जान पड़ता है कि भिक्षु पूरे ग्रन्थ का सस्वर पाठ कर सकते थे और ये उन्हें कण्ठस्थ रहा करते थे। इसी कण्ठाग्र करने की विधि-विधान से महेन्द्र द्वारा पालि त्रिपिटक लंका ले जाया गया था और वहाँ इसकी विशुद्ध परम्परा कायम की गई थी। यदि त्रिपिटक न गया होता तो वट्टगामणी अभय के समय इसका लेखबद्ध किया जाना सम्भव न होता। वहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भिक्षुओं की स्मरणशक्ति के ह्रास को देखकर त्रिपिटक को लेखबद्ध किया गया था।[2]

अट्ठकथा की परिपाटी एक प्रकार से बुद्धकाल में ही प्रारम्भ हो गयी थी। डॉ धर्मरक्षित इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि जिस समय अशोकपुत्र महेन्द्र स्थविर धर्मप्रचारार्थ लंका पहुँचे उस समय पालि सूत्रों के भाव को ठीक-ठीक समझाने के लिए तथा सूत्र सम्बन्धी कथान्तर जानने के लिए जब ग्रन्थ लिखने की आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने लंका को तत्कालीन भाषा सिंहल प्राकृत में ग्रन्थों को लिखवाया। यों तो बुद्धकाल से ही वैसे कितने ग्रन्थों तथा सूत्रों की अट्ठकथा का निर्माण हो चुका था जो कण्ठस्थ कर ली जाती थी। हम यह कह सकते हैं कि सारिपुत्र द्वारा उपदेश दिया गया ग्रन्थ महानिद्देश, चुल्लनिद्देश, सुत्तनिपात के कतिपय सूत्रों का कतिपय अट्ठकथारूप ही है। धम्मसंगणी का अट्ठकथाकाण्ड भी इसका अपवाद नहीं है।

---

1. हिन्दी विनयपिटक 5,3,2
2. बौद्ध निकायों की परम्परा, पृ0117

इतना होते हुए भी अट्ठकथा शब्द का प्रयोग और इसका प्रयोजन सिंहल अट्ठ-कथाओं के निर्माण करने से ही वर्तमान व्यवहृत अर्थ में लिया गया है।[1]

महेन्द्र के समय लिखी गई अट्ठकथाओं के आज केवल नाममात्र अवशेष हैं क्योंकि जब आचार्य बुद्धघोष लंका गये और उन्होंने पालि त्रिपिटक तथा सिंहली भाषा में ग्रन्थों का अध्ययन किया और अपने पाण्डित्य को प्रमाणित करने के लिए संयुक्त निकाय की दो गाथाओं को लेकर "विशुद्धिमग्गो" जैसे महान् ग्रन्थ की रचना की तब उनका ध्यान सिंहली अट्ठकथाओं को भी पालि भाषा में परिवर्तित करने की ओर आकर्षित किया गया। तब उन्होंने समय-समय पर विभिन्न भिक्षुओं द्वारा साग्रह निवेदन किये जाने पर विभिन्न पालि अट्ठकथा ग्रन्थों की रचना सिंहली अट्ठकथा ग्रन्थों के आधार पर की। "सामन्तपासादिका" आदि से हम जानते हैं कि बुद्धघोष से पूर्व महेन्द्र द्वारा सिंहली भाषा में रचित पाँच अट्ठकथा ग्रन्थ थे-महाअट्ठकथा, कुरुन्द अट्ठकथा, पच्चरिय अट्ठकथा, अन्धक अट्ठ-कथा और संखेप अट्ठकथा।

इन अट्ठकथाओं का पालि में परिवर्तन होने के उपरान्त इनकी उप-योगिता घटगई और लुप्त हो गईं,[2] फूँक दी गईं या किसी चैत्य में निधान कर दी गईं।[3]

धम्मपदट्ठकथा के प्रारम्भ में इन अट्ठकथाओं के महत्त्व को बताते हुए बुद्धघोष ने लिखा है-

---

1. बौद्ध धर्म, दर्शन तथा साहित्य, पृ0155

2. "बुद्धघोसुप्पत्ति, 7वाँ परिच्छेद, पृ023, एन0के0भागवत पब्लिकेसन लि0

"परम्परा से लाया गया उसका सुन्दर वर्णन जो ताम्रपर्णी द्वीप में उसकी भाषा में लिखा गया है वह शेष प्राणियों के हितार्थ नहीं होता, शायद वह सारे लोकवासियों के हितार्थ हो, ऐसी आराधना करने पर सिंहली भाषा से मनोरम पालो भाषा में भाषान्तर कर पण्डितों के मन में प्रीति और आनन्द को उत्पन्न करते हुए धर्म-अर्थ के साथ कहूँगा"।[1]

इससे स्पष्ट है कि बुद्धघोष से पूर्व अर्थात् महेन्द्र द्वारा जिन पालि अट्ठकथाओं का सिंहली भाषा में अनुवाद हुआ था वे ही अट्ठकथा पुन: नये रूप में पालि में परिवर्तित की गईं। यह बात "बुद्धघोसुप्पत्ति" में भी कही गई है।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्थविर महामहेन्द्र द्वारा पालि त्रिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाएं लंका ले जायी गईं और पालि अट्ठकथाओं को सिंहली भाषा में अनुवाद उसी के समय कराया गया था जो पाँचवीं श0ई0तक अर्थात् बुद्धघोष के लंका पहुँचने तक विद्यमान थीं जिनके आधार पर उन्होंने पुन: पालिभाषा में अट्ठकथा ग्रन्थों का सम्पादन किया।

चतुर्थ संगीत में सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक और अट्ठकथा ग्रन्थों का संगायन हुआ था और फिर उन्हें लिपिबद्ध कर लिया गया था। दीपवंश में कहा गया है कि "पूर्वकाल में पालि त्रिपिटक और उसकी अट्टकथाएँ महामतिमान् भिक्षु कण्ठाग्र करके ही लाये थे। इस समय प्राणियों की हानि होती देखकर भिक्षु एकत्र हुए और

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. धम्मपदट्ठकथा पृ0।

2. बुद्धघोसुप्पत्ति, पृ023

धर्म की परिस्थिति के लिए उसको ग्रन्थ रूप में लिखा गया।[1] यही बात "महावंश" में कही गई है।[2] ~~"महावंश"~~ "सासनवंश" में बताया गया है कि उस समय भिक्षुओं के बौद्ध ग्रन्थों का पाठ स्मरण रखना जब कठिन हो गया तब उन्होंने उसे लुप्त होने से बचाने के लिए वट्टगामणी अभय के छठें वर्ष में भविष्य को चिन्ता करते हुए पाँच सौ भिक्षुओं ने मिलकर चतुर्थ संगीति की थी और बुद्धवचनों को अट्ठकथा सहित लिपिबद्ध कराया गया था[3] तथा उसके उपरान्त ही सिंहल द्वीप तथा भारत में भिक्षु-संघ उसी तरह विभिन्न निकायों में विभक्त हो गया जैसे मानसरोवर से निकलने वाली नदियाँ गंगा, यमुना आदि नामों में विभक्त हो गईं।[4]

## जातक कथाओं का उद्गम

"जातक" शब्द का अर्थ है जात अर्थात् जन्म सम्बन्धी। जातक भगवान् बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ है। " सद्धर्मपुण्डरीक" से ज्ञात होता है कि बुद्ध असंख्य श्रोताओं को योग्यता व ग्राह्य शक्ति को देखकर उपदेश देते थे। इन उपदेशों में वे मनोरञ्जक कहानियाँ भी कहते थे जिनके श्रवण से भक्त लोग मनोरञ्जन के साथ-साथ धर्मलाभकरके अपने लोक और परलोक दोनों में सुखी जीवन प्राप्त करते थे।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. दीपवंश, 19/44-45
2. महावंश, 33/100-101
3. सासनवंश, पृ022 नवनालन्दा विहार प्रकाशन नालंदा, 1961
4. वहीं
5. सद्धर्म पुण्डरीक, अध्याय II, 45

वहीं यह भी पाते हैं कि बुद्धभगवान् सुत्तों से भी उपदेश देते थे तथा गाथाओं से भी, इसी प्रकार पौराणिक कथाओं से भी तथा जातकों से भी, इसी प्रकार पौराणिक कथाओं से भो तथा जातकों से भो उपदेश देते थे। उपदेश के समय बुद्ध लोककथाओं के साथ-साथ कल्पित कथाओं को भी प्रयुक्त करते थे-यह स्वाभाविक भी है और यही परिपाटी उनके विद्वान् शिष्यों ने अपनाई। बोधसत्त्वावस्था में पारमिता के अभ्यास के द्वारा बुद्ध ने उच्च मानवीय गुण प्राप्त किये। उस अवस्था के उच्च-गुणों के उपदेश देते समय वे कथाओं में गाथाएँ जोड़कर उन गुणों को प्रकट करते थे और वह गाथा रूप कथाभाग जातक कथा कहलाईं। इनके अन्तर्गत उन्होंने प्रचलित लोककथाओं को तथा पौराणिक आख्यानों को भी जातक रूप में परिणत किया। एक ओर तो उनके द्वारा इन लोककथाओं को साधारण रूप में भी बिना बोधिसत्त्व के निर्देश के सुत्तों में निर्देश किया गया है। दृष्टान्त के लिए "चुल्लवग्ग" का "तित्तिरजातक" तथा "महावग्ग" का "दीघतीकोशलजातक" लिये जा सकते हैं। दूसरी ओर कुछ वास्तविक जातक कथाओं को भी सुत्तों में वर्णित किया गया है। उदाहरण के लिए दीघनिकाय के "कूटदन्त" तथा "महासुदस्सनसुत्तन्त" का उल्लेख किया जा सकता है।

डॉ0 मालसेकर डॉ0 विण्टरनिट्ज के "कलकत्तारिव्यू" के लेख का शहारा लेकर कहते हैं कि "अनेक धार्मिक और गुणी राजाओं की तथा पवित्र साधुओं एवं विशिष्ट पुरुषों की कहानी कहना भारत की प्राचीन प्रथा है। ऐसी कथाओं के सुनने से लोगों का विश्वास था कि पाप और दु:ख दूर होते थे तथा पुण्यलाभ और सुख प्राप्त होता था। ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा गया है कि पुत्रकामना करने वालों को शुनःशेप आख्यान सुनना चाहिए इससे उनकी इच्छा अवश्य पूरी होगी।

अच्छी-अच्छी नैतिक और धार्मिक शिक्षाओं को देने के लिए भी कहानी कहना यह भारतीय जनमानस के स्वभाव की एक विशेष प्रवृत्ति रही है। परम्पराओं से हमें ज्ञात होता है कि जब कभी अवसर आता, बुद्ध भगवान् का भी यह स्वभाव था कि वह अपने सारे लम्बे उपदेशक जीवन में अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं की व्याख्या करने और उनकी आलोचना करने के लिए, अपने पूर्वभव की उसी प्रकार की कथा कहा करते थे। इस प्रकार की कथाओं का उनके शिष्यों ने संग्रह किया और बाद में जातक ग्रन्थ तैयार किया जिसके ऊपर भारत में और फिर लंका में अट्ठकथा (अर्थकथा) लिखी गई।[1]

अवधेय है कि बुद्ध भी उपदेशार्थ जातकों का उपयोग करते थे। उनमें से कुछ जातक कथाएँ निकायों में भी आती हैं, यथा "चुल्लवग्ग" का "तित्तिर जातक" और "दीघनिकाय" का "महासुदस्सन जातक"। "चरियापिटक" तो वास्तव में जातक ग्रन्थ ही है जिसमें कि भगवान् बुद्ध के बोधिसत्त्वावस्था के जन्मों का वर्णन पद्यों में किया गया है। इसी तरह "खुद्दकनिकाय" का "अपदान" भी पद्यमय जातक ग्रन्थ ही है, जिसमें कि अर्हतों के जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ पद्य में वर्णित की गई हैं। इसी प्रकार "बुद्धवंश" भी जातक ग्रन्थ ही है जिसमें बुद्ध की उस सम्पूर्ण बोधिसत्त्वावस्था का वर्णन है जिसमें कि उनको 24 पूर्वबुद्धों के हाथ विवरण (बुद्ध होने की घोषणा) मिली थी।

---

1. The Pali Literature of Ceylon.

"जातक कथाओं का वर्तमान रूप अर्थकथा साहित्यिक काटछाँट के अतिरिक्त कुछ नहीं, जो पाँचवीं शताब्दी की उपज है। बुद्ध ने प्रचलित कथाओं को धर्मोपदेश का आधार बनाया। उन्हीं के अनुसरण में उनके शिष्यों ने भी धर्मनिरपेक्ष कथाओं को जातकों का रूपदेदिया।[1] यही रिजडेविड्स[2] व विण्टरनिट्ज के कथन से भी पुष्ट होता है। वे कहते हैं कि बौद्ध भिक्षु वास्तविक भारतीय नहीं कहे जाते यदि वे भारतीयों के धार्मिक लाभार्थ महती आत्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए कहानियों का प्रयोग नहीं करते, ऐसा मात्र बौद्ध सन्त ही नहीं अपितु सभी मतों के सन्त करते थे जैसा कि ईसाई धर्म के पादरियों ने शताब्दियों बाद किया[3]।

---

1. The present form in which we find the Jatakas, is nothing but a book of commentary, a literary manipulation, which may have grown out of the works of a considerable number of scholars in the 5th C.A.D. or even at a later period. This had become possible for the reason that the Buddha himself knowing the faculties and adaptibilities of his numerous ,bearers would narrate many amusing interesting stories . . . . . . This has been corroborated in the सद्धर्मपुण्डरीक for the first time. In the same book it is stated that the Buddha teaches both by Sutras and stanjas and legends and Jatakas.
   Following this tradition the Buddhist monks and preachers possibly would every now and then change the stories of the secular literature into Jatakas.

   'A Study on Jatakas and Avadanas ' P-15.
2. 'Buddhist Birth Stories ' introduction P. 74-75.
3. Now the Buddhist monks would not have been true Indians, if they had not taken into account the need, so deeply rooted in the soul of Indian people, of hearing and relating stories, and if they had not utilised this need to gain followers for their religion.

   ' A History of Indian Literature ' Vol. II,P.114.

बौद्ध साहित्य के नवांग विभाजन में[1] परिगणित होने से जातकों की प्राचीनता तो निर्विवाद है। उसी आधार पर कीथ कहते हैं कि 9 अंगों के अन्तर्गत होने से प्राचीन जातक ग्रन्थ की सूचना मिलती है लेकिन वह आज के जातक ग्रन्थ को नहीं अभिलक्षित करता क्योंकि नवांग विभाजन के समय तक यह अस्तित्व में ही नहीं आया था। वह आगे कहते है कि उस नवांग साहित्य के जातकों में बुद्ध किसी पशु के रूप में नहीं अपितु प्रसिद्ध साधु व उपदेष्टा रूप में ही दिखाये गये हैं। जातक का यह प्रथमत: आदर्श है, जो हम त्रिपिटक में पाते हैं वह इसका अवान्तरकालिक रूप है।[2] इसलिए उनका विचार है कि आज के जातक ग्रन्थ के समान जातकों का कोई स्वरूप नहीं था बल्कि वे मात्र कथाएँ, वृत्तान्त, कहावतें, पौराणिक आख्यान थे और सम्भवत: गद्य में।[3]

सिंहली परम्परा के अनुसार मूल जातक में केवल गाथाएँ ही थीं और गाथाओं को सम्बद्ध करने वाली कथाओं के साथ इसके ऊपर अट्ठकथा ~~को सम्बद्ध करने तक~~ बहुत प्राचीन काल में सिंहली भाषा में लिखी गई थीं। इसका पाँचवी श0ई0 पश्चात् में बुद्धघोष ने पालि में अनुवाद किया था जिसके पश्चात् मौलिक सिंहली अट्ठकथा लुप्त हो गई। डॉ0 शिवचरण लाल जैन का विचार है कि प्रारम्भ

---

1. सुत्त, गेय्य, वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधम्म, वेदल्ल।

2. 'Buddhist India' P. 88

3. So Rhys Davids opines that the oldest form of the Jataka had no frame work and no verse like the modern Jataka book i.e. 'Jatakatthavannana'. They were only stories, lates, parables orlegends, perhaps in prose.

   'A History on the Jatakas and the Avadanas' P. 14.

में मूल रूप में जातक ग्रन्थ किस रूप में था, इसमें अट्ठकथा भाग था या नहीं यह निश्चित नहीं है। किन्तु इतना निश्चित है कि गाथा भाग इसमें मुख्य था और शायद मूल जातक ग्रन्थ में मात्र गाथाएँ ही थीं। ये गाथाएँ किसी ग्रन्थ से उद्धृत नहीं की गयी थीं क्योंकि वे वर्णनात्मक हैं और पात्रों तथा स्वयं बोधिसत्त्व के मुख से कही जाती थीं।[1] जबकि डॉ0 मललसेकर का विचार है कि गाथाओं के साथ कथाओं का मुख्य भाग भी उनके साथ होना चाहिए क्योंकि गाथाओं में वर्णनीय पात्रों के नाम नहीं दिये गये हैं।[2]

इस प्रकार हम मान सकते हैं, जैसा कि रिज डेविड्स का विचार है[3], कि वर्तमान जातक ग्रन्थ (जातकट्ठवण्णना) अपने आपमें पूर्ण नहीं है। प्राचीन साहित्य में प्रचलित सभी जातक इसमें नहीं हैं। रिज डेविड्स कहते हैं कि विभिन्न निकायों एवं विनयपिटक साहित्य में पाये जाने वाले दश जातक स्वरूप में बौद्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिए "महासुदस्सन जातक" और कुछ नहीं अपितु सूर्यपूजा का पौराणिक वृत्तान्त मात्र है।[4] विण्टरनित्ज के कथन से भी यह तथ्य परिपुष्ट होता है। वह कहते हैं कि "किसी कहानी को-भले ही वह धर्मनिरपेक्ष या बेकार हो-जातक रूप देने के लिए उसके नायक को बोधिसत्त्व से सदृशीकृत करना आवश्यक था।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. आचार्य बुद्धघोष व उनकी अट्ठकथाएँ" पृ0253
2. The Pali literature of Ceylon
3. Our existing Jataka is only a partial record
4. The story of ten Jatakas which are traced in the different Nikayas and Vinaya literature are specially Buddhist in Character. These stories were perhaps the common popular tales of the people of those days. But tales on they were modified and coloured to suit the Buddhist ethics. For instance, the Mahasudassanjataka is nothing but an Indian legend of sun worship.

आज जो जातक ग्रन्थ प्राप्त है उसके पाँच भाग हैं-पच्चुप्पन्नवत्थु, अतीतवत्थु, गाथा, वेय्याकरण, समोधान। पच्चुप्पन्नवत्थु से तात्पर्य वर्तमान काल को कथा-बुद्ध के जीवन में जो घटना घटी- से है और यही घटना पूर्व जन्म के वृत्तान्त को कहने का अवसर देती है। प्रत्येक जातक का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग यह अतीत वत्थु है। इसी के अनुकूल कहीं-कहीं पच्चुप्पन्नवत्थु गढ़ ली गयी प्रतीत होती है। पच्चुप्पन्नवत्थु के बाद एक या अनेक गाथाएँ आती हैं यही जातक के प्राचीनतम अंश माने जाते हैं। सही अर्थों में गाथाएँ ही जातक हैं। पच्चुप्पन्नवत्थु आदि पाँचों भागों से समन्वित जातक तो वास्तव में जातकट्ठवण्णना या जातक की व्याख्या है। गाथाओं के बाद वेय्याकरण या अत्थवण्णना आती है। इसमें गाथाओं की व्याख्या और उसका शब्दार्थ होता है। अन्तत: अतीतवत्थु के पात्रों को पच्चुप्पन्नवत्थु के पात्रों से सम्बन्ध मिलाया जाता है उसे समोधान भाग कहते हैं।

अत: स्पष्ट है कि जातक गद्य-पद्य मिश्रित रचनाएँ हैं। पद्य (गाथा) भाग जातक का प्राचीनतम अंश माना जाता है। त्रिपिटक के अन्तर्गत इसी को [illegible] मानना उचित होगा शेष सब अर्थकथा है। परन्तु जातकों की प्रकृति ऐसी है कि मूल को व्याख्या से अलग कर देने पर कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। गाथाओं पर जब अतीत की कथावस्तु का आवरण चढ़ाया जाता है तभी कथावस्तु का निर्माण होता है। अत: जातक में पाँच भागों का होना आवश्यक है जिसमें गाथा भाग छोड़कर शेष भाग बाद का जोड़ा हुआ है। वस्तुत: उपर्युक्त पाँचों भागों से युक्त कथाओं को जातक न कहकर हमें जातकट्ठवण्णना ही कहना चाहिए[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. पालि साहित्य का इतिहास (भरत सिंह उपाध्याय) पृ0278

अवधेय है कि भरहुत, साँची तथा गया के स्तूपों पर खुदे हुए जातकों के चित्रों पर कथाओं के शीर्षक ही नहीं अपितु वे दृश्य भी अंकित हैं जो केवल गद्य भाग में ही दिये गये हैं।[1] इससे अनुमान होता है कि दूसरी-तीसरी श०ई०पूर्व में कथा भाग भी पालि जातक में शामिल था। उसी पलि जातक के ऊपर उपर्युक्त दोनों सिंहली जातकट्ठकथा आधारित हों। जातक की गाथाएँ निसन्देह उसके गद्य भाग से बहुत प्राचीन हैं। ऐसा इनकी भाषा और शैली से मालुम पड़ता है। गथाओं की भाषा तथा उनका रूप बहुत ही प्राचीन है जबकि गद्यभाग सादा और क्रमबद्ध है। फिर भी जातक की बहुत सी कथाएँ और गाथाएँ भी बुद्ध भगवान् से भी प्राचीनतर हैं। प्रो० रायस डेविड्स का विचार है कि "जातक कथाओं" की बहुत बड़ी संख्या जातक ग्रन्थ से भी प्राचीनतर है और उन प्रचलित कथाओं के साथ गाथाएँ बाद में जोड़ी गई हैं तथा जातक ग्रन्थ के दशमांश की कथाएँ बिना गाथाओं के थीं जिनके अन्त में गाथाएँ बाद में जोड़ दी गईं और ये गाथाएँ प्राचीनतम हैं जो परम्परा से सिंहली जातकट्ठकथा में आयीं और जैसी आयी थीं वैसी ही पालि में भी रहीं। फिर भी यह सम्भव है कि जातकग्रन्थ का मूलरूप "चरियापिटक" के समान केवल गाथामय था, किन्तु बिना कथाओं के बहुत सी गाथाएँ बिल्कुल समझी ही नहीं जा सकती थीं। इसलिए उनके साथ लोककथाएँ जो पहले से ही विद्यमान थीं जोड़ दी गई।[2]

सम्पूर्ण जातक ग्रन्थ की विषयवस्तु का जिस आधार पर वर्गीकरण हुआ है उससे भी यह स्पष्ट है कि गाथा भाग या जिसे विण्टरनिट्ज आदि ने "गाथा जातक" कहा है[3] वही उसका मूल आधार है। जातक ग्रन्थ का वर्गीकरण विषयवस्तु के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

(2) पालि साहित्य का इतिहास (भरत सिंह उपाध्याय) पृ० ~~278~~ 258

आधार पर न होकर गाथाओं की संख्या के आधार पर हुआ है। उसमें 22 निपात हैं। पहले निपात की 150 कथाओं में गाथाओं की संख्या एक ही पायी जाती है। दूसरे निपात की 150 कथाओं में दो-दो गाथाएँ पायी जाती हैं। तीसरे-चौथे निपात में 50-50 कथाएँ हैं और गाथाओं की संख्या क्रमशः 3-3 और 4-4 हैं। 13 वें निपात तक यही क्रम चलता है। 14 वें निपात का नाम पकिण्णक (प्रकीर्ण) निपात है। इसमें नियमानुसार संख्या 14 न होकर विविध है। आगे के निपातों में गाथाओं की संख्या निरन्तर बढ़ती गई है। 22वें निपात में मात्र दश जातककथाएँ हैं किन्तु प्रत्येक में गाथाओं की संख्या 100 से भी ऊपर है। अन्तिम वेस्सन्तर जातक में तो सात सौ से भी ज्यादा गाथाएँ हैं। इस सबसे यह निष्कर्ष आसानी से निकल सकता है कि जातक-कथाओं की आधार गाथाएँ ही हैं।

जातकों का अधिकांश भाग गद्य-पद्य युक्त है जो कि सम्भवतः प्राचीन भारतीयों की पसन्दगी का तरीका है। वे सम्भवतः गद्य को अधिक सजीव बनाने के लिए पद्य मिला देते थे। गद्य भाग या तो पद्य की व्याख्या करता था या घटना का परिचय कराने के लिए प्रयुक्त होता था। यह बात रामायण और महाभारत के दृष्टान्तों से सिद्ध होती है। भाणक पद्यों को आलापते थे और गद्य में उसका विस्तार करते थे। इस प्रकार एक मुख से दूसरे मुख जाने तक में गद्य भाग स्वभावतः बदल जाता था। जबकि पद्य अपने मौलिक रूप में ही रहता। कथा का वक्ता परिवेश के अनुकूल गद्य भाग को परिवर्तित कर देता था। यही बात जातकों में लागू होती है। जातकों की यही प्रकृति ओल्डेनबर्ग को "आख्यानसिद्धान्त" निर्मित करने को प्रोत्साहित करती है।[1] इस सिद्धान्त के अनुसार जातक आख्यान साहित्य के दृष्टान्त हैं जो

विण्टरनित्ज़ आगे फिर तर्क देते हैं कि "मौलिक गाथा-जातक में गाथाओं की संख्या निपातों के अनुसार ही रही होगी, नहीं तो "पकिण्णक निपात" निपातों के विभाग में न मिलाया गया होता।[1] सेनार्ट भी गाथाओं की प्राचीनता सिद्ध करते हैं और वेलर उनके तर्कों को काट नहीं सके हैं। इस प्रकार यह प्राय: सर्वमान्य है कि जातक अपने मूलरूप में गाथात्मक ही थे।

ओल्डेनबर्ग ने मौलिक जातक कथाओं को आख्यायिका के बाद[2] गद्य-पद्य मिश्रित जातक आख्यान कहा है किन्तु वे ऐसे अधिसंख्य विद्वानों का समर्थन नहीं पा पाते जो जातकों का मौलिक रूप गाथात्मक मानते हैं।यथा रिज डेविड्स[3],आर० किमुरा[4],गायगर[5]।फौजबोल कहते हैं कि अतीतवत्थु ही प्राचीनतम भाग है और

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. A History of India.Lit.II P.119,Foot Note -1
For other arguments in favour of the antiquity of the Verse Jataka, vide Winternity-Jataka Gotha And Jataka Commentary', 6-8.
2. Asiatique Journal, 5-9, T XVII,PP 385 PF
3. Buddhist Birth Stories,Intro. P. LXXII,LXXVI
4. Journal of the Department of Letters,Calcutta University,Vol.VII 1281.
5. Pali Literature And Language ,Vol. II, Edition 21, Calcutta University.

जो मौलिक रूप से पद्यमय था। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों के मतों के आलोक में गाथा भाग ही प्राचीनतम सिद्ध होता है। जातकट्ठवण्णना के आन्तरिक साक्ष्य से भी यह सिद्ध होता है। यह तो सिद्ध है कि बिना वैय्याकरण के जातक(गाथाएं) दुर्बोध्य होतीं फिर भी कतिपय जातक गाथाओं के द्वारा भी बोधगम्य हैं और गद्य अनावश्यक व बेकार लगता है। यह कम गाथाओं वाली कथाओं में सत्य हो सकता है। बहुत सम्भव है कि गाथाएं इतना प्रचलित रही हों कि उनसे सम्बन्धित घटना या उपसंहार तुरन्त जान लिया जाता रहा हो। पूर्वानुक्रम से चली आ रही उन कथाओं के लिए लोगों को अट्ठकथा को आवश्यकता नहीं थी लेकिन जब समयान्तराल में वे कथाएँ व उपसंहार विस्मृति के गर्त में विलीन हो गये तब सही-सही अर्थ जानने के लिए गद्यात्मक वर्णन मिलाया गया। अतः जातकों का गाथात्मक भाग हो प्राचीन स्वरूप सिद्ध होता है।[1]

इन जातकों में वर्णनात्मक साहित्य के कितने ही रूप पाये जाते हैं- 1• गद्यात्मक वर्णन जिसमें लोककथाओं तथा देवकथाओं की पद्यात्मक गाथाएँ तथा कथाएँ जहाँ-तहाँ जोड़ दी गई हैं, 2•पद्यात्मक लोककथा अथवा लोकगीत जो कि कहीं-कहीं कथनोपकथन रूप में हैं तथा कहीं गद्य पद्यात्मक संवाद के रूप में हैं, 3•गद्य से प्रारम्भ होकर बीच में पद्य से मिलकर लम्बे-लम्बे वर्णन 4•किसी विषय के ऊपर सूक्तियों का संग्रह तथा 5• व्यवस्थित काव्य अथवा खण्डकाव्य के रूप में।

---

1• Most of the Scholars have accepted the versical composition as the oldest form. This also finds corroboration in the internal evidence of the Jatakathavannana . . . . . Most probably these verses were so current and familiar that one could easily recall the incident or episode connected with those verses. The people therefore did not require prose or Atthakatha portion as the episode were still fress in their mind either through direct perception or through narration of their predecessors . But with the passing of time, when the stories and episodes were lost in the oblivion then and then only the prose narration was added for proper understandin

विषय वस्तु के आधार पर इनमें निम्न प्रकार के विषयों की कथाएँ हैं, 1•लोककथाएँ,नीति अथवा सांसारिक व्यवहारकुशलता,नैतिकता और नैतिक शिक्षा देने वाली शिक्षाप्रद कथाएँ जिनमें से बहुत कम बौद्धमतीय हैं, 2•देवकथाएँ जिनमें पशुरूपधारी देवों की कथाएँ भी शामिल हैं और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से बहुत दूर हैं, 3•छोटे-छोटे कथानक अथवा उपाख्यान, हास्य तथा नर्म कथाएँ जिनमें कि बौद्ध धर्म सम्बन्धी कोई विषय नहीं हैं, 4•उपन्यास और लम्बी-लम्बी प्रेमकहानियाँ जिनमें कि साहसिक वर्णन भी कथा के मध्य में आते हैं, 5• बिना कथाभाग के लम्बे-लम्बे नैतिक वर्णन, 6•सूक्तियाँ तथा 7• धार्मिक्पौराणिक कथाएँ जो आंशिक रूप से बौद्धमतीय हैं। इस प्रकार अट्ठकथा भाग को छोड़कर आधे जातक मूल रूप में बौद्धमतीय नहीं हैं। डॉ0विण्टरनित्ज के अनुसार इसका स्पष्टीकरण यह है कि भिक्खु लोग सब जातियों के तथा सब पेशों वाले होते थे और अपने-अपने साथ लाये हुए कथानकादि को धार्मिक परम्पराओं से जोड़ देते थे। इसी कारण ये जातक भारतीय साहित्य के लिए और अधिक महत्त्व के हैं। इन जातकों के परिमाणों में भी बहुत अन्तर है। कुछ तो आधे-आधे पृष्ठ के हैं तथा कुछ लम्बे हैं, छोटे-मोटे स्वतन्त्र उपन्यास बन सकते हैं।

जातकों का समय

जातकों को हम सामान्यत: बुद्धकालीन भारतीय समाज और संस्कृति का प्रतीक मान सकते हैं। भरहुत और साँची की पाषाण वेष्टनियों पर अंकित चित्र गद्य भाग से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार गाथाओं की प्राचीनता तो निर्विवाद है ही साथ ही अधिकांश गद्य भाग जो प्राचीन है, द्वितीय-तृतीय शताब्दी ई0पूर्व में इतना तो लोकप्रिय होना ही चाहिए कि उसको शिल्पकला का आधार बनाया जा सके। बौद्ध साहित्य के नवांग विभाजन के अन्तर्गत जातक का सातवाँ स्थान है, अत: जैसा कि रिज डेविड्स का विचार है, वैशाली की संगीति (350 सी0बी0सी0) में उत्पन्न हुए घोर धार्मिक मतभेद के पहले भी जातकों का प्रचलन था। अत: निष्कर्षत: जातक संग्रह का अस्तित्व बहुत पहले था[1]।

---

1. (i) It is common, therefore, to be of the two sections of the Buddhist church; and it follows that it was probably in use before the great ascism took place between them, possibly before the council of Vesali itself. In any case it is conclusive as to the existence of a collection of Jatakas at a very early date.

Buddhist Birth Stories, Intro.P.LVII.

(ii) And archaic form and forced constructions in the verses (in striking contrast with the regularity and simplicity of the prose parts of the book), and the corrupt state in which some of the verses are found, seem to the point to the conclusion, that the verses are older( Same Intro. PL XXI.

(iii) Again the place of occassion, style, diction and specially archaic grammatical forms of the Jataka Verses also lead us to the conclusion that the verse form of the Jatakas was the earliest one.

A Study on the Jatakas And the Avadanas P.43)

(iv) See'Jatakas Stories of Buddhist Former births, Preface P. VIII, by E.B.Cawell.

(v) See-' A History of Pali Literature ,Page 275 (B.C.Law ).

डॉ0 मललसेकर भी दीपवंश[1] का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "सिंहली ऐतिहासिक परम्परा इस बात को साक्षी है कि वैशाली की संगीति के समय में जातक नाम का संकलन विद्यमान था और तिपिटक का एक भाग था जिसका कि वैशाली के भिक्षुओं ने बहिष्कार किया था अथवा अपने अभीष्ट रूप में जिसको परिवर्तित कर लिया था।"

डॉ0 विण्टरनित्ज कतिपय वरिष्ठ विद्वानों के इस विचार को कि जातक वर्णनात्मक साहित्य और बुद्धकालीन सभ्यता को प्रकट करते हैं–उनका संकीर्ण दृष्टिकोण मानते हैं। वह कहते हैं कि कुछ गाथाएँ और कतिपय गद्य शायद इतने प्राचीनता की ओर जाते हैं। हाँ कुछ कहावतें और उपाख्यान जरूर प्राग्बौद्धकालिक सन्न्यासात्मक कविता से सम्बद्ध हैं। लेकिन अधिकांश गाथाएँ शायद तृतीय श0ई0 पूर्व से ज्यादा प्राचीन नहीं हैं। पद्य तो निश्चय ही ई0सन् से सम्बद्ध हैं। साथ ही वह यह भी कहते हैं कि गाथाएँ किसी एक लेखक की कृति नहीं बल्कि संग्रहकर्त्ताओं की उपज हैं।[2] वह फ्रैंके के इस मत को असम्भव बताते हैं कि गाथाएँ एक ही व्यक्ति

---

1• दीपवंश, अध्याय 10

2• Some of the poems and a few prose narratives may perhaps reach back to such great antiquity. Some of the sayings and legends may indeed belong to pre-Buddhistic ascetic poetry. For the great mass of the verses, however, no greater antiquity than the 3rd C.B.C. can conscientiously be urged, certainly not proved and much of the prose assuredly belong to the Christian era . . . Now the last named is not the work of single individual author but is product of the labours of compilers.

( A History of Indian Literature Vol. II P.120).

जिसमें से कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अन्य अट्ठकथाओं में उधृत कथाएँ ली हैं। यद्यपि जातकट्ठवण्णना और अन्य अट्ठकथाओं में वर्णित कथाओं का विषय मूल रूप में एक ही है फिर भी वर्णन,प्रकार तथा प्रारम्भिक शब्दावली दोनों की भिन्न हैं और यह भिन्नता अवश्य ही एक और प्राचीन जातकट्ठकथा को निर्देश करती है।[1]

भरहुत और साँची के चित्रों से अनुमान होता है कि कथाभाग भी पालि भाषा के जातकग्रन्थ में शामिल था। सम्भव है उसी पालि जातक के ऊपर उपर्युक्त दोनों सिंहली जातकट्ठकथा आधारित हों। जातक की गाथाए निस्सन्देह उसके गद्य भाग से अति प्राचीन हैं। ऐसा इनकी भाषा और शैली से मालुम होता है। गाथाओं की भाषा तथा उनका रूप बहुत ही प्राचीन है, जबकि गद्य भाग सादा और क्रमबद्ध है। फिर भी जातक की बहुत सी कथाएँ तथा गाथाएँ भी बुद्ध भगवान् से भी प्राचीनतर हैं। प्रो० रायस डेविड्स का विचार है[2] कि जातक की कथाओं की बहुत बड़ी संख्या जातकग्रन्थ से भी अतिप्राचीनतर है और उन प्रचलित कथाओं के साथ गाथाएँ बाद में जोड़ी गयी हैं तथा जातक ग्रन्थ के दशमांश की कथाएँ बिना गाथाओं की थीं जिनके अन्त में गाथाएँ बाद में जोड़ी गयी थीं और ये गाथाएँ प्राचीनतम हैं जो कि परम्परा से सिंहली जातकट्ठकथा में आयीं और जैसी आयी थीं वैसी ही पालि भाषा में भी रहीं। फिर भी यह सम्भव है कि जातकग्रन्थ का मूलरूप "चरियापिटक" के समान केवल

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

गाथामय था। किन्तु बिना कथाओं के बहुत सी गाथाएँ विबल्कुल समझी ही नहीं जा सकती थीं, इसलिए उनके साथ लोककथाएँ, जो कि पहले से ही विद्यमान थीं जोड़ दी गईं।[1] गाथाओं के बारे में डॉ० विण्टरनित्ज़ का मत है कि सारी गाथाएँ बुद्धवचन (भाषा की प्राचीनता के कारण) नहीं हैं, कुछ गाथाएँ बुद्ध भगवान् से भी पहले ऋग्वेदयुग की भी हैं तथा कुछ रामायण और महाभारत के युग की भी हो सकती हैं।[2] फिर भी जातक संग्रह उनकी राय में दूसरी तीसरी शताब्दी ई०पूर्व से पूर्व का नहीं है। उनकी राय में जातकों की अतीतवत्थु ही अधिक ऐतिहासिक महत्त्व की है पच्चुप्पन्नवत्थु उतनी नहीं क्योंकि पच्चुप्पन्नवत्थु में कभी तो अतीतवत्थु ही दुहरायी गयी है, कभी उसका विषय विनयपिटक,सुत्तपिटक,अपदान आदि अन्य ग्रन्थों से लिया गया है।

गाथाओं का कथा के रूप में विकाश दीघनिकाय के "महागोविन्द" और "महासुदस्सनसुत्त" में देखा जा सकता है। ~~"मखदेवसुत्त" में "समोधनसुत्त" में देखा जा कता है।~~ "मखदेवसुत्त" में समोधान भाग तो है किन्तु वेय्याकरण, गाथा भाग नहीं हैं। जातक कथाओं के विकाश में योगदान देने वाली दूसरी वस्तु है पारमिता सिद्धान्त। बुद्धवंश औा "चरिया पिटक" में बुद्ध के जातककहानियों में वर्णित उदार चरितों को गाथाओं में प्रकट किया गया है। सम्भव है कि जातकट्ठकथा की

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Fausboll has illustrated with a good number of examples for the oldness of the verses with the versical Jataka text, as their language bears many peculiarities, especially old forms which don't occur in the Prosaic Pali and some of which are found in the Vedas due to metres or some other causes.

Jatakathakatta VII, Postcriptium IV-VIII

2. "आचार्य बुद्धघोष व उनकी अट्ठकथाएँ, पृ०259

जातककथाएँ मौलिक जातकगाथाओं के विकसित रूप हैं। पच्चुप्पन्नवत्थु और समोधान भाग बाद में जोड़ा गया[1], और सम्भवत: जातकों में प्रचलित पारमिता परम्परा के बहुत बाद नहीं। जब पच्चुप्पन्नवत्थु और अतीतवत्थु बोधिसत्त्व के जीवन से जोड़ दी गईं तो स्वभावत: समोधान भाग विकसित हो गया[2]। वैय्याकरण भाग समोधान के बाद में विकसित हुआ। विण्टरनित्ज़ कहते हैं कि "अतीतवत्थु और पच्चुप्पन्नवत्थु के अन्तर में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं हैं। उनके अनुसार दोनों एक ही लेखक की कृति हैं। वह फौजबोल के इस कथन को कि अतीतवत्थु पच्चुप्पन्नवत्थु से पुरानी है-,नहीं मानते। उनके अनुसार दोनों एक ही समय की कृति हैं। पच्चुप्पन्नवत्थु में कोशल व मगध का वर्णन तथा अतीतवत्थु में बनारस का सम्बन्ध होना मात्र एक रूढ़िवादी दृढ़ परम्परा हो सकती है।[3]

---

1. Gokuldas De-'Significance And Importance of Jatakas'? 89.

2. It is improbable that the Jataka stories in the form of the Jataka commentary book were written as a developed form of the original Jataka verses. The पच्चुप्पन्नवत्थु and समोधान portions were added at a later period and they were added to the Jataka story not much later than when the Bodhisatta Paramita theory was introduced in the Jataka. When the पच्चुप्पन्नवत्थु and अतीतवत्थु were narrated and connected with the life the Bodhisatta when automatically the Samodhana or portion of identification was developed.
A Study on The Jatakas And Avadanas ,P 44.

3. There is no chronological significance in the distinction between "Stories of the Past' and 'Stories of the Present', for both are the work of one and the same Commentator.
(Indian Liter.II,P.116)

In his edition Fausball differenciates that the Pacchuppannavatthu from the Atitvatthu by printing the former in smaller type. But this distinction cannot by any means be maintained throughout.It is often clear that both were written or compiled at the same time. It is possible that the word forword explanation of the Gathas was the work of a still later commentator.It is perfect natural that stories of the present tell Chiefle, of Kashala and sometimes of Maga( i.e. these districts were Buddha-taught , on the other hand when the scene of the most of Atitavatheu is laid in Banaras.

एकबात और ध्यान देने योग्य है कि विशेष रूप से लघुतर कथाओं को अट्टकथाकार ने श्रेष्ठ ढंग से प्रस्तुत किया है और अन्य कथाओं में, विशेष रूप से जिनमें गद्य की अपेक्षा नहीं थी गद्य भाग कनिष्ठ श्रेणी का और नीरस है तथा गाथाओं से समरसता नहीं है। विण्टरनिट्ज का विचार है कि "ऐसे में यह सोचना सम्भव नहीं है कि वही अट्टकथाकार एक ओर प्रतिभापूर्ण और सरस ढंग से प्रस्तुति करता है, दूसरी ओर भावहीन व नीरस ढंग से। बल्कि हमें यह समझना चाहिए कि जब वह अच्छे ढंग से प्रस्तुति करता है तो वह पुराने आदर्शों व परम्पराओं का प्रयोग करता है।[1]

अधिकांश विद्वान् इसी मत के समर्थक हैं कि जातककथा का गाथा भाग प्राचीन है और अट्ठकथा भाग अर्वाचीन है और सम्भवत: लगभग 5 वीं शई0में बुद्धघोष नामक किसी लेखक की कृति है। दोनों मिलकर "जातकट्ठवण्णना" या "जातकट्ठकथा" कहलाते हैं और तभी जातककथाओं का निर्माण भी होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

It is merely the result of the stereo typed convention. There is no justification for Fausboll's Statement that the Atitavatthu are necessarily earlier on this account.

(Ind.Literature, Vol.II, P.116, Foot Note ).

1. Very frequently , however, this commentator made use of good and old models. It is for this reason that especially in the prose of the shorter tables and fairly tales, we find very many stories excellently told whilst in other Jatakas in those don't require prose, the prose narration is extremely inferior and dull and frequently not at all in harmony with the Gathas. It is not feasible to think that same commentator, on one occasion told his skillfully, humourously on other occasion in dull and spiritless manner, but we must assume that whe n he told them well, he used good old models or traditions. Therefore in the prose too, much that is old many have been preserved.

( A Hist. of Ind.Lit.II, P.119)

## जातकों की संख्या

प्रो॰ कॉवेल के सम्पादककत्व में कई विद्वानों के द्वारा अनुवाद किया जाकर"जातकट्ठवण्णना" का जो संस्करण फौजबोल संस्करण के नाम से प्रकाशित हुआ है, कई प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं के ऊपर आधारित है:-

"यं पन जातकट्ठकथायं·········तं सेसट्ठकथासुपीत्थ, तस्मा इदमेव गहेतत्वम्"।[1]

किन्तु मूल रूप में यह महाविहार परम्परा वाली अट्ठकथा संग्रह का अनुसरण करती है।[2] इसमें इसके लेखक का इस आशय का निर्देश भी है कि इससे पहले महाविहार में जातकट्ठकथा विद्यमान थी (जातकस्स अत्थवण्णनं महाविहारवासीनं वाचनामग्गनिस्सितं भासिस्सं)[3]। विचारणीय है कि महाविहार की जातकट्ठकथा संग्रह के अतिरिक्त ये ऊपर "सेसट्ठकथासुच" में निर्दिष्ट शेष जातक अट्ठकथाएँ कौन सी थीं? डॉ॰बी॰सी॰ला के अनुसार[4] इसमें एक स्यामी संस्करण है। इसकी भूमिका की गाथा से ज्ञात होता है कि यह भी प्राचीन सिंहली "पोराणट्ठकथा" की ही व्याख्या शैली के ऊपर बड़ी सावधानी से लिखी गई थी (पुराण सिंहलभासाय पुराणट्ठकथाय च थापितं तं न साधेति साधूनं इच्छितिच्छितम्, तस्मा तं उपनिस्साय पुराणट्ठकथानयं विवज्जेत्वा विरुद्धत्थं विसेसत्थं पकासयं विसेस वण्णनम् सेत्थं करिस्सामट्ठकथा वण्णनंति स्यामी संस्करण)। स्यामी संस्करण और "जातकट्ठकथावण्णना" में मुख्यत: तीन प्रकार

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1· जातकट्ठकथा (फौसबोल संस्करण) भाग, 1, पृ०62

2· डॉ॰आदिकरम-अरली हिस्ट्री आफ बुधिज्म इन सिलॉन

3· जातकट्ठकथा (फॉसबोल संस्करण) भाग-1, पृ०1

4· Dr. B. C. Law - 'Buddhaghosha' P. 64-65

का अन्तर है- 1•पणामगाथा दोनों में भिन्न-भिन्न है, 2•जातकों के नामों अथवा शीर्षकों में भी जहाँ तहाँ भिन्नता है, 3• पिछली दश महाजातकों के क्रम और नामों में भी भिन्नता है। दोनों संस्करणों में जातकों की संख्या पाँच सौ सैंतालीस ही है। यह संख्या आचार्य बुद्धघोष की "सुमंगलविलासिनी" आदि अट्ठकथाओं में निर्दिष्ट संख्या पाँच सौ पच्चास से तीन कम है।

फाँसवोल संस्करण की पणाम गाथा में कहा गया है कि यह "जातकट्ठ-कथावण्णना" तीन थेरों की व्यक्तिगत प्रार्थना पर लिखी गयी है जबकि स्यामी संस्करण की पणामगाथा में कहा गया है कि यह ग्रन्थ कितने ही बुद्धिमान् और विद्वान् थेरों की प्रार्थना पर लिखा गया था। स्यामी संस्करण के इन्हीं जातकों के उदाहृत चित्र पगन आनन्द पगोड़ा पर चमकीले धातु-पत्रों पर अंकित हैं। श्री डूरोइसेल्लो का कहना है कि "इनके और फाँसबोल के जातकों के नामों और शीर्षकों में विशेष अन्तर नहीं है"।[1] महाविहार की उपर्युक्त "पोराणट्ठकथा" तथा स्यामी संस्करण के अतिरिक्त एक तोसरे सस्करण की सूचना और मिली है जिसमें कि पर-म्परागत पाँच सौ पच्चास जातकों की संख्या का उल्लेख है। बरमा के शिलालेखों ﴾एपीग्राफिया बर्मानिका﴿ की भूमिका में श्री डूरोइसेल्ली सूचित करते हैं कि पेटलेइक पगोडा, पगन की मिट्टियों की तख्तियों में पाँच सौ पच्चास जातकों के उदाहृत चित्र दिये गये हैं। यह संख्या किस प्रकार पूरी हुई इसका पता नहीं चला। किन्तु डाँ बी०सी०ला० का अनुमान है कि चरियापिटक के "महागोविन्द" और "सच्च-सव्हायपण्डित" की कथाओं को तथा "महावस्तु" के "वृषभ जातक" को जो कि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1• दोनों संस्करणों के नामों की सूची के लिए द्रष्टव्य डाँ०बी०सी०ला० की पुस्तक "बुद्घोष" पृ० 65

भरहुत के परिकोटे पर उदाहृत हैं, पाँच सौ सैतालीस में मिलाने से पाँच सौ पच्चास संख्या बन जाती है। अथवा "चरियापिटक" को ही उपर्युक्त दोनों कथाओं के साथ "महालोमहंस" कथा को मिलाकर यह संख्या पूरी की जा सकती है।"चरियापिटक की कथाओं को ही लेना समुचित प्रतीत होता है क्योंकि चरियापिटक के पालि चरिय अनुमानतः जातकों के ऊपर ही आधारित हैं"।[1]

इस प्रकार जातकों की 550 या 547-48 संख्या ऊपरी ही समझनी चाहिए। उनकी संख्या में काफी कमी और वृद्धि की भी सम्भावना है क्योंकि कई कहानियाँ एक दूसरे में समाविष्ट कर दी गयी हैं या अल्प रूपान्तर के साथ दो जगह पायी जाती हैं। इसी प्रकार कई जातक कथाएँ सुत्तपिटक, विनयपिटक तथा अन्य पालि ग्रन्थों मे तो पायी जाती हैं किन्तु जातक के वर्तमान संग्रह में नहीं हैं। दृष्टान्त के लिए मुनिजातक §30§ और सालूक जातक §286§ की कथावस्तु एक सी है किन्तु भिन्न नामों से दो जगह पायी जाती हैं। इसके विपरीत "मुनिकजातक" नाम के दो जातक होते हुए भी उनकी कथा भिन्न-भिन्न है। कहीं-कहीं दो स्वतंत्र जातकों को मिलाकर तीसरे जातक का निर्माण कर लिया गया है। यथा "पञ्चपण्डित" जातक §508§ और "दकरक्खस जातक"§517§ ये दोनों जातक "महाउम्मग्ग" जातक में अन्तर्भावित हैं। एवमेव मज्झिमनिकाय का "घटिकार सुत्तन्त"§2/4/1§ तथा दीघनिकाय का "महागोविन्द सुत्तन्त" §2।6§ जो स्वयं जातक की निदानकथा में "महागोविन्द" जातक नाम से निर्दिष्ट है- जातक के अन्तर्गत नहीं पाये जाते।

---

1. डॉ० बी०सी०ला- "बुद्धघोष" पृ०65-66

इसी प्रकार "धम्मपदट्ठकथा" और "मिलिन्दपञ्ह" में भी कुछ ऐसी जातककथाएँ उद्धृत की गयी हैं जो जातक में संगृहीत नहीं हैं।[1] इस प्रकार जातकों की कुल संख्या का निश्चय नहीं हो सकता है।

जातकों की संख्या के विषय में विचार करते समय जातक से हमारा तात्पर्य एक विशेष शीर्षक वाली कहानी से होता है जिसमें बोधिसत्त्व के किसी जीवन सम्बन्धी घटना का वर्णन हो फिर चाहे उसमें कितनी ही अवान्तर कथाएँ क्यों न गूँथ दी गई हों। यदि कुलकहानियाँ गिनी जायँ तो जातक में लगभग तीन हजार कहानियाँ पायी जाती हैं।[2] वास्तव में जातकों का संकलन सुत्त और विनय

---

1. मज्झिमनिकाय सुत्त 81 is a Jataka which does not occur in the Jataka book. In the मिलिन्दपञ्ह two or three Jatakas are mentioned which can not be traced in the collection in the commentary, too, as well as in the Buddhist Sanskrit texts, there are some Jatakas which are absent in the collection.

Indian Literature II, P. 115, Foot Note 4.

2. Although, therefore the birth stories are spoken of as " The five hundred and fifty Jatakas, " this merely a round number reached by entirely artificial arrangement, and gives no clue to the actual number of stories. It is probable that our present collection contains altogether (including the introductory stories where they are not mere repetitions between two and three thousand independent tales, fables, anecdotes and riddles.

Nor is the number 550 any more exact (though the discrepancy in this case is not so great) if it be supposed to record, not the number of stories, but the number of distinct births of the Bodhisat.

(Buddhist Birth Stories, Introd. P.LXXIV. )

पिटक के आधार पर किया गया है। सुत्तपिटक में ऐसी अनेक कथाएँ हैं जिनका उपयोग उपदेशार्थ किया गया है किन्तु बोधिसत्त्व का उल्लेख उनमें नहीं है। बाद में प्रत्येक कथा में बोधिसत्त्व को जोड़कर जातक रूप दे दिया गया। उदाहरणार्थ "तित्तिर" जातक ﴾34﴿ और दीर्घकोशल जातक ﴾371﴿ का निर्माण इसी प्रकार विनय पिटक के क्रमश: "चुल्लवग्ग" और महावग्ग से किया गया है। "भणिकण्ठजातक" ﴾255﴿ भी विनय पिटक पर आधारित है। एसमेव दीघनिकाय के "कूटदन्तसुत्त" ﴾1/5﴿ और "महासुदस्सनसुत्तन्त" ﴾2/4﴿ तथा मज्झिमनिकाय के "मखदेवसुत्तन्त" ﴾2/4/3﴿ भी पूरे अर्थों में जातक हैं। विण्टरनित्ज़ के अनुसार कम से कम तेरह जातकों की खोज विद्वानों ने सुत्तपिटक और विनयपिटक में की है।[1]

चुल्लनिद्देश में ﴾भगवा पन्चजातकसतानि भासन्त, अत्तनो च परेसं च अतीतम् आदिसति﴿ पाँच सौ जातकों की संख्या का उल्लेख है जिसकी पुष्टि फाह्यान के इस कथन से भी होती है कि उसने श्रीलंका में भगवान् बुद्ध के "दन्तावशेष महोत्सव" की यात्रा के समय मार्ग के दोनों ओर पाँच सौ जातकों के दृश्यों के चित्र देखे थे। श्रीलंका की अभयगिरिविहार परम्परा "चुल्लनिद्देश" के द्वारा निर्दिष्ट इन्हीं पाँच सौ जातकों को मानती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जातकों की संख्या आगे चलकर महाविहार परम्परा में पाँच सौ पच्चास रही।

---

1. E.W.Burlingame,Journal of American Oriental Society,Vol.38,Part 4,gives a list of ten Jatakas which are taken from the Canon.Rhys Davids,Journal of Royal Asiatique Society,1919,P.231,adds another three to the list. See also Burlingame ,Buddhist Parables'P.59 FF.

(Indian Lit.Vol.II,P. 115 Foot Note 2).

डॉ0 बरूआ ने चुल्लनिद्देश के उदाहरण देकर तथा फाह्यान की श्रीलंका की यात्रा के समय जातक के चित्रों के प्रदर्शन का उल्लेख करके मूल संख्या पाँच सौ ही सिद्ध की है किन्तु साथ में विभिन्न उपायों से यह भी बताया है कि यह संख्या पाँच सौ से पाँच सौ पच्चास कैसे हो गई।[1]

जातकों की साहित्यिक और ऐतिहासिक भूमिका पर विचार करने पर सबसे पहले सुत्तन्त जातकों में जातकों का उल्लेख मिलता है जो कि सबसे प्राचीन अभिलेख है तथा अन्य पूर्ववर्ती कल्पित लौकिक दृष्टान्तकथाओं,पौराणिक कथाओं त प्रचलित लोक कथाओं से बिल्कुल भिन्न हैं। चुल्लनिद्देश में उनमें से चार के उदाहरण दिये हैं किन्तु प्रो0 रायस डेविड्स ने उनकी संख्या बढ़ाकर सात के नामोल्लेख दिये हैं-1•महापदानकथा[1],2•महासुदस्सन[2],3•महागोविन्द[3],4•मखदेव[4],5•महाविजय का पुरोहित[5], 6• घतिकार[6],तथा पचेतन का चक्रनिमति।[7]

---

1• डॉ0 बी0सी0ला-"बुद्धघोष" पृ065-67

1• दीघनिकाय भाग 2

2• दीघनिकाय ,भाग-2

3• दीघनिकाय,भाग-2

4• मज्झिमनिकाय,भाग-2

5• दीघनिकाय,भाग-1

6• मज्झिमनिकाय भाग-2

7• अंगुत्तरनिकाय भाग-1

उपर्युक्त वर्णन से सुस्पष्ट है कि सबसे पहले, यदि और पहले नहीं तो कम से कम, तीसरी श0ई0पू0 के लगभग, "चुल्लनिद्देश" के संकलनकर्त्ता को जातकों की यह पाँच सौ संख्या ज्ञात थी। यह वही संकलन है जो अभयगिरिविहार को यदि बाद में नहीं तो, कम से कम फाह्यान की श्रीलंका की यात्रा के समय मान्य था। आधुनिक जातकट्ठवण्णना का गाथा भाग जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर होने वाले कुछ परिवर्तनों, परिवर्धनों और संशोधनों को छोड़कर वास्तव में वही है जो मूलग्रन्थ में मिलता है। महाविहार परम्परा में जातकों की संख्या पाँच सौ सैंतालीस है अथवा पाँच सौ पच्चास इसके बारे में विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला है कि पाँच सौ पच्चास संख्या पाँच सौ सैंतालीस से ही निकलती है, जो कि कहने की सरलता के लिए बढ़ाकर पाँच सौ पच्चास कह दी गई है। पाँच सौ सैंतालीस को पाँच सौ पच्चास कह देने में परिणाम में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। पाँच सौ पच्चास संख्या कहने में लगभग अर्थ निहित है।

यह भी मान लेने पर कि जातकों की पाँच सौ सैंतालीस या पाँच सौ पच्चास की संख्या पाँच सौ के अन्दर गर्भित हो जाती है और चुल्लनिद्देश तथा अभयगिरिविहार की परम्परा के अनुसार पाँच सौ की यथार्थ जातक संख्या बन जाती है तो भी पाँच सौ पचास की संख्या को अप्रामाणिक ठहराकर टाल नहीं सकते क्योंकि समस्या यह हो जाती है कि ये पच्चास अधिक जातक कहाँ से आवें ? इसके लिए डॉ0 बी0सी0ला मुख्यतया दो साधनों का निर्देश करते हैं।[1]

---

1. "बुद्धघोष" पृ0 66-67

इन दोनों में एक के द्वारा पच्चास जातक लिये जा सकते हैं ।•ये पच्चास जातक "पण्णासजातक" के नाम से स्याम देश में अलग एक संग्रह में उपलब्ध हैं अथवा 2• ये पचास जातक पाली निकायों में गर्भित हैं या "चरियापिटक" से सम्बन्धित हैं अथवा महावत्थु या अन्य ग्रन्थों में समाविष्ट हैं किन्तु पाँच सौ सैंतालीस की संख्या में सम्मिलित नहीं है। उदाहरणार्थ निकायों में आये हुए "महाविजय का पुरोहित", "महागोविन्द" "घातिकार" तथा "पचेतन का चक्रनिर्माता" इसी तरह चरियापिटक में आये हुए "सच्चसव्हायपण्डित", महालोमहंस तथा "महागोविन्द इसी तरह "महावस्तु" में आये हुए "रक्षित", "हस्तिनाग", ऋषभ, गोधा, हारप्रदान, व्याघ्रीभूता, यशोधरा इत्यादि जातक पाँच सौ सैंतालीस वाले संग्रह में नहीं हैं।

आचार्य बुद्धघोष जातकों की पाँच सौ पच्चास संख्या से अवगत थे-"अपण्णकजातकादीनि पञ्ञासाधिकानि पञ्चजातकसतानि जातकानीति वेदितव्वम्"।[1] उनका पाँच सौ पच्चास जातकों की संख्या का विवरण स्पष्टतया महाविहार की परम्परागत सिंहली जातकट्ठकथा के ऊपर आधारित है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि वास्तविक जातककथाओं की संख्या का निर्धारण नहीं किया जा सकता ।

## जातकट्ठकथा

त्रिपिटकके अन्तर्गत केवल गाथा भाग को ही जातक माना जाता है किन्तु उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि पच्चुप्पन्नवत्थु, अतीतवत्थु, वेय्याकरण और समोधान के बिना कुछ भी बोधगम्य नहीं हो सकता। अत: जातककथा के पाँच अवयवों का होना आवश्यक है, जिसमें गाथा को छोड़कर शेष सब उसकी व्याख्या

---

1• सुमंगलविलासिनी, भाग-2

वास्तव में, जैसा कि डॉ0 भरत सिंह उपाध्याय ने कहा है[1], कि 547 जातक कथाओं के संग्रह को जो उपर्युक्त पाँच अंगों से संयुक्त है, हमें जातक न कहकर "जातकट्ठवण्णना" कहना चाहिए। फॉसबोल ने रोमन लिपि में और कॉवेल ने अंग्रेजी में जिसका हिन्दी अनुवाद किया है वह वास्तव में जातक न होकर जातक की व्याख्या है।

महावंश के अनुसार[2] कहा जा सकता है कि आचार्य बुद्धघोष ने अभिधम्म-पिटक के प्रथम ग्रन्थ "धम्मसंगणि" पर "अट्ठसालिनी"टीका लिख चुकने के बाद भारत से सिंहल गये। सिंहल जाने का उद्देश्य था सिंहल भाषा में सुरक्षित अट्ठकथाओं का पालि में रूपान्तरण करना। ये अट्ठकथाएँ अशोकपुत्र महेन्द्र के द्वारा सिंहल पहुँची। इन्हीं का बुद्धघोष ने महास्थविर संघपाल को अधीनता में महाविहार अनुराधपुर में रहकर अध्ययन किया। जब वह "विसुद्धिमग्ग"नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखकर उन अट्ठकथाओं को पालि रूप देने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुके तभी सिंहल के भिक्षुसंघ ने उन्हें पालि में अनुवाद करने की आज्ञा दी। महावंश का कहना है कि उसने सारी अट्ठकथाओं का पाली भाषा में अनुवाद किया। पता नहीं इन सारी अट्ठकथाओं में कौन-कौन शामिल हैं। आज हमें जो अट्ठकथाएँ प्राप्त हैं वे स्पष्टरूपेण सभी बुद्धघोष रचित नहीं हैं। खुद्दकनिकाय के कई ग्रन्थों थेरगाथा, थेरी, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, चरियापिटक पर बुद्धघोष के अवान्तरकालिक धम्मपाल ने अट्ठकथाएँ लिखीं। विनयपिटक के ग्रन्थों तथा सुत्तपिटक के अन्तर्गत चारों निकायों पर अट्ठकथाएँ लिखने से भी बुद्धघोष "सारी अट्ठकथाओं" के रचयिता व

---

1. "पालि साहित्य का इतिहास" पृ0278

2. महावंश, परिच्छेद 38/215-246 गाथाएँ

अनुवादक माने जा सकते है। परम्परा तो उन्हें जातकट्ठकथा का भी अनुवादक मानतो है लेकिन आनन्द कौशल्यायन यह श्रेय किसी दूसरे आचार्य को देते हैं।[1] गन्धवंश के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ने ही जातकट्ठवण्णना की रचना की।[2]

अवधेय है कि सिंहली, बर्मी तथा स्यामी लिपियों में जातक ग्रन्थ का "जातकट्ठकथा" नाम से प्रकाशन हुआ।[3] पर रोमन लिपि में प्रकाशित फॉसबोल संस्करण तथा भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित नागरी संस्करण में इसका नाम जातकट्ठवण्णना पाया जाता है। यद्यपि अट्ठकथा और अट्ठवण्णना दोनों एक ही अर्थ के परिचायक हैं तथापि दो पुस्तक होने की सम्भावना हो उठती है। इसके लेखक ने निदानकथा के प्रारम्भ में महाविहारवासियों के वचनानुक्रम के अनुसार जातकों की अर्थवर्णना करने की प्रस्तावना की है[4] साथ ही "जातकट्ठकथा" नामक एक अन्य ग्रन्थ होने की चर्चा की है।[5] सम्भवत: सन्देह की इस पृष्ठभूमि में विण्टरनित्ज महोदय "जातकट्ठकथा" तथा "जातकट्ठवण्णना" नामक दो पुस्तकों के होने में सहमत प्रतीत होते हैं।[6] उनका कथन है कि जातकट्ठकथा

---

1. जातकट्ठवण्णना, (हिन्दी अनुवाद) 1 खण्ड, पृ022
2. पृ059, (जर्नल आफ पाली टेक्ट सोसायिटी) 1886 में प्रकाशित संस्करण
3. Simon Heva Vitarani Bequest Series Chhatthasangayana Series edition Mahamukut Raja Vidyalaya Series
4. ..................... जातकस्सत्थवण्णनं ।
   महाविहारवासीनं वाचनामग्गनिस्सितं ।।
   भासिस्सं भासतो तम्मे साधु गण्हन्तु साधवो । पृ02
5. यं पन जातकत्थायं तदा सत्ताहजातो राहुलकुमारो होतीति वुत्तं।पृ01
6. इण्डियन लिटरेचर, वोल्0।। पृ0116-117

मूलत: पालि में थी जो मौखिक परम्परा से तिपिटक के साथ ही लंका पहुँचायी गई तथा वहीं लिपिबद्ध हुई पुन: जब लंका में पालि भाषा में अट्ठकथा लिखने की परिपाटी चली तो इसे पालि भाषा में अनूदित कर लिया गया तथा इसका नाम रखा गया "जातकट्ठवण्णना" । रोजडेविड्स ने जातककथा को प्राचीन सिंहली "एलु" में विद्यमान अट्ठकथा माना है तथा जातकट्ठवण्णना को उसी पर आधारित रचना बतलाया है।[1] डॉ० बी०सी० ला उक्त मान्यताओं के सामञ्जस्यरूप इन्हें दो ग्रन्थ दर्शाते हुए इनमें वस्तुसाम्य बतलाया है। गायगर महोदय ने भी जातकट्ठवण्णना को चर्चा करते हुए इसे मौखिक परम्परा में विद्यमान अट्ठकथा को सामग्री पर आश्रि एक पृथक् रचना स्वीकार किया है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1•(क) अट्ठसालिनी के प्रारंभ में-

"पदानुक्कमतो एव करिस्सामत्थवण्णनम्"

पुन: अन्त में-

"आरद्धा या मया अत्थवण्णना ।

अनाकुलानमत्थानं संभवा अट्ठसालिनी ।

इति नामेन सा एसा सन्निट्ठानमुपागता।"

पुन: अन्यत्र

"अयं सट्ठसालिनी नाम धम्मसंगह अट्ठकथा"।

(ख) सम्मोहनविनोदिनी के प्रारम्भ में-

तस्स विभंगप्पकरणस्स अत्थवण्णनं करिस्सामि।

पुन: अन्त में-

"सम्मोहनविनोदिनी नाम यं अट्ठकथं रचयितुं आरभि अयं निट्ठ पत्ता"।

(ग) यमक अट्ठकथा के प्रारम्भ में-

"अयं अस्स संवण्णना होति"।

अब वास्तविकता यह है कि न तो मौखिक परम्परा से लंका पहुँचायी गयी अट्ठकथा प्राप्त है और न प्राचीन सिंहल भाषा में लिखी ही। जो हमें उपलब्ध है वह पालि भाषा में लिखित जातकों की विवरणात्मक व्याख्या है। इसके दोनों नाम जातकट्ठकथा और "जातकट्ठवण्णना" विद्वानों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। व्यञ्जननानात्व होते हुए भी दोनों में अर्थसाम्य है। फलत: इसे उक्त दोनों ~~में अर्थ~~ नामों में से किसी एक से अभिहित करना उपयुक्त होगा। यस्मात् अधिकांश संस्करणों में "जतकट्ठकथा" का ही प्रयोग मिलता है अत: उन बहुसंख्यक आचार्यों की संगति समयानुकूल समझ इस ग्रन्थ का नाम "जातकट्ठकथा" ही उचित प्रतीत होता है।

## जातकट्ठकथा के लेखक

जातकट्ठकथा के रचयिता ग्रन्थ के आरम्भ में कहते है कि "बुद्ध धर्म की चिरस्थिति चाहने वाले अर्थदर्शी स्थविर, सहवासी तथा एकान्तसेवी, शान्तचित्त पण्डित बुद्धमित्त और महिंशासकवंश में उत्पन्न शास्त्रज्ञ शुद्धबुद्धि भिक्षु बुद्धदेव के कहने पर महापुरुषों के चरित्र के अनन्त प्रभाव को प्रकट करने वाली जातक अर्थवर्णना महाविहारवासियों के मत के अनुसार व्याख्या करूँगा।[1] महिंशासक सम्प्रदाय महाविहार परम्परा से भिन्न एक बौद्ध सम्प्रदाय था। बुद्धघोष ने जितनी अट्ठकथाएँ लिखी हैं-शुद्धमहाविहारवासी भिक्षुओं की उपदेश विधि पर आधारित हैं।[2] इसी तर्क के आधार पर डॉ० भरतसिंह उपाध्याय, आनन्द कौशल्यायन आदि जातकट्ठकथा के लेखक को बुद्धघोष से मिलाना उचित नहीं मानते।

---

1• जातकट्ठकथा, उपोद्घात

2• "महाविहारवासीनं देसनानयनिस्सितं"-विशुद्धिमग्गो

गन्धवंश के अनुसार आचार्य बुद्धघोष ही जातकट्ठकथा के लेखक हैं।[1] इनके विसुद्धिमग्गो, "सुमंगलविलासिनी" आदि ग्रन्थों के साथ जातकट्ठकथा का भी उल्लेख है। सिंहली परम्पराएँ भी आचार्य बुद्धघोष को ही इसका रचयिता मानती हैं।[2]

राइस डेविड्स कहते हैं कि "यद्यपि सिंहली परम्परा आचार्य बुद्धघोष को "जातकट्ठवण्णना" का रचयिता मानती है किन्तु यह ध्यान देने की बात है कि आचार्य बुद्धघोष ने इस अट्ठकथा में न तो अपने बौद्ध संघ में दीक्षित होने की ओर, न अपनी ऊँची आकांक्षाओं की ओर तनिक सा भी संकेत किया है। इसी प्रकार न तो वे इसमें अपने भारतीय दीक्षा गुरू का और न अपने अट्ठकथाओं के अध्यापक थेर संघपाल का ही कोई उल्लेख करते हैं"।[3] इससे वे परिणाम निकालते हैं कि "उनकी इस अट्ठकथा में यह चुप्पी उनको इस अट्ठकथा के रचयिता सिद्ध करने में बिल्कुल विश्वस्त रूप में विरुद्ध पड़ती है।" साथ में यह भी कहते हैं कि[4]

---

1• गन्धवंश पृ0 58-59 पालि टेक्सट सोसाइटी, 1886

2• "आ0 बुद्धघोष व उनकी अट्ठकथाएँ " पृ0 265

3• Three elders of the Buddhist order are mentioned with respect, but nieher the name of Revata, Budhaghosha's teacher in India, nor the name of Sanghapali, his teacher in Cyclon is even refered to; and there is not the slightest allusion either to Buddhayhasha convention, this Journey from India, the high hopes he had entertained or the work he had already accomplished. This silence seems to me almost as convincing such negative evidence can possibly be.
(Buddhist Birth Stories, Intro. P LIX.)

4. Now I ask the reader to imagine himself in Buddhaghasha position and then to read carefully the opening words of our Jataka commentary as translated below, and to Judge for himself whether they could possibly such words as Buddhaghosh would probably, under the circumstances, have written. It is a matter of feeling, but I confess I can not think it possible that he was the author of them.
(Buddhist Birth Stories- Intro. P.LIX .

"आचार्य बुद्धघोष के अन्य बहुत से ग्रन्थों को पढ़ने के पश्चात् कोई भी यह विचार कर सकता है कि जातकट्ठकथा की भाषा और वर्णन शैली प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं की वर्णनशैली के समान नहीं है। यद्यपि यह केवल अर्धचेतना की बात है फिर भी यह बात तो है ही"। आगे चलकर वे स्वयं कहते हैं"जातक-ट्ठकथा सदृश महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बिना पालि में भाषान्तर किये बहुत दिनों तक रह जाता, यह भी सम्भव नहीं। इसलिए यदि आचार्य बुद्धघोष इसके रचयिता नहीं है तो उनके समकालीन अथवा निकटपश्चात्कालीन कोई व्यक्ति उनका ही नाम राशी "चुल्लबुद्धघोष" इसका रचयिता हो सकता है।"

उपर्युक्त बातों का समर्थन करते हुए बी0सी0ला कहते है[1] कि "इस बात के अन्तरंग प्रमाण भी मिलते हैं कि यह रचना प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की रचना नहीं है। आचार्य बुद्धघोष ~~बुद्धघोष की रचना~~ अपनी अन्य पिटक ग्रन्थों की अट्ठ-कथाओं में केवल प्रारंभिक पदावली को छोड़कर जातक कथाओं का जैसा का तैसा वर्णन किया है। इन कथाओं का यदि जातकट्ठकथाओं की कथाओं के साथ मिलान किया जाय तो उसकी समानता और विभिन्नता का स्पष्ट पता लग जाता है। गाथाओं और उनको व्याख्याओं तथा कथाभाग में तो कोई विशेष अन्तर दृष्टि-गोचर नहीं होता, अन्तर केवल वर्णन की शब्द योजना और कथावर्णन के प्रकार में है। उदाहरणार्थ आचार्य बुद्धघोष का "मूलपर्याय"जातक का वर्णन इस प्रकार

---

1. Dr.B.C.Law 'Buddhoghosha' P 67-68 and also in 'Life And Works of Buddhaghosha'
A Careful comparison of the style and language of Jataka commentary with the style and language [illegible] works of Buddhaghosha shows convincingly that the Ja[illegible] Commentary was not the composition of Buddhaghosha.

Preface Page IX.

प्रारम्भ होता है- भूतपुब्बम् भिक्खवे अन्नतरो दिसापामोक्खो वाराणसीयं पतिवसति, तिण्णां वेदानं पारगू" इत्यादि।[1] यही वर्णन "जातकट्ठकथावण्णना" में इस प्रकार प्रारंभ होता है-"अतीते वाराणसोयं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो ब्राह्मणकुले णिब्बुतित्त्वा वयपत्तो तिण्णं वेदानं पारगू।[2] उपर्युक्त उद्धरणों का विश्लेषण करते हुए बो०सी०ला कहते हैं कि दोनों वर्णनों में निम्न बातें विशेष महत्त्व की हैं[3]-1•पपंचसूदनी में आचार्य बुद्धघोष ने "मूलपर्यायजातक"की कथा का प्रारम्भ सुत्तपिटक की शब्दावली से किया है जबकि "जातकट्ठवण्णना" में जातक की ही परिपाटी अपनायी गयी है। 2•पपंचसूदनी में बुद्धघोष ने उस समय में प्राप्य सिंहली जातकट्ठकथा के संस्करण का आधार लेकर स्वतंत्र रूप से कथा का पालि में वर्णन किया है। 3• आचार्यबुद्धघोष ने गाथा और उनकी व्याख्या सिंहली अट्ठकथा से जैसी की तैसी ली है। इसकी अंशत: "मिलिन्दपञ्हो" के गाथाओं के अवतरणों से होती है जो कि जातकों से लिये गये हैं।4•बुद्धघोष अपनी कथाओं के पालि के वर्णनों से वर्णन को एक आदर्श स्थापित किया था जिसको कि अन्य लेखकों ने शीघ्र अपना लिया था।

प्रो० रायस डेविड्स के उपर्युक्त कथन को उद्धृत करके उनसे सहमत होते हुए डॉ०कललसेकर कहते हैं[4] कि 1•"जातकट्ठकथा" की पणामगाथा तथा आचार्य बुद्धघोष की अन्य अट्ठकथाओं की पणामगाथाओं की भाषा और शैली मे भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है। 2•बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं के भिन्न-भिन्न नाम रखे हैं

---

1• पपंचसूदनी,भाग-1

किंतु इतनी बड़ी इस अट्ठकथा का उनकी अन्य अट्ठकथाओं के समान अन्य नाम नहीं रखा गया है। 3• अन्य अट्ठकथाओं के उपसंहार के ~~उपसंहार के~~ उनके प्रशंसात्मक वर्णनों के समान जो उनकी सभी अट्ठकथाओं में सामान्य है, इस अट्ठकथा में उनका ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता। 4• इस अट्ठकथा को लिखने की प्रार्थना करने वालों में उन्होंने महिंशासक परम्परा के थेर बुद्धदेव का भी उल्लेख किया है 5• उनकी अट्ठकथाओं के उपसंहार की गाथाएँ सर्वसाधारण की कल्याण की कामना को प्रकट करती हैं- कि "सारे प्राणी सर्वज्ञ भगवान् के धम्म का आस्वादन करें, यह उत्कृष्ट धम्म-चिरन्तन है" इत्यादि। जबकि जातकट्ठवण्णना में ये अपने व्यक्तिगत लाभ की कामना करते हैं कि "मैं तुसित स्वर्ग में पैदा होऊँ और जब भगवान् मेत्तेय्य अवतार लें तो बुद्ध होने वालों में मेरा नामकरण हो और पारमिताओं में पूर्णता प्राप्त कर लेने के पश्चात् मैं बुद्ध होऊँ।"

उपर्युक्त मतों में से प्रो0 रायस डेविड्स के विरोधी युक्ति के समाधान में कहा जा सकता है कि 1• बुद्धघोष ने किसी भी अट्ठकथा में अपने बारे में कुछ भी प्रशंसात्मक बात नहीं कही। यदि अन्य अट्ठकथाओं में भी कुछ कहते तो यहाँ भी कहते। 2• भाषा और शैली की भिन्नता के बारे में डॉ0 आदिकरम ने धम्मपदट्ठकथा के प्रकरण में स्पष्ट समाधान कर दिया है कि ग्रन्थ तथा विषय की भिन्नता से भाषा शैली में भिन्नता आजाना स्वाभाविक है। इसलिए अट्ठकथा के रचयिता को निर्धारित करने में भाषा व शैली की सामान्य समानता को मापदण्ड नहीं बनाना चाहिए। 3• भदन्त संघपाल का उल्लेख "विसुद्धिमग्ग" में इसलिए आ गया है कि आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ को उनके ही आदेश पर लिखा था। जातकट्ठकथा को लिखने के लिए जिन थेरों ने प्रार्थना की थी उनका उन्होंने उल्लेख किया ही है।

है। इसकी अट्ठकथा बहुत दिनों तक बिना लिखे नही रह सकती थी, और महावंश के कथनानुसार आचार्य बुद्धघोष से पहले लंका के किसी भी ग्रन्थकार ने पालि भाषा में कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। डेविड्स की यह युक्ति तो इस बात की और सिद्ध ही करती है कि अवश्य ही बुद्धघोष ने चार निकायों की अट्ठकथा लिखने के पश्चात् शीघ्र ही सबसे पहले इस महत्त्वपूर्ण जातकट्ठकथा को प्रारम्भ किया होगा।5•प्रो0 रायस डेविड्स ने जो उन्हीं के नामराशी "चुल्लबुद्धघोष" को जातकट्ठकथा का रचयिता होने का अनुमान किया है उसके लिए न तो कोई स्पष्ट उल्लेख है और न कोई विध्यात्मक साक्षी है। अन्य बात यह भी है कि इतने बड़े अट्ठकथाकार को छोड़कर जिसके बारे में इस ग्रन्थ के अट्ठकथाकार होने की सिंहली परम्परा तथा महावंशादि की साक्षी भी विद्यमान हैं, "चुल्लबुद्धघोष" सदृश अप्रसिद्ध व्यक्ति को रचयिता मानना उचित नहीं प्रतीत होता। 6•"पपंचसूदनी" और "जातकट्ठकथा" के प्रारम्भिक वाक्यों की भिन्न-भिन्न पदावली भिन्न-भिन्न रचयिताओं को सिद्ध नहीं कर सकती क्योंकि प्रकरण की भिन्नता पदावली में भिन्नता कर देती है। पपंचसूदनी की कथाएँ स्वयं भगवान् बुद्ध के द्वारा उपदेश के प्रकरण में कही गयी हैं इसलिए वे कथा के पहले "भिक्खवे" इस शब्द से प्रारंभ करते हैं। किन्तु जातकट्ठकथा में कथा के कहने का वाक्यांश "अतीते" इत्यादि अपनाया गया है जो कि मूल सिंहली जातकट्ठकथा का ही होना चाहिए और सिंहली जातकट्ठकथा की आधारभूत पालि अट्ठकथा में, जिसको थेर महिन्द भारत से अपने साथ लाये थे, इसी प्रकार की आरम्भ की शब्दावली अवश्य होगी क्योंकि कथा और कहानियाँ प्राय: इन्हीं शब्दों से प्रारम्भ की जाती हैं।

डॉ0 बी0सी0ला के द्वारा दिखायी गई "पपंचसूदनी" की "मूलपर्याय" जातक को कथा के तथा जातकट्ठकथा के वर्णनों को विभिन्नता की भी युक्ति समीचीन नहीं प्रती होती है। दोनों के वर्णनों में केवल प्रारंभिक शब्दावली को विभिन्नता है और वह भी भिन्न-भिन्न विषय और शैली वाले ग्रन्थों की विभिन्नता के कारण है। पपंचसूदनी की शैली निकायों के ऊपर है । इसी कारण इसमें "भिक्खवे" सम्बोधन से कथा आरम्भ की है। प्रकरण के अनुसार भी कथा की प्रारंभिक शब्दावली में परिवर्त्तन आ जाना सम्भव है। पपंचसूदनी में मूलपर्याय जातक की कथा भिक्खुओं को सम्बोधन करके कही गयी है जबकि जातकों में किसी व्यक्ति विशेष को सम्बोधन न करके कथासर्वसाधारण के लिए सामान्य रूप से अन्य जातकों की शैली पर ही वर्णन की गई है। इसलिए मानना पड़ेगा कि ग्रन्थों की अपनी-अपनी शैली के अनुसार एक ही कथा की प्रारंभिक शब्दावली की भिन्नता से ग्रन्थकारों की भिन्नता सिद्ध नहीं की जानी चाहिए।बी0सी0ला के चौथी युक्ति तथा प्रो0 रायस डेविड्स की यह युक्ति कि आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अन्य पालि अट्ठकथाओं की शैली के द्वारा अन्य लेखकों के लिए एक आदर्श स्थापित कर दिया है,उनको जातकट्ठकथा का रचयिता सिद्ध होने से नहीं रोक सकती। क्योंकि जब वे आदर्श स्थापित करने वाले ही हुए तो जातकट्ठकथा के वर्णन के द्वारा उन्होंने स्वतंत्र कथा के वर्णन के प्रकार का पपञ्चसूदनी से भिन्न सिंहली अट्ठकथा के अनुसार यह दूसरा आदर्श स्थापित कर दिया, इसमें कोई आपत्ति नहीं की जासकती। अवधेय है कि सारी अट्ठकथाएँ सिंहली अट्ठकथाओं की भाषान्तर हैं इसलिए क्यों न यह मान लिया जाय कि सिंहली जातकट्ठकथा का प्रारम्भ इसी प्रकार की सिंहली भाषा की शब्दावली से होगा।

इन दोनों सिंहली शब्दावलियों को उसी रूप में आचार्य बुद्धघोष ने पालि में भाषा-न्तर कर दिया है। वे अनुवादक हैं स्वतंत्र लेखक नहीं। सिंहली अट्टकथाओं को भी वह आर्ष मानते है। इसलिए वर्णन में भी परिवर्तन नहीं कर सके। "यावं अज्जतना" में भी उन्होंने सिंहली शब्दावली का अनुवाद ही किया है नहीं तो वे इस पालि वाक्यांश को भिन्न प्रकार से भी लिख सकते थे।

इसी प्रकार डॉ० मललसेकर के द्वारा "बुद्धवंश" को अट्ठकथा "मधुरत्थ-विलासिनी" के रचयिता थेर "बुद्धदत्त" को केवल इसलिए जातकट्ठकथा का रचयिता सिद्ध करना कि जातकट्ठकथा का अविदूरेनिदान का तथा थेर बुद्धदत्त की मधुरत्थ-विलासिनी का शाक्यों के बौद्ध धर्म स्वीकार करने तक वर्णन मिल जाता है-उचित नहीं लगता क्योंकि (जैसा कि मललसेकर स्वयं सम्भावना प्रकट करते हैं) दोनों का आधार एक सामान्य सिंहली अट्ठकथा भी हो सकती है, जैसा कि आचार्य बुद्ध-घोष को सर्वसम्मत पपंचसूदनी की निदानकथाऔर जातकट्ठकथा की निदानकथा का आधार भी एक ही है। एक आधार की युक्ति से भी जातकट्ठकथा के रचयिता आचार्य बुद्धघोष ही सिद्ध होते हैं।

बुद्धघोष को जातकट्ठकथा का रचयिता सिद्ध न करने वाली डॉ०मललसेकर की पहली युक्ति का तो उत्तर दिया जा चुका है कि भाषा, शैली और भाव वर्णनीय विषय के अनुसार बदल जाते हैं। इसलिए जातकट्ठकथा की पणामगाथाओं की वर्णन शैली में भिन्न-भिन्न विषयों के कारण अन्तर पड़ गया है। दूसरी युक्ति कि अन्य अट्ठकथाओं के समान "जातकट्ठकथा का अन्य नाम न रखने के कारण आ-चार्य बुद्धघोष को इसका रचयिता नहीं मानना चाहिए, युक्तिसंगत नहीं लगता ।

अन्य अट्ठकथाओं को तो मूल ग्रन्थों के नाम के अनुसार नाम न रखकर अन्य नाम रखना समीचीन जँचता है किन्तु जातक की अट्ठकथा का अन्य नाम रखना ठीक नहीं था। जातक शब्द जातकट्ठकथा के नाम के साथ जुड़ जाने से जो अभिप्राय इस नाम में गर्भित रहता है वह अन्य नाम के रखने में नहीं हो सकता था। वास्तव में यही अभिप्राय-गर्भित नाम उपयुक्त था, इसलिए आचार्य बुद्धघोष ने धम्मपदट्ठकथा के समान मूल ग्रन्थ का जातक शब्द इस अट्ठकथा के साथ जोड़कर "जातकट्ठवण्णना" इसका नाम ठीक ही रखा है। तीसरी युक्ति किसी भी ग्रन्थकार को उसका कर्त्ता अथवा अकर्त्ता सिद्ध नहीं कर सकती। वास्तव में "परमविशुद्धसद्धा" इत्यादि आत्म प्रशंसात्मक वाक्य आचार्य बुद्धघोष के नहीं हैं अपितु किसी ग्रंथ लेखक के द्वारा क्षेपकांश के रूप में जोड़े गये प्रतीत होते हैं। क्योंकि आचार्य बुद्धघोष इस प्रकार की आत्म-प्रशंसात्मक शब्दावली अपने लिए कभी प्रयुक्त नहीं कर सकते थे। इस जातकट्ठकथा की प्रतिलिपि करने वाले लेखक ने यह प्रशंसात्मक शब्दावली इसमें नहीं लिखी। अतएव इसकी प्रतिलिपि करने वाला लेखक अन्य अट्ठकथाओं के प्रतिलिपिकर्त्ता से, जिनमें यह प्रशंसात्मक पदावली है, अवश्य ही भिन्न होगा। यह प्रशंसात्मक पदावली निस्सन्देह प्रतिलिपिकर्त्ता की जोड़ी हुई है, अट्ठकथाकार की कभी नहीं हो सकती।

जातकट्ठकथा लिखने के लिए आचार्य बुद्धघोष से प्रार्थना करने वाले लोगों में महिंसासक थेर बुद्धदेव का उल्लेख करना तो उनकी और अधिक धार्मिक उदारता और सहनशीलता का परिचायक है। यह भी सम्भव है कि जातकों के विषय में विरोध न होने के कारण ही थेर बुद्धदेव ने इनसे प्रार्थना की हो। भाणकों के

वर्णन करते समय आचार्य बुद्धघोष ने संकीर्णता वाले "गेहसित प्रेम" की निन्दा स्वयं की है। इसलिए महिंशासक भिक्खु का उल्लेख करके उन्होंने उदारता प्रदर्शित की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ और अन्य अट्ठकथाओं की उपसंहार की गाथाओं के भावों में अन्तर भी वैभिन्न्य के कारण है और वह भी अर्थगर्भित है। जातकों का धार्मिक आदर्श, जैसा कि डॉ०बी०सी०ला ने निर्दिष्ट किया है आर्हन्त्य पद की प्राप्ति नहीं है अपितु बोधिसत्त्व अवस्था है जिसमें कि भगवान् बुद्ध ने अपने अनेक जन्मों में पारमिताओं के अभ्यास के द्वारा अपने उन अनेक गुणों को विकसित किया था जिनके द्वारा बुद्ध होने की तैयारी हुई थी। अतएव जातकों के आदर्शस्वरूप बोधिसत्त्व अवस्था के अनुरूप ही आचार्य बुद्धघोष ने जातकट्ठकथा के उपसंहार में पारमिताओं के अभ्यास द्वारा बोधिसत्त्व अवस्था प्राप्त करके बुद्ध बनने की व्यक्तिगत कल्याणकामना की है, जबकि अन्य ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में जिनका कि आदर्श अर्हन्त पद प्राप्त करना है उन्होंने "भगवान् बुद्ध के धम्म" के आचरण करने के द्वारा सब सुख प्राप्त करें ऐसी सर्वसाधारण के लिए कल्याण की कामना की है। वैसे भी विभिन्न ग्रन्थों में प्रतिपादित विषय के अनुसार मंगलाचरण अथवा उपसंहार के वाक्यों की भिन्नता हो ही जाती है। ऐसा प्रत्येक ग्रंथ रचयिता के ग्रन्थों में देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरोधी युक्तियों द्वारा यथोचित ढंग से समाधान हो जाता है। साथ ही विध्यात्मक प्रमाण भी आचार्य बुद्धघोष को इस ग्रन्थ का रचयिता बताते हैं। जहाँ तक बौद्ध परम्परा की बात है, वह तो सदा से बुद्धघोष को जातकट्ठवण्णना का रचयिता कहती आयी है। इसके अतिरिक्त गन्धवंश में जातकट्ठवण्णना का नाम दिया गया है। यही नहीं, डॉ० मललसेकर कहते हैं[1] कि

---

1. द पालि लिटरेचर आफ सिलॉन

"पाली जातकट्ठवण्णना" का एक बहुत पुराना पारिभाषिक शब्दकोश सिंहली भाषा में, है जिसका रचनाकाल उसमें नहीं दिया गया है किन्तु निश्चयपूर्वक वह 13 वीं०श० ई० पश्चात् के पाली जातकट्ठवण्णना के सिंहली अनुवाद से प्राचीनतर है, और उसमें भी आचार्य बुद्धघोष को पाली जातकट्ठवण्णना का रचयिता बताया गया है। डॉ०मललसेकर वहीं फिर लिखते हैं कि सुत्तनिपातट्ठकथा में जो कि निर्विवाद रूप से बुद्धघोष की ही रचना है पाठकों से जातकट्ठवण्णना की निदानकथा को निर्दिष्ट किया गया है। इससे भी वह आचार्य बुद्धघोष की ही रचना ठहरती है। डॉ०मललसेकर प्रो० रायस डेविड्स की पूर्वोक्त भूमिका का उल्लेख करते हुए स्वयं कहते हैं कि महावंश के कथन से यह स्पष्ट है कि आचार्य बुद्धघोष के श्रीलंका में जाने के पूर्व किसी भी सिंहली अट्ठकथा का पालि में अनुवाद नहीं हुआ था। इसका स्पष्ट अर्थ है कि इन्होंने अपने द्वारा रचित जातकट्ठवण्णना की निदानकथा को सुत्तनिपात की अट्ठकथा में निर्दिष्ट किया होगा। अब इस प्रकार जातकट्ठवण्णना का रचनाकाल बुद्धघोषके सुत्तनिपात की अट्ठकथा की रचना के पूर्व निश्चित हो गया। इसलिए पश्चात्कालीन चुल्लबुद्धघोष का जिसको कि,प्रो० रायस डेविड्स,डॉ०बी०सी०ला०,डॉ०मललसेकर पालि जातकट्ठकथा के रचयिता के रूप में स्वीकार करते हैं, इसके रचयिता होने का अब प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। इन चुल्लबुद्धघोष को तो इन सभी ने आचार्य बुद्धघोष का पश्चात्कालीन स्वीकार किया है। निश्चयपूर्वक थेर बुद्धदत्त की बुद्धवंश के ऊपर लिखी गई मधुरत्थविलासिनी अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं के बाद की है और इसीलिए उसकी निदान कथा जातकट्ठकथावण्णना से ली गई है क्योंकि महावंश के अनुसार आचार्य बुद्धघोष से पहले कोई पालि अट्ठकथा नहीं लिखी गई थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि

सुत्तनिपात को अट्ठकथा में भो आचार्य बुद्धघोष अपनी जातकट्ठकथा को निर्दिष्ट करते हैं और थेर बुद्धदत्त ने भो उन्हीं की जातकट्ठकथा से निदानकथा का वह अंश लिया है।

सारांशत: कहा जा सकता है कि यह अट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की है और उन्होंने इसे अन्य अट्ठकथाओं के समान, महाविहार की परम्परा के अनुसार ही लिखा है जैसा कि उन्होंने इस अट्ठकथा में स्वयं भी निर्दिष्ट किया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष की ही रचना है। प्रो०चाइल्डर्स भी इसको उन्हीं की रचना मानते हैं। श्रीलंका के प्रसिद्ध ~~के प्रसिद्ध~~ बड़े मनीषी विद्वान् भी आचार्य बुद्धघोष को ही इसका कर्त्ता स्वीकार करते हैं। इनमें पिछली शताब्दी के बौद्ध साहित्य के सबसे बड़े विद्वान् एच०सुमंगल भी हैं।[1]

कतिपय विद्वान् जातकट्ठकथा व जातकट्ठवण्णना को पृथक्-पृथक् लेखकों की रचना मानते हैं और कहते हैं कि यह बाद में गाथाओं की संख्या के अनुसार व्यवस्थित कर ली गई है। किन्तु यह बात भी ठीक नहीं जँचती। यह एक ही ग्रन्थकार की रचना है क्योंकि इसकी पच्चुप्पन्नवत्थु में स्थान-स्थान पर आगे और पीछे के जातकों को निर्दिष्ट किया गया है। इसी प्रकार इसकी गाथाओं को संक्षिप्त करके पाठकों को इन गाथाओं के विस्तार के लिए अन्यत्र दी गई हुई गाथाओं के विस्तार के लिए निर्देश दिया गया है। ये बातें भिन्न-भिन्न लेखकों की रचना होने में सम्भव नहीं हो सकतीं। अपरञ्च प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जातकों की कथा के वर्णन में एक सी ही प्रणाली बरती गई है। यदि भिन्न-भिन्न रचयिता होते तो वर्णनशैली में अवश्यमेव कुछ न कुछ भिन्नता आ ही जाती। इस प्रकार यह निश्चय होता है

---

1. 'Jatakatthakatha' Fausboll's edition, Part I, P. 1.

है कि यह जातकट्ठकथा मूलरूप में किसी एक ही भारतीय लेखक की रचना है। जिसने जातक ग्रन्थ की गाथाओं के अनुरूप कथाओं को संकलित और सम्पादित करके सर्वप्रथम पालि में जातकट्ठकथा लिखी थी और फिर वह थेर महिन्द और उनके साथी थेरों के द्वारा लंका में लायी गयी थी। वहाँ यह सिंहली थेरों के द्वारा सिंहली में अनुवादित और परिवर्धित हुई। "सेसट्ठकथासु" इस वाक्यांश से ज्ञात होता है कि श्रीलंका में सिंहली भाषा में इसके एकाधिक संस्करण (शायद वहाँ प्रचलित विभिन्न परम्पराओं के कारण) थे जिनको देखकर आचार्य बुद्धघोष ने अपनी यह जातकट्ठकथावण्णना पालि मे लिखी।

पूर्वपृष्ठों के आधार पर बुद्धघोष ही जातकट्ठकथा के लेखक सिद्ध होते हैं फलत: उनका समय ही जातकट्ठकथा का समय होगा। गन्धवंश भी इस तथ्य का प्रतिपादन करता है। इसे लक्ष्य कर विण्टरनित्ज कहते हैं "यदि यह बात ठीक है तो यह पन्चम शती की रचना हो सकती है।"[1] बुद्धघोष के काल के विषय में प्रभूत विवेचन उपलब्ध है।[2] अन्त:-बाह्य प्रमाणों के आधार पर उनका समय पाँचवीं श०ई माना जाता है। बुद्धघोष लंका के राजा महानाम के राजत्व काल में लंका में जाक अट्ठकथाएँ लिखीं। "चुल्लवंश" इसकी पुष्टि करता है और उनके ग्रन्थों के अन्त:-साक्ष्य से भी यह प्रमाणित होता है। उन्होंने जितने ग्रन्थों को अपनी अट्ठकथाओं में उल्लेख किया है वे सब उनसे पहले के हैं। बर्मा के बौद्ध विद्वान "विनेगादत्त" के

---

1. A Hist of Indian Lite. II, PP 189-90

2. B.C.Law-'Life and Works of Buddaghosha' The Biography written by Mahamangal, Winternitz- Indian Lit.,PP 609-11, Appendix IV, Gieges-Pali Literature and Language, PP 28-35, B.C.Law -' Hist. of Pali Literature, Vol. II PP 380-95 ,

Malalsakar-' Dictionary of Pali Proper Names ' Vol.II, 306-7 PP.
पालि साहि० का इतिहास पृ०536-560

द्वारा उल्लिखित बर्मी परम्परा से भी उनका समय पाँचवीं श0 का पूर्व भाग ठहरता है।[1] डॉ0 आदिकरम[2] भी कहते हैं कि राजा उपतिस्स और राजा महानाम के पिता बुद्धदास एक हैं जो प्रसिद्ध वैद्य भी थे और जिनके समय प्रसिद्ध "धम्मकथी" हुए जिन्होंने सुत्तों का सर्वप्रथम सिंहली में अनुवाद किया। सम्भवत: फाह्यान इन्हीं धम्मकथी को विद्वान् थेर मानता है और उनका समय पाँचवी शताब्दी का प्रारम्भ है।उनके अनुसार फाह्यान उन्हीं के समय लंका आया और चूँकि वह बुद्धघोष का उल्लेख नहीं करता अत: स्पष्ट है कि बुद्धघोष उसके लंका से चले जाने के बाद लंका गये जिस समय वहाँ महानाम का शासन था।

महानाम का समय 410 से 452 ई0 या 413 से 435 ई0माना जाता है। इसलिए बुद्धघोष का काल भी यही हो सकता है। इसकी पुष्टि एक दूसरे उत्स से भी देखी जा सकती है। बुद्धघोष-लिखित विनय अट्ठकथा "समन्तपासादिका" का पालि से चीनी भाषा में अनुवाद 489 ई0 में हो चुका था। अत: सिद्ध है कि बुद्धघोष की रचनाएँ इसके पूर्व हो चुकी थीं। अत: इनका काल पाँचवीं शताब्दी का पूर्व भाग निश्चित होता है।

गायगर महोदय के महावंश के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में काल, कर्तृत्व एवं राजत्व परम्परा सम्बन्धी एक विद्वत्तापूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।उन्होंने बुद्ध का निर्वाण काल 483 ई0पू0 माना है। इस पृष्ठभूमि में महावंश की सामग्रीका

---

1. "आ0 बुद्धघोष व उनकी अट्ठकथाएँ"पृ035

2. अर्ली हिस्ट्री आफ बुद्धिज्म इन सिलोन, पृ097

सम्यक् आकलन कर महानाम का काल 458-480ई० सिद्ध होता है। "सद्धम्मसंगहो" के अनुसार त्रिपिटक के लिपिबद्ध होने से516 वर्षों बाद महानाम लंका में राजा हुए।[1] त्रिपिटक का लिपिबद्धकरण बुद्ध के निर्वाण के 433 वर्षों बाद वट्टगामणी के समय हुआ।[2] इस प्रकार महानाम का काल बुद्धनिर्वाण के 949 वर्ष बाद माना जा सकता है। इस क्रम से महानाम का काल 949-883 = 666 ई० होता है जो भी हो, ये सभी उत्स इस तथ्य के परिचायक हैं कि महानाम ने पाँचवीं शताब्दी में लंका में राज्य किया था। यस्मात् उनके राजत्वकाल में बुद्धघोष का लंका का कार्य-कलाप सिद्ध है अत: आचार्य बुद्धघोष का काल पाँचवीं शती माना जाना उचित है। यद्यपि उसका पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध विवादास्पद है। जब बुद्धघोष पाँचवीं श०के लेखक सिद्ध हैं तो "जातकट्ठकथा" का काल भी वही माना जायेगा।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "तन्तो पिटकत्तयलिखितन्ततो पञ्चसु वस्ससु तेसु सोलसवस्सेसु,
अतिक्कन्तेसु महानामो नाम राजा लंकादीपे रज्जं करेसि ।।
(निदानकथा पृ027 पादटिप्पणी)

2. सम्बुद्धपरिनिब्बाना चतुवस्ससतेसु च ।
तेत्तिंसे सतिक्कन्तेसु राजाहुवट्टगामिनी।।
(निदानकथा पृ027)

# तृतीय अध्याय

## जातक कथाओं के नायक बोधिसत्व, बोधिसत्व की अवधारणा एवं आदर्श

## सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी व अरहन्त की मीमांसा, बुद्धकारक पारमिताएँ

बौद्ध धर्म की अवधारणाओं के आधार पर पूर्व जन्म की सम्भावना होती है। आज जो पशु-पक्षी देखने में आते हैं वे किसी जन्म में मानव शरीर धारण करते होंगे -यह बात भी शक्यता की मर्यादा के बाहर नहीं है। इस प्रकार प्रज्ञा और करूणा संसार की घटनाओं के प्रमुख सिद्धान्तों का आधार जातककथाएँ बन जाती हैं। इसी हेतु उनकी निर्मिति हुई है।

भगवान बुद्ध तो सर्वज्ञ थे ही बोधिसत्त्वावस्था में भी वे अपने पूर्व जन्म की घटनाओं को जानते थे। कोशल राजा के रूप में बोधिसत्त्व ने अपने अतीत जन्म की याद करते हुए एक बार कहा था कि इससे पूर्व के जन्म में, जब वे एक मजदूर थे, तब उन्होंने कुछ भिक्षुओं को भोजन दिया था, उसी के पुण्यफल के कारण अगले जन्म में वे कोशलाधिपति हुए।[1] उनकी धर्म परायणा पत्नी ने भी सम्पर्क में रहने मात्र से पूर्व जन्म को स्मृत करते हुए कहा था कि दासी होकर भी उसने एक मुनि को भोजन दिया था जिसके फलस्वरूप वह कोसलाधिपति की पटरानी बनी।[2]

बोधिसत्त्व जातकमाला के सभी जातकों में प्रधान पात्र हैं वे मनुष्यों की योनि में भी कभी राजा[3] कभी आचार्य[4], कभी ब्राह्मण[5], कभी तपस्वी[6], कभी परिव्राजक[7], कभी श्रेष्ठी[8], और कभी नाविक[9] के रूप में जन्म ग्रहण करते हैं।

---

1. जातकमाला, 3/10-12
2. जातकमाला 3/17-18
3. शिबि, कुल्माषपिण्डी, मैत्रीबल, विश्वन्तर, यज्ञ, उन्मादयन्ती, सुतसोम, अयोगृह जातक।
4. ब्राह्मण जातक (जातकमाला)
5. बिस तथा चुड्डबोधि जातक
6. अगस्त्य तथा क्षान्ति जातक
7. महाबोधि जातक
8. श्रेष्ठि, अविषह्य तथा श्रेष्ठी जातक

देवयोनि में देवाधिपति शक्र[1] होते हैं और पशु-पक्षियों की योनि में व्याघ्री[2], शश[3], मत्स्य[4], मृग[5], कपि[6], हस्ती[7], वनमहिष[8], या हंस[9], होकर जन्म ग्रहण करते हैं। वे अपना सर्वस्व दानकर भी सन्तुष्ट नहीं होते[10] कभी-कभी अपने शरीर का अवयव भी प्रसन्नतापूर्वक दे डालते हैं[11]। अपने शरीर का गरम-गरम मांस और धमनी का गर्म लहू खिला-पिलाकर क्रूरकर्मा यक्ष को सन्तुष्ट कर उन्हें आत्मतोष होता है।[12] इस प्रकार जातकमाला के नायक बोधिसत्त्व के कर्म दिव्य और अद्भुत हैं। उनका जीवन अलौकिक और आदर्श है।

---

1. शक्रजातक, कुम्भ जातक
2. व्याघ्री जातक
3. शश जातक
4. मत्स्य जातक
5. शरभ एवं रूरू जातक
6. महाकपि जातक
7. हस्ति जातक
8. महिष जातक
9. हंस जातक
10. व्याघ्री जातक
11. शिबि जातक
12. मैत्रीबल जातक

बुद्धत्व का आदर्श प्राचीन समय में भी था। जनता के लिए बुद्ध होना आपाततः सरल नहीं था परन्तु अर्हत पद में उत्थित होकर निर्वाण लाभ करना अर्थात् दुःख का उपशमन करना सभी को इष्ट था। किन्तु जिस स्थिति में आत्मा और दूसरे का दुःख समान प्रतीत होता है और अपनी सत्ता का बोध विश्वव्यापी हो जाता है अर्थात् समस्त विश्व में अपनत्व आ जाता है उस समय सबकी दुःख निवृत्ति अपनी दुःख निवृत्ति में परिणत हो जाती है। क्लिष्ट वासना के उपशम से जो निर्वाण प्राप्त होता है वह यथार्थ नहीं है। महानिर्वाण की प्राप्ति के पहले साधक को बोधिसत्त्व अवस्था में आरूढ़ होकर क्रमशः उच्चतर भूमियों का अतिक्रम करना पड़ता है। क्रम विकाश के इस मार्ग में किसी किसी का शत-शत जन्म बीत जाता है।

महामहोपाध्याय पंण्डित गोपीनाथ का कथन है कि प्राचीन काल में बुद्धत्व का आदर्श किसी-किसी उच्च साधक का था। वह नाना जन्मों में पारमिताओं का अभ्यास करता था। पुण्यसम्भार(कर्मात्मक) और ज्ञानसम्भार(प्रज्ञात्मक) दोनों से बुद्धत्व लाभ होता है। इन दोनों की उपयोगिता थी। पहले गोत्रभेद का सिद्धान्त स्वीकार किया जाता था किन्तु लक्ष्य बड़ा होने के कारण यह क्रमशः उपेक्षित होने लगा। नये दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में बुद्धत्व बीज विद्यमान माना गया किन्तु शरीर का यह वैशिष्ट्य है कि उसमें वह बीज अंकुरित व विकसित होता है तभी बुद्धत्व लाभ हो सकता है। बुद्धत्व के आदर्श के प्रसार के साथ-साथ बोधिसत्त्व-चर्या आवश्यक होने लगी। फलतः निर्वाण का प्राचीन आदर्श मलिन हो गया और महा निर्वाण व महापरिनिर्वाण के रूप में परिणत हो गया।[1]

---

1. "बौद्धधर्म दर्शन" भू०पृ० 16

बोधिसत्त्व शब्द का प्रयोग "भावी बुद्ध" के लिए प्राचीन पालि साहित्य में बहुत स्थानों पर मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहले इसका प्रयोग सम्बोधि से पूर्व शाक्यमुनि को सूचित करने के लिए ही होता था। शाक्यमुनि के असंख्य पूर्वजन्मों को जातक कहानियों के द्वारा प्रसिद्ध होने पर बोधिसत्त्वचरित भी विस्तृततर हो गया। साथ ही शाक्य मुनि के अलावा अतीत अन्य बुद्धों की कल्पना के कारण सम्बोधि से पूर्व अवस्था में उनके लिए भी बोधिसत्त्व शब्द का प्रयोग हुआ।

"बोधि" शब्द "सम्यक् ज्ञान" "लोकोत्तरप्रज्ञा" "सर्वज्ञता", "सम्यक् सम्बोधि" आदि का अधिवचन है। "सत्त्व" का अभिप्राय "प्राणी, मनुज" इत्यादि से है। "मिलिन्दपञ्हो" में "सत्त्व" इस प्रकार परिभाषित किया गया है- सत्त्व का अर्थ है-

यथा हि अंगसम्भारा होति सद्दो रथो इति ।

एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति सम्मुतीति ।।

अर्थात् रूप, वेदना, सञ्ञा (संज्ञा), संखार (संस्कार), विञ्ञाण (विज्ञान) इन पाँच स्कन्धों से समन्वित जीव ही सत्त्व कहा जाता है। अतः बोधिसत्त्व शब्द से ऐसे प्राणी का द्योतन होता है जो सम्यक् सम्बोधि की प्राप्ति का अभीप्सु हो। स्पष्ट शब्दों में सम्बोधि लाभ के अनन्तर बुद्ध या सम्यक् सम्बुद्ध नाम से अभिज्ञात पुरुष विशेष के पद बुद्धत्व के लाभ की इच्छा से सम्यक् मार्ग प्रतिपन्न सत्त्व विशेष को बोधिसत्त्व कहा जाता है। इसे बुद्धत्व का अभ्यर्थी भी कहा जा सकता है।[1]

विण्टरनित्ज कहते हैं कि बौद्धपरम्परा में बोधिसत्त्व उसे कहते हैं जिसका लक्ष्य "बोधि" प्राप्त करना है (बुद्ध होने के लिए)। मनुष्य, पशु आदि नाना जन्मों में

---

1. बुद्धघोषकृत "निदानकथा" अनुवादक डॉ० महेश तिवारी पृ० 36
मय्हं पि खो ब्राह्मण पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो एतदहोसि। (मज्झिमनिकाय, 1/23)

गौतम बुद्ध की संज्ञा बोधिसत्त्व थी जब तक कि उन्होंने शाक्य राजकुमार के रूप में पैदा होकर ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया।[1]

"ब्रह्मजालसुत्त" आदि पालि ग्रन्थों के अनुसार "अर्हत्" वह है जो मुक्त हो गया, पुनर्जन्म के भव बन्धन से रहित है, जिसने अपने सारे भव-बन्धनों को त्याग दिया, जो पवित्र जीवन व्यतीत करता है, जिसकी इच्छा एवं प्रवृत्ति अन्तिम मुक्ति के प्रति उन्मुख है, जो अपने मार्ग में एकाकी, उत्साहपूर्ण तथा अपना स्वामी स्वय है।[2] अर्हत् का सारा जीवन सम्पूर्ण जीवों के कल्याणार्थ होता था। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद लगभग 200 ई0पू0 तक बौद्ध भिक्षु सांसारिक जीवों की दु:खनिवृत्ति एवं कल्याण से विमुख होकर अधिक स्वार्थलिप्त हो गये। धम्मपद में जहाँ आत्मसंयम ध्यान आदि की प्रशंसा की गई वहीं सामान्य जन के कल्याण के प्रति औदासीन्य दिखाई पड़ता है। "थेरगाथा" के अधिकांश कवियों ने वैयक्तिक मुक्ति पर ही ध्यान केन्द्रित किया। प्राणिकल्याण की बात वहाँ शायद ही कही गई है।[3] "मिलिन्दप्रश्न" का कथन है कि अर्हत् को अपने ही दु:खों की मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। इन

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. A Bodhisattva, in Buddhist dogmatics, is a being who is destined to obtain enlightenment (Bodhi) i.e. to become Buddha. Gotama the Buddha is called Bodhisatva up to the time when he obtained enlightenment, not only in his last earthly existence but in all the countless existences which he experienced as man animal or God, before he was reborn for the last time as the son of Sakya prince.
(Hist. of Indian Literature Vol.II, P.113 )

2. ब्रह्मजालसुत्त (दीघनिकाय), 1-46

3. यथा ब्रह्मा तथा एको यथा देवो तथा दुवे ।
यथा गामो तथा तायो कोलाहलं ततु उत्तरन्ति।।
यस्स कत्थाय पब्बजितो अगारस्मा अनगारियम् ।

संकीर्ण विचारों के विरोध में सभी जीवों की रक्षा एवं कल्याण के सिद्धान्त के रूप में बोधिसत्व की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ।[1]

डॉ० हरदयाल का कथन उचित जान पड़ता है कि "बोधिसत्व का प्रमुख कार्य अर्हत् की आध्यात्मिक संकीर्णता की आलोचना एवं निन्दा करना था।"[2]

डॉ आर०सी० द्विवेदी भी प्रकारान्तर से यही बात कहते है कि हीनयानी विचारधारा में वैयक्तिक निर्वाण परम लक्ष्य था लेकिन महायान में बोधिसत्व को निर्वाण तब तक स्वीकार्य नहीं था जब तक हर एक प्राणी निर्वाण न प्राप्त कर ले।[3]

---

1. "The Bodhisattva doctrine was promulgated by same Buddhist leaders as a protest against this lack of true spiritual fervour and altrisum among the monks of that period."

   Dr.Hardayal-Bodhisattva Doctrine',Page-3

2. "A Bodhisattva is emphatically and primarily one who criticised and condemns the spiritual egoism of such Arhats and Pratyekabuddhas" 'Boddhisattva Doctrine', P.3.

3. The concern of the Hinyanists was for individual's perfection and his ownArhathood or final extinction the followed the example of Bodhisattva, the previous incarnation of the Buddha to win his Nirvana as quickly as possible. This concern for his own Nirvana and perfection was replaced by a new ideal of Bodhisattva. In Mahayana, the Bodhisattva was conceived not as a being who was anxious by working and awaiting for becoming Buddha, but was one who would wait untill even the smallest creature has won the highest summum bonum of his life and work for the welfare of the same ideal".

   (Jatakamala' Introdu.Page XI).

## "बोधिसत्त्व"शब्द का अर्थ

"बोधि" का अर्थ बुद्धत्व प्राय: सभी विद्वान् मानते हैं किन्तु सत्त्व के विभिन्न अर्थ समझे गये। डॉ0हरदयाल ने इस प्रकार बोधिसत्त्व शब्द को विश्लेषित किया है[1] -

1· सत्त्व (नपुं.) का अर्थ मोनियर विलियम्स के अनुसार है बुद्धि,चरित्र,ज्ञान, प्रकृति। अतएव जिसे बोधि अर्थात् पूर्णज्ञान हो, जिसकी प्रकृति पूर्ण ज्ञानमयी हो वह बोधिसत्त्व है।[2]

2· सत्त्व का अर्थ है प्राणी। पालि "सत्त" का अर्थ है सजीव पदार्थ।यह अर्थ अधिकांश विद्वानों द्वारा स्वीकृत है। इसी आधार पर समाधिराजसूत्रकार ने "बोधि-सत्त्व" का अर्थ किया है- "बोधयति सत्त्वान् इति बोधिसत्त्व:"।[3]

3· पी0 घोष ने भी सत्त्व का अर्थ प्राणी किया है किन्तु "बोधिसत्त्व" की व्याख्या किया है-

बोधि: स यास्सौ महाकृपाशयेन सत्त्वालम्बनात् सत्त्वश्चेति।[4] इससे द्योतित होता है कि मनुष्य बोधि और सत्त्व दोनों है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1· Sanskrit English Dictionary, Page 688 B
"One who has bodhi or perfect wisdom as his essence."

2· 'Bodhisattva Doctrine ', Page -124-25-26.

3· समाधिराजसूत्र 259,4

4· "षट्साहस्रिका प्रज्ञापरमिता"पृ02,नोट-2, चैप्टर 1-12

3. सत्त्व का अर्थ है आत्मा, मनस्, इन्द्रिय, चेतना। पालि में "सत्त" का अर्थ है "आत्मा"। प्रज्ञाकरमति ने "बोधिचर्यावतार" की टीका में लिखा है -

तत्र (बोधौ) सत्त्वं अभिप्रायोऽस्येति बोधिसत्त्व:।[1] तदनुसार बोधि पर जिसका मन, प्रवृत्तियाँ, विचार तथा इच्छाएँ केन्द्रित हों वह बोधिसत्त्व है।

4. "सत्त्व" का अर्थ है गुप्त, अज्ञात, अव्यक्त। तदनुसार बोधिसत्त्व वह है जिसमें बोधि अव्यक्त रूप में निहित हो ।[2]

5. "योगसूत्र" के अनुसार "सत्त्व" का अर्थ हो सकता है पुरुषाश्रित मन, बुद्धि। यह ई0 सेना के अनुसार है जिसने बौद्ध धर्म पर योगदर्शन का प्रचुर प्रभाव माना है।

किन्तु यह विचार बुद्धिग्राह्य नहीं है क्योंकि इसमें ऐतिहासिक भूल होगी। अधिकांश विद्वान् "योगसूत्र" का समय 300 ई0 के आसपास मानते हैं जबकि बोधिसत्त्व शब्द पालि निकायों में ही आता है[3] जिसका समय 5वीं, 4थी श0ई0पू0 माना जाता है।

एच0कर्न ने "बोधिसत्त्व" शब्द को सांख्य-योग के "बुद्धि" शब्द का पर्याय माना है। "बुद्धिसत्त्व" शब्द योगसाहित्य में पाया जाता है। इस आधार पर उन्होंने बोधिसत्त्व का अर्थ लिया है "अन्तर्निहित बुद्धि का मानवाकार रूप" ( )[4]।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "षट्साहस्रिका प्रज्ञापारमिता" पृ02, टिप्पणी -3

2. H.S. Gaur,- Buddhism, P. XI
" In whom knowledge in latent and undeveloped".

3. "मय्हंपि खो अनभिसम्बुद्धस्य बोधिसत्तस्सेव" मज्झिमनिकाय, 1/17/6

किन्तु यह अर्थ उपयुक्त नहीं प्रतीत होता क्योंकि बुद्धितत्त्वमीमांसा के अनुसार बुद्धि सत्ता के निम्नतर स्तर से सम्बद्ध है जबकि बोधि का सम्बन्ध उच्चतम ज्ञान से है। "बोधिचर्यावतार" में कहा गया है-"बुद्धि: सम्वृत्तिरूच्यते।"[1]

6• सत्त्व पालि "सत्त" का रूपान्तर है जो सस्कृत "सक्त" से बना,प्रतीत होता है। सक्त(सन्ज्+क्त) का अर्थ है सटा हुआ,सम्बद्ध,संलग्न। तदनुसार बोधिसत्त्व का अर्थ है बोधि में संलग्न।[2]

किन्तु पी०ओल्ट्रामार द्वारा इस मत का खण्डन इस आधार पर किया गया है कि सन्ज् का प्रयोग कभी भी नैतिक तथा आध्यात्मिक आदर्शों के प्रति संसक्ति के अर्थ में नहीं हुआ है।[3]

7• मोनियर विलियम के अनुसार "सत्त्व" का अर्थ है शक्ति बल,साहस, उत्साह।[4] तदनुसार जिस व्यक्ति को शक्ति बोधि की ओर अभिमुख हो। इस अर्थ में "सत्त्व" शब्द अवदानकल्पलता में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है-

"सत्त्वाब्धि:"[5]

"सत्त्वोज्ज्वलं भगवतश्चरितं निशम्य"[6]

"बोधिसत्त्व: सत्त्वविभूषित:"[7]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1• "बोधिचर्यावतार", 9/2

2• K.E.Numann, Mash Vol.1, Page 620, Note-5 "One who is devoted or attached to Bodhi".

3. P.Oltramare "Boudhique", P.250.

4. Sattva-being, existence, entity, reality (Isvara's, the existence of a supreme) तैत्तिरीय संहिता/true issence, nature deposition of mind, character- महाभारत /spiritual, essence spirit, mind- मुण्डकोपनिषद् Vital breath, life, conciousness strength of character, strength firmness, energy, resolution courage, self command, good sense, wisdom, magnanimity- महाभारत, रामायण) the quality of purity or goodness (Regarded in the Sankhya Philosophy as the highest of the three Gunas or constituent of Prakriti because it renders person true, honest, wise-and a thing pure, clean)- मैत्रायणी उपनिषद् material or elementary substance, entity, matter, a thing- निरुक्त, प्रातिशाख्य embryo, fetus, rudiment of life, aghost, demon, goblin - रामायण, [illegible]

"बुद्धचरित" में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है-

"बोधिसत्त्व: परिपूर्णसत्त्व:"।[1]

तिब्बती कोशकारों ने भी बुद्धि और उत्साह सम्पन्नता पर बल दिया है। चीनी कोशकार के अनुसार बोधिसत्त्व वह है जिसकी प्रकृति"बोधि" हो गई हो।

डॉ० हरदयाल का निष्कर्ष है कि पालि वाङ्मय, में आये हुए "बोधिसत्त" शब्द का सम्बन्ध वैदिक "सत्त्वन्" शब्द से है जिसके अनुसार "अध्यात्मवीर"[2] के रूप में इसका अर्थ कर सकते हैं। वास्तव में बोधिसत्त्व शब्द में दो भावनाएँ अन्तर्विहित हैं- एक तो सत्ता की भावना और दूसरी संघर्षमय जीवन की। केवल सत्ता की भावना से बोसित्त्व का सम्बन्ध दिखाना भ्रामक है, अत: दूसरों के कल्याण के लिए निरन्तर संघर्षशील रहकर इस संसार में अध्यात्मवीर की भूमिका का निर्वाह करने वाला व्यक्ति ही बोधिसत्त्व है। इसे महासत्त्व भी कहते हैं।

प्राणिमात्र के मूलभूत दुख,जन्म,जरा,व्याधि के अशेष प्रहाण के उद्देश्य से बोधिसत्त्व की चर्या प्रारम्भ होती है। तत्साधक बुद्धत्व की प्राप्ति उसका पर्यवसान है। इस प्रकार उसका जीवनक्रम एक सामान्य पुरूष से प्रारम्भ कर बुद्धत्व लाभ में पर्यवसित होता है। बोधिसत्त्व का जीवन लक्ष्य अत्यन्त उदार,महनीय तथा व्यापक है। उसके जीवन का उद्देश्य जगत् का परम कल्याण-साधन होता है। बोधिसत्त्व का उद्देश्य जगत् का परम कल्याण-साधन होता है। बोधिसत्त्व का स्वार्थ इतना विकसित होता है कि उसके स्व की परिधि में जगत के समस्त जीव समा जाते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "बुद्धचरित" 9/30-स बोधिसत्त्व: परिपूर्णसत्त्व: श्रुत्वा वचस्तस्य पुरोहितस्य। ध्यात्वा मुहूर्तं गुणवद्गुणज्ञ: प्रत्युत्तरं प्रश्रितमित्युवाच ।।

उसके प्रधान गुण होते हैं महामैत्री तथा महाकरूणा। पिपीलिका से लेकर हस्ती पर्यन्त जीवों में जब तक एक भी प्राणी दुःख का अनुभव करता है तब तक वह अपनी मुक्ति नहीं चाहता है। "बोधिचर्यावतार" में बोधिसत्त्व के आदर्श का सुन्दर वर्णन है -

एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मयासादितं शुभम् ।
तेन स्यां सर्वसत्त्वानां सर्वदुःख प्रशान्तिकृत्।।
मुच्यमानेषु सत्त्वेषु ये ते प्रामोद्यसागराः ।
तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेनारसिकेन किम् ।।

वस्तुतः महायान धर्म ही सर्वभूतदया पर आश्रित है। "आर्यगयाशीर्ष" ने कहा-

"किमारम्भा मन्जुश्री बोधिसत्त्वानां चर्या। किमधिष्ठाना। मन्जुश्रीराह-महाकरूणारम्भा देवपुत्र बोधिसत्त्वानां चर्या सत्त्वाधिष्ठानेति विस्तरः"। अर्थात् हे मंजुश्री बोधिसत्त्व की चर्या का क्या आरम्भ है और उसका आलम्बन क्या है ? मंजुश्री बोले हे देवपुत्र ! बोधिसत्त्वों की चर्या महाकरूणा पुरःसर होती है। इस करूणा के जीव ही पात्र हैं। दुखी जीवों का आलम्बन करके ही करूणा की प्रवृत्ति होती है। "आर्यधर्मसंगीति" में कहा है-"न भगवन् बोधिसत्त्वेनातिबहुषु धर्मेषु शिक्षितव्यम्। एक एव हि धर्मो बोधिसत्त्वेन स्वाराधितकर्तव्यः सुप्रतिविद्धः। तस्य करतलगताः सर्वे बुद्धधर्मा भवन्ति"।

भगवन् येन बोधिसत्त्वस्य महाकरूणा गच्छति तेन सर्वबुद्धधर्मा गच्छन्ति । तद्यथा भगवन् जीवितेन्द्रिये सतिशेषाणां इन्द्रियाणां प्रवृत्तिर्भवति एवमेव भगवन् महाकरूणायां सत्यां बोधिकारकाणां धर्माणां प्रवृत्तिर्भवति।[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

अर्थात् हे भगवन् ! बोधिसत्त्व के लिए बहुधर्म की शिक्षा आवश्यक नहीं है। बोधिसत्त्व को एक ही धर्म स्वायत्त करना चाहिए। उसके हस्तगत होने से सब धर्म हस्तगत होते हैं। जिस ओर महाकरूणा की प्रवृत्ति होती है उसी ओर सब बुद्ध धर्मों की प्रवृत्ति होती है। यथा -जीवितेन्द्रिय के रहते अन्य इन्द्रियों की प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार महाकरूणा के रहने पर बोधिकारक अथवा बोधिपाक्षिक धर्मों की प्रवृत्ति होती है।

अत: बोधिसत्त्व ऐसा मनुष्य नहीं है जो बुद्ध बनने वाला है अपितु ऐसा मनुष्य है जिसे बोध प्राप्त हो चुका है परन्तु जिसने इसके फल को स्वीकार नहीं किया है और अन्य मनुष्यों के कल्याण के लिए संसार में टिका रहना पसन्द किया है।अर्हत् और बोधिसत्त्व में अन्तर है, जैसाकि आगे स्पष्ट किया जायेगा। अर्हत् अपने श्रम से सफलता प्राप्त करता है जबकि बोसित्त्व इस सफलता को दूसरों में बाँटने लगता है। गीता में कृष्ण की यह घोषणा बोधिसत्त्व के इस आदर्श को अभिव्यक्त करती है-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किन्चन ।
नानवाप्तव्यमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।[1]

भागवद्धर्म और तन्त्रवाद से तुलना करते हुए डॉ0आर0सी0द्विवेदी का मत है कि कृष्ण या तान्त्रिक गुरू का लक्ष्य भी लोक कल्याण है तथापि इनके और बोधिसत्त्व के आदर्श में एक महान् अन्तर है। वह कहते हैं कि ब्राह्मण परम्परा के भगवान् अथवा तान्त्रिक परम्परा के गुरू शिव या शक्ति रूप में अपने-आप में परम शक्ति के मानवीय रूप हैं लेकिन बौद्ध परम्परा में बोधिसत्त्व को सर्वोत्कृष्ट शक्ति का पूर्ण अवतार नहीं माना जा सकता। पूर्णता उसकी

---

1. गीता, 3/22

स्वाभाविक या सतत् स्थिति नहीं है। उसको अपनी पूर्णता का शनै-शनै: विकाश करना है। वह आगे कहते हैं कि बोधिसत्त्व पूर्णता के लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते हैं और उसे प्राप्त कर दूसरों का कल्याण करते हैं जबकि भगवान् कृष्ण विभिन्न जीवों के रूप में अवतरित होकर परकल्याण करते हैं। दूसरी तरफ बोधिसत्त्व अपना आदर्श प्रस्तुत कर धीरे-धीरे दूसरों में सद्प्रवृत्ति पैदा करते हैं। वह पूर्वकालिक जन्मों के सतत प्रयास से पूर्णता प्राप्त करते हैं फिर भी, द्विवेदी जी कहते हैं, महायान द्वारा अपनाया गया सर्वमुक्ति का आदर्श भागवद्धर्म, तन्त्रवाद तथा अवान्तर वेदान्त में समान है।[1]

बोधिसत्त्व की संघर्षमयी उद्धारक अवधारणा जो कि दूसरों के जीवन के लिए अपने जीवन को परिमुक्ति के धन के समान दे देने वाले ईशामसीह के समान है, हमें इस प्रसिद्ध श्लोक की याद दिलाता है-

न त्वहं कामये राज्यं न मोक्षं नापुनर्भवम् ।
कामयेऽहं दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशम् ।।

शिविराज बोधिसत्त्व ने मन्त्रियों द्वारा बहुश: मना किये जाने परभी दु:खविह्वल भिखारी शक्र को अपनी आँख उखाड़कर दे दिया था, धरती का आधिपत्य स्वर्ग, अपवर्ग या यश प्राप्ति के लिए नहीं अपितु लोक-रक्षार्थ दिया था-

नायं यत्न: सार्वभौमत्वमाप्तुं नैव स्वर्गं नापवर्गं न कीर्तिम् ।
त्रातुं लोकानित्ययं त्वादरो मे याच्ञाक्लेशो मा च भूदस्य मोघ: ।।

---

1. In Tantric culture also, the only duty of a Guru or spiritual guide, who has attained perfect purity and realised his perfect identity with the ultimate is considered to be the welfare of all the worlolly beings.

However the ideal of Bhagavana in Gita or of a Guru of Tantric tradition is different in respect from the ideal of Bodhisattva - - - - However the concern for the freedom of all is common ideal exposed by the Mahayana, Bhagavatism, Tantrism and the later Vedanta.

अन्यत्र मैत्रीबल राजा (बोधिसत्त्व) ने क्रूर यक्षों को अपना मांस और लहू आतिथ्य रूप में प्रस्तुत करते हुए कैसा उत्कृष्ट आदर्श इन शब्दों में प्रकट किया है-

अमूनि मांसानि सशोणितानि धृतानि लोकस्य हितार्थमेव ।
यथातिथेयत्वमुपेयुरद्य महोदयः सोऽभ्युदयो मम स्यात् ।।[1]

इसी प्रकार हस्ति रूपधारी बोधिसत्त्व ने मरुभूमि में फँसे पथिकों को जीवित रखने के लिए अपने शरीर का तिनके के समान परित्याग कर दिया। वह कहते हैं कि अनेक रोगों के घर इस देह को मैं विपत्तिग्रस्त प्राणियों को जिलाने का साधन बनाता हूँ। स्वर्ग एवं मोक्षसुख की प्राप्ति में समर्थ इनका यह दुर्लभ मनुष्य जन्म कहीं यों ही न नष्ट हो जाय-

करोमि तदिदं देहं बहुरोगशताश्रयम् ।
एषां दुःखपरीतानामापदुत्तरणप्लवम् ।।
स्वर्गमोक्षसुखप्राप्तिसमर्थं जन्म मानुषम् ।
दुर्लभं च तदेतेषां मैव विलयमागमत् ।।[2]

निदानकथा में बोधिसत्त्व की चर्या का वर्णन उस समय से किया गया है जब सुमेध ब्राह्मण ने दीपंकर बुद्ध के युग में बुद्धत्व के लिए संकल्प लिया था। बुद्धत्व का संकल्प सिद्ध होने के लिए आठ बातों की आवश्यकता होती है-मनुष्यत्व, पुरुषत्व हेतु, शास्तृदर्शन, प्रव्रज्या, गुणसम्पत्ति, अधिकार तथा छन्द। नाना जन्मों में दस पारमिताओं की भावना के द्वारा ही यह संकल्प चरितार्थ होता है। महायान ग्रन्थों में बोधिसत्त्व के उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिए अनेक शिक्षाओं तथा अनुष्ठानों का

---

1. मैत्रीबल जातक, 25 वाँ श्लोक
2. बोधिचर्यावतार, 1/8।

विधान किया गया है जिन्हें बोधिचर्या के नाम से पुकारते हैं। बोधिसत्त्व को सर्व-प्रथम "बोधिचित" का परिग्रह करना चाहिए। एक बोधिचित्त ही सर्वार्थसाधन की योग्यता रखता है। इसी के द्वारा जीव भवसागर के पार लगते हैं। सब जीवों के समुद्धरण के अभिप्राय से बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए सम्यक् सम्बोधि में चित्त का प्रतिष्ठित होना-बोधिचित्त का ग्रहण करना है। जो श्रावक की तरह दु:ख का अत्यन्त निरोध चाहते है, जो बोधिसत्त्व की तरह सत्त्व समूह के दु:खापनयन चाहते हैं और जिनको दु:खापनयन मात्र नहीं संसार-सुख की भी अभिलाषा है। सबको सर्वद बोधिचित् का ग्रहण करना चाहिए। शान्तिदेव कहते हैं -

भवदु:खशतानि तर्तुकामैरपि सत्त्वव्यसनानि हर्तुकामै: ।
बहुसौख्यशतानि भोक्तुकामैर्न विमोच्यं हि सदैव बोधिचित्तम्।।[1]

आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार बोधिचित्तग्रहणपूर्वक ही बोधिसत्त्व शिक्षा का समादान होता है अन्यथा नहीं। वह बोधिप्रणिधिचित्त तथा बोधिप्रस्थानचित रूप में द्विविध है। "प्रणिधि"का अर्थ ध्यान अथवा कर्मफल का त्याग है। प्रणिधिचित की अवस्था पूर्वावस्था है इसमें महायान का पथिक होने की इच्छा मात्र प्रकट हुई है पर जब व्रत ग्रहण कर वह मार्ग में प्रस्थान करता है और कार्य में व्यापृत होता है तब बोधिप्रस्थानचित्त का उत्पाद होता है।[2] बोधिचित्त के उत्पादन के लिए सप्तवि पूजा का विधान किया गया है-वन्दना, पूजा, पापदेशना, पुण्यानुमोदन, अध्येषणा, बोधिचित्तोत्पाद तथा परिणामना।

सर्वप्रथम बुद्ध, सद्धर्म तथा बोधिसत्त्व की पूजा आवश्यक है। यह पूजा मनोमय है। शान्तिदेव मनोमय पूजा के हेतु देते हुए कहते हैं-

अपुण्यवानस्मि महादरिद्र: पूजार्थमन्यन्मम नास्ति किञ्चित् ।
अतो ममार्थाय परार्थचित्ता गृह्णन्तु नाथा इदमात्मशक्त्या ।।[3]

मनोमय पूजानन्तर साधक बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में जाता है और अपने सभी पापों का प्रख्यापन करता है। इसे पापदेशना कहते हैं। इसके बाद साधक सभी सत्त्वों के लौकिक शुभकर्म का प्रसादपूर्वक अनुमोदन करता है तथा सब प्राणियों के सर्वदु:खविनिर्मोक्ष का अनुमोदन करता है इसे पुण्यानुमोदन कहते हैं। तदनन्तर अञ्जलिबद्ध हो दिशाओं में स्थित बुद्धों से प्रार्थना करता है कि अज्ञानतम से आवृत जीवों के उद्धार के लिए भगवान् धर्म का उपदेश करें। यही बुद्धाध्येषणा है। तब वह कृतकृत्य जिनों से प्रार्थना करता है कि अभी वह परिनिर्वाण में प्रवेश न करें जिससे वह लोकमार्ग का ज्ञान न होने से निश्चेतन न हो जाय, यह बुद्धयाचना है। अन्तत: साधक प्रार्थना करता है कि उक्त क्रम से अनुत्तर पूजा करने से जो सुकृत मुझे प्राप्त हुआ है उसके द्वारा मैं समस्त प्राणियों के सम्पूर्ण दु:खों का प्रशमन करने में समर्थ होऊँ और सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति कराऊँ, यह बोधिपरिणामना है। इनके अलावा पारमिताओं का परिपाचन नितान्त आवश्यक है जिनका आगे सविस्तार वर्णन किया जायेगा।

महासांघिक लोकोत्तरवादियों ने बुद्ध के साथ बोधिसत्त्वों को भी लोकोत्तर बताया। स्थविरवाद और सर्वास्तिवाद तथा प्राचीन आगमों में बोधिसत्त्व को विलक्षण एवं अद्भुत पुरुष मानते हुए भी मनुष्य माना जाता था किन्तु महासांघिकों ने सर्वथा अलौकिक विवरण दिया। बोधिसत्त्व औपपादुक हैं, लोकानुवर्त्तन के कारण ही मनुष्यवत् प्रतीत होते हैं, उनका रूप मनोमय है अथवा एकव्यावहारिकों के मत में उनमें रूप है ही नहीं। वैतुल्यकों ने यहाँ तक कह दिया कि तुषितलोक से मायादेवी के गर्भ में केवल एक निर्माणकाय का ही अवतार हुआ।[1]

---

1. "बौद्धधर्म के विकास का इतिहास" पृ0357

बोधिसत्त्व विषयक हीनयानी दृष्टिकोण का महायान में स्वाभाविक विकास पाया जाता है। हीनयानी परम्परा में बुद्ध व बोधिसत्त्व की असाधरणता मानी गयी थी तथा उनके आदर्शों का सफल अनुकरण सबके वश की बात नहीं थी। साथ ही असाधारण होते हुए भी वे मनुष्य-कोटि से परे नहीं थे। यह भी निश्चित है कि अनेक बुद्ध व बोधिसत्त्व मानते हुए भी अनागत बुद्धों तथा वर्तमान बोधिसत्त्वों का स्थान हीनयान में नगण्य है। दूसरी ओर महासांघिक दर्शित मार्ग द्वारा बुद्ध व बोधिसत्त्व की असाधारणता स्पष्ट ही महायान परम्परा में अलौकिकता में बदल गई किन्तु फिर भी उनका आदर्श सबके लिए अनुकरणीय बताया गया था। वर्तमान बोधिसत्त्व या बुद्धों का ही महायान में प्राधान्य है और यह तर्कसंगत भी है कि जिस कार्य का स्वयं बुद्ध ने अनुकरण किया उसी का उसके अनुयायी भी करें।

महायान ने त्रिकाय-निर्माणकाय,सम्भोगकाय तथा धर्मकाय की कल्पना कर बुद्धत्व के आदर्श को बड़ा ही ऊँचा दिखाया है। शाक्यमुनि के सब कार्य तात्त्विक बुद्धि के आवरण नहीं हैं अपितु "मानव समाज के सामने बुद्धत्व की प्राप्ति नितान्त काल्पनिक न होकर वास्तविक है" यह शिक्षा देने के लिए लोकानुवर्तन के निमित्त बुद्ध के निर्माणकाय के द्वारा किये गये हैं। धर्मकाय निर्माणकाय का मूलाधार है। धर्मकाय की कल्पना बुद्ध को ईश्वर रूप में मानने के लिए की गई है। परमसत्यस्वरूप बुद्ध मानवसमाज के कल्याणसाधन के निमित्त अनेक रूप धारण किया करते हैं।ऐति-हासिक बुद्ध भी इनके अवतार मात्र हैं। "सद्धर्मपुण्डरीक" का कहना है कि सत्त्व प्रेम से बुद्ध की एक पुष्प के अर्पण द्वारा पूजा करने से साधक को अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार महायान धर्म में निरीश्वरवादी,शुष्क निवृत्तिप्रधान

हीनयान की काया पलटकर इसे सेश्वरवादी तथा प्रवृत्तिप्रधान के मनोरम रूप में उपस्थित किया गया। भक्तियोग ने मानव-समाज की आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के नैसर्गिक विकाश के लिए बुद्ध धर्म को एक नवीन मार्ग पर आरूढ़ किया। इस कारण तथागत-धर्म की लोकप्रियता बढ़ी। विपुल जीवों ने कल्याण-साधन के सुगम मार्ग सीखकर बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरणागति ग्रहण की। महायान की कल्पना के मूल में गीता का भक्ति-समन्वित कर्मयोग कारण माना जाता है। भोट देशीय प्रसिद्ध विद्वान् तारानाथ ने गीता-धर्म के प्रभाव को महायान के रूप-परिवर्त्तन में प्रधान कारण माना है।[1]

---

1. तिलक "गीतारहस्य" पृ0 570-585

## सोतापन्न,सकदागामी,अनागामी और अरहन्त की मीमांसा

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में प्रगति के विभिन्न अवस्थाओं के लिए आख्याभेद प्राचीनतम सन्दर्भों में स्पष्टतः उपलब्ध नहीं होता।प्रारम्भ में कदाचित् पृथक्जन,आर्य एवं अर्हत् की चर्चा थी। त्रिपिटक में "अनागामी"शब्द के अपारिभाषिक प्रयोग की उपलब्धि से स्पष्ट होता है कि मार्गचतुष्टय का सिद्धान्त सर्वथा प्राचीन नहीं है। "श्रामण्यफलसूत्र" में भी मार्गों एवं मार्गफलों के चतुष्टय की चर्चा प्राप्त नहीं होती किन्तु पृथक्जन एवं आर्य का भेद अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है।"मज्झिमनिकाय" में पृथक्जन उसको कहते हैं जो अहंकार,ममकार के मोह में फंसा हो। इस मोह के कारण वह अनात्म पदार्थों में आत्मग्राही रहता है एवं काम,भव व अविद्या के आस्रवों से प्रेरित होकर कर्म करता है।[1]

"अंगुत्तरनिकाय"एवं "पुग्गलपञ्ञत्ति" में पृथक्जन के अनन्तर गोत्रभू की अवस्था भी कही गई है। इन ग्रन्थों में गोत्रभू को आर्य नहीं माना गया है। बुद्धघोष ने भी मार्गज्ञान के बाद ही गोत्रभू ज्ञान माना है।[2] कुछ अन्य परवर्ती ग्रन्थों में जैसे "पटिसम्भिदामग्ग" और"अभिधम्मत्थसंगह" में गोत्रभू को आर्य माना गया है।

---

1• पुग्गलपञ्ञत्ति में तीन संयोजनों को पृथग्जन का लक्षण माना गया है।वे हैं-सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा एवं शीलव्रतपरामर्श। अन्यत्र संयोजन दस गिनाए गये हैं जिनमें उपर्युक्त तीन के अलावा अन्य सात है- कामच्छन्द,व्यापाद,रूपराग,अरूपराग, मान, औद्धत्य एवं अविद्या। (बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास,पृ0129)

2• अमरत्व की प्राप्ति स्रोतापत्ति से होती है किन्तु गोत्रभू और स्रोतापन्न के बीच में श्रद्धानुसारी और धर्मानुसारी व्यक्ति माने जाते हैं। पुग्गलपञ्ञत्ति के अनुसार जिनमें श्रद्धेन्द्रिय का प्राधान्य है वे श्रद्धानुसारी और जिनमें धर्मेन्द्रिय का प्राधान्य है वे धर्मानुसारी हैं।स्रोतापत्ति होने पर श्रद्धानुसारी श्रद्धाविमुक्त और धर्मानुसारी धर्मविमुक्त या दृष्टिप्राप्त कहे जाते हैं। इनमें से पहले के कुछ आस्रवों का क्षय होता

अवधेय है कि संसार के प्रपञ्च में अज्ञानपूर्वक जीवनयापन करने वाले व्यक्ति को "पृथग्जन"कहा जाता है। बुद्ध के ज्ञान-रश्मियों से जब साधक का सम्बन्ध हो जाता है तब वह निर्वाणगामी मार्ग में आरूढ़ हो जाता है और उसकी शास्त्रीय संज्ञा आर्य हो जाती है। मुक्तिमार्ग में प्रवेश और प्रगति की अवस्थाओं का विवेचन क्रमश: सूक्ष्म और विस्तृत हुआ। पृथग्जन और आर्य का भेद प्राचीनतम था पीछे इन दो के अन्तराल में गोत्रभू की स्थिति स्रोत का मार्ग एवं उनके अनुरूप चार फल माने गये । इनमें भावना और विपश्यना के तारतम्य से अवान्तर भेद भी स्वीकार किये गये। प्रारम्भ में अर्हत्त्व और बुद्ध का भेद स्पष्ट नहीं था पर पीछे न केवल यह भेद विशद हुआ अपितु कुछ सम्प्रदायों में अर्हत् का पर्याप्त अपकर्ष घोषित किया गया।

बुद्ध द्वारा स्थापित संघ के लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से बुद्धवचनों का अभिप्राय लगाकर विभिन्न मतों का प्रतिपादन करने लगे और इसी कारण बुद्ध के निर्वाण के अनन्तर इस मत में अनेक भेद हो गये।प्रारम्भ में इनके दो प्रधान भेद हुए-महासांघिक तथा स्थविरवादी। बदला लेने की दृष्टि से महासांघिकों ने स्थविरवादियों को हीनयानी और अपने को महायानी के नाम से प्रसिद्ध किया। महायान का तात्पर्य है निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रशस्त मार्ग और हीनयान का तात्पर्य है नीच मार्ग या अनुपयुक्त मार्ग। अवधेय है कि हीनयान के साधक लोग अर्हत् पद को अपना चरम लक्ष्य मानते थे। इस पद पर पहुँचकर साधक ज्ञाननिष्ठ हो जाता है। महायान के साधक बोधिसत्त्व की अवस्था तक पहुँचते हैं और दूसरे के कल्याण करने की शक्ति प्राप्त करते हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

निर्वाण की ओर जाने के लिए दो धुरियाँ है"श्रद्धा और प्रज्ञा तथा दो अभिनिवेश शमथ और विपश्यना एवं दो शीर्ष हैं उभयतोभागविमुक्त एवं श्रद्धा-विमुक्त। इनमें प्रज्ञाधुर और शमथाभिनिवेश के अनुयायी स्रोतापत्ति के मार्ग में धर्मा-नुसारी कहलाते हैं। अगली छ: अवस्थाओं में कायसाक्षी और अर्हत्व में उभयतोभाग-

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार त्रिविध यानों[1] में जीवनमुक्ति की कल्पना भिन्न-भिन्न है-श्रावकबोधि, प्रत्येकबुद्धबोधि तथा सम्यक्सम्बोधि। तदनुसार तीनों के लक्ष्य हैं अर्हत्, प्रत्येकबुद्ध और बोधिसत्त्व।

श्रावकबोधि

बुद्ध के पास धर्म सीखने वालों को श्रावक कहते हैं। श्रावकबोधि का आदर्श हीनयान को मान्य है। बुद्ध का कहना है कि जीव को परमुखापेक्षी होने की आवश्यकता नहीं है। वह अपना स्वामी स्वयं है। वह स्वयं अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करे तो राग-द्वेष-मोह रूपी विषयवागुरा से मुक्ति पा सकता है। डॉ० बल्देव उपाध्याय कहते हैं कि श्रावक के लिए चार अवस्थाओं का वर्णन "महा-लिसुत्त" ने किया है-सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी और अरहन्त।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

विमुक्त। प्रज्ञाधुर और विपश्यनाभिनिवेश के अनुयायी स्रोतापत्ति के मार्ग में धर्मानुसारी कहलाते हैं। अगली छ: अवस्थाओं में दृष्टिप्राप्त एवं अर्हत्व की अवस्था में प्रज्ञाविमुक्त। श्रद्धाधुर और शमथाभिनिवेश के अनुयायी स्रोतापत्ति के मार्ग में श्रद्धानुसारी और अगली छ: अवस्थाओं में श्रद्धाविमुक्त और अर्हत्व में उभयतोभागविमुक्त। श्रद्धाधुर और विपश्यनाभिनिवेश के अनुयायी स्रोतापत्ति मार्ग में श्रद्धानुसारी, अगली छ: अवस्थाओं में श्रद्धाविमुक्त एवं अर्हत्व में प्रज्ञाविमुक्त कहलाते हैं।
(बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास पृ०130, पाद

1. श्रावकयान तथा प्रत्येकबुद्धयान दोनों हीनयान में संगृहीत हैं।
(इनसाइक्लोपेडिया आफ रीलीजियन एण्ड एथिक एडीटेड बाइ जे० हेस्टिंग्स जिल्द 8, पृ0331)
महायान के अन्य नाम हैं एकयान, बोधिसत्त्वयान, बुद्धयान, अग्रयान।

2. "धर्म और दर्शन", पृ0112

स्रोतापन्न साधक का चित्त प्रपञ्चमार्ग से एकदम हटकर निर्वाण रूपी स्रोतप्रवाह में पड़कर आध्यात्मिक उन्नति में अग्रसर होता है। व्यासभाष्य के अनुसार चित्त नदी उभयतोवाहिनी है, पाप की ओर भी बहती है और कल्याण की ओर भी ﴾चित्तनदी नामोभयतो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च[1]﴿। अतः कल्याणगामी प्रवाह में चित्त को डाल देना प्रथमावस्था का मूलमंत्र है। "महालिसुत्त" ﴾दीघनिकाय,छठा सुत्त﴿ ने तीन संयोजनों ﴾सत्कायदृष्टि, विचिकित्सा और शीलव्रतपरामर्श﴿ के क्षय हो जाने से फिर पतित न होने वाले नियतसम्बोधि की ओर जाने वाले व्यक्ति को सोतापन्न कहा है। इसके चार अंग हैं बुद्धानुस्मृति, संघानुस्मृति, धर्मानुस्मृति अर्थात् बुद्ध धर्म व संघ में अत्यन्त श्रद्धा तथा अखण्ड, अनिन्दित, समाधिगामी कमनीय शीलों का सम्पादन। स्रोतापत्ति के अंगों से युक्त होने पर अदत्तादान, कामामिथ्याचार, मृषावाद एवं मद्यपान से मुक्ति मिलती है साथ ही प्रीति, प्रामोद्य, प्रश्रब्धि और समाधि की वृद्धि होनी चाहिए तथा अनित्यानुपश्यना, दुःख, अनात्म, प्रहाण, विराग एवं निरोध रूप छः विद्याविभागीय धर्मों की भावना करनी चाहिए। चार आर्यसत्यों के ज्ञान से स्रोतापत्ति पूर्ण निष्पन्न होती है।[2]

श्रावकचर्या का प्रकारभेद नामभेद के साथ महाव्युत्पत्ति में इस प्रकार संग्रह प्रदर्शित किया गया है–

स्रोतापन्न, सप्तकृद्भव, परम, कुलंकुल सकृदागामी, एकवीचिक, अनागामी, अन्तर्परिनिर्वापी, उपपद्यपरिनिर्वापी, साभिसंस्कारपरिनिर्वापी, अनभिसंस्कारपरिनिर्वापी, ऊर्ध्वस्रोतकार्यसाक्षी, श्रद्धानुसारी, धर्मानुसारी, श्रद्धाविमुक्त, दृष्टिप्राप्त, समयविमुक्त, असमयविमुक्त, प्रज्ञाविमुक्त, उभयतोभागविमुक्त। इसके अतिरिक्त महाव्युत्पत्ति

---

1. योग सूत्र 1/12
2. "बौद्धधर्म के विकास का इतिहास﴿, पाद टि०पृ०130

में सात श्रावक भूमियों का उल्लेख मिलता है-शुक्लविदर्शनाभूमि, गोत्रभूमि, अष्टकभूमि, दर्शनभूमि, तनुभूमि, वीतरागभूमि कृतावीभूमि। गोत्रभूमि की अवस्था को कहीं पृथग्जन, कहीं आर्य को अवस्था कहा गया है। तीसरी और चौथी भूमियाँ स्रोतापत्ति का मार्ग एवं फल हैं। आर्यसत्यों के बोध के द्वारा इनका लाभ होता है। सकृदागामी को अवस्था ~~तनुभूमि और~~ ही रागद्वेष और मोह की तनुभूमि है। अनागामी की अवस्था वीतरागभूमि और अर्हत् को कृतावी भूमि है।

सारांशत: कह सकते हैं कि सोतापन्न अवस्था में साधक की चित्तवृत्ति संसार से विरक्त होकर निर्वाण की तरफ ले जाने वाली चित्तवृत्ति में शामिल हो जाती है।पुरूष निवृत्ति की ऐसी आध्यात्मिक धारा में पहुँच गया होता है जो उसे अनिवार्य रूप से सम्बोधि तक ले जायेगी। इसलिए सोतापन्न को "अविनिपातधर्म" "नियत सम्बोधिपरायण" कहा गया है।

सकृदागामी का तात्पर्य है एक बार संसार में आने वाला प्राणी।इस भूमि में इन्द्रिय लोलुपता तथा दूसरे को हानि पहुँचाने की इच्छा इन दोनों का नाश करता हुआ साधक अपने लक्ष्य पद की प्राप्ति के लिए अग्रसर होता है। इस मार्ग के साधक एक बार फिर संसार में आते हैं।

अनागामी भूमि में उपर्युक्त दोनों बन्धनों से मुक्त होकर साधक आगे बढ़ता है, मरने पर वह पुन: संसार में लौटकर नहीं आता। वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है तथा जीवन मुक्त की भाँति हो जाता है।

अर्हत् पद की प्राप्ति करने वाले साधकको रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य तथा अविद्या-इन बन्धनों का नाश कर क्लेशों से मुक्ति मिलती है। इस भूमि में आकर साधक को तृष्णा से शान्ति मिलती है। "धम्मपद" में कहा गया है-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बधि ।

सब्बगन्थप्पहीनस्स परिणाहो न विज्जति ।।

अर्थात् उत्पत्ति, विनाश रूपी संसार से निवृत्त हुआ, शोकसन्तापरहित भवबन्धन-आशाधर्म से विमुक्त और तृष्णा रूपी जाल को जिसने तोड़ डाला है ऐसा अर्हत् कभी दु:खी नहीं होता।

डॉ0 हरदयाल ने अर्हत् के लक्षण बताते हुए कहा है कि जिसने द्वादश निदानों के पैमाने को जान लिया है, तीन आश्रवों का नाश कर डाला है और सप्तविध बोधि का अभ्यास कर लिया है तथा पाँच निर्वाणों से छुटकारा पा लिया है वह अर्हत् है।[1]

मिलिन्द ने नागसेन से प्रश्न किया कि क्या कारण है अर्हत् को शारीरिक वेदना तो होती है पर मानसिक नहीं? क्या अर्हत् मन की तरह शारीरिक अनुभवों पर नियंत्रण नही रखता ? नागसेन ने उत्तर दिया कि सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मूत्र-शौच, थकावट-बुढ़ापा, रोग और मृत्यु ये दस गुण जन्मान्तर के साथ शरीर से लगे रहते हैं। शरीर में होने वाले इन अनुभवों पर अर्हत् का कोई वश नहीं होता। अर्हत् का चित्त शरीर के आधार पर प्रवृत्त होता है किन्तु उसका शरीर पर अधिकार नहीं होता। जबकि साधारण जन दोनों वेदनाओं का अनुभव करते हैं क्योंकि उनका

---

1. 'Thus an Arhat was also supposed to comprehend the formula of twelve Nidanas. He was defined as one who had eradicated the three Ashravas of sense desire, love of existence and ignorance and also the fourth supplementary Astravas of speculative opinion. He practised the seven factors enlightenment mindfulness investigation, energy, Joy, serenety, concentration and equaninity .He got rid of five Nirvanas: sensuality ,malic, sloth and torpor, worry and excitement and doubt.

'Bodhisatva Doctrine ' Page. I.

चित्त भावना के वशीभूत नहीं है। अभावितचित्त वेदना द्वारा शीघ्र ही चन्चल हो जाता है। चित्त की चन्चलता से शरीर छटपटाने लगता है। परन्तु अर्हत् को शारीरिक वेदना होती है मानसिक नहीं क्योंकि सतत् अभ्यास से वह मन को सर्वथा वश में कर लेता है। यदि उसे कोई दुःख हो तो संसार की असारता का वह दृढ़ता-पूर्वक विचार करता है। समाधि रूपी खूँटे से मन को बाँधता है। वह चित्त को कभी चन्चल नहीं होने देता। पीड़ा से भले उसका शरीर छटपटाता रहे पर मन प्रभावित नहीं होता।

अर्हत् का अन्तिम जन्म होता है वह इसके बाद जन्म नहीं ग्रहण करेगा इस बात को वह जानता है। जन्मग्रहण करने के जितने हेतु-प्रत्यय हैं वे नष्ट हो चुके हैं।[1] हीनयान बौद्धों का मुख्य लक्ष्य इसी पद की प्राप्ति है।

डॉ० बलदेव उपाध्याय एवं डॉ० उमेशमिश्र का अभिमत है कि प्रत्येक बुद्ध की कल्पना अर्हत् तथा बोधिसत्त्व के बीच की साधना का सूचक है। जिस व्यक्ति को बिना गुरू के उपदेश के स्वतः स्फूर्ति से बुद्धत्व लाभ हो जाता है उसे प्रत्येक-बुद्ध कहते हैं। बुद्धत्व लाभ हो जाने पर भी उसमें दूसरों का कल्याण करने की सामार्थ्य नहीं होती। वह द्वन्द्वमय जगत् से हटकर निर्जन स्थान में एकान्तवास करता हुआ विमुक्ति सुख का प्रत्यक्षलाभ किया करता है।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1• "भारतीय दर्शन और मुक्ति मीमांसा",पृ0376

2• भारतीय दर्शन-बलदेव उपाध्याय पृ0 130

भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र पृ0 140

बुद्धघोष कहते है[1] कि पिटक परम्परानुसार बुद्ध दो प्रकार के होते हैं सम्यक् सम्बुद्ध तथा प्रत्येकबुद्ध[2]। "सम्यक्सम्बुद्ध" पद की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि "सम्मा सामञ्च सब्बधम्मानं बुद्धत्ता पन सम्मासम्बुद्धो"। अर्थात् वे सम्यक् सम्बुद्ध इसलिए कहलाते हैं क्योंकि उन्होंने समस्त धर्मों को सम्यक् रूप से जान लिया है[3]। वे भगवान्, अर्हत्, विद्याचरणसम्पन्न, सुगत लोकविदु, अनुत्तर तथा देवता एवं मनुष्यों के शास्ता कहे जाते हैं।[4] वे तीर्ण हैं तथा प्राणिमात्र के तारणार्थ मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। सम्बोधि प्राप्त किये रहते हैं तथा बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय धर्मोपदेश करते हैं।

---

1. "निदानकथा" पृ026

2. इधेकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, तत्थ च सब्बञ्ञुतं पापुणाति, बले सु च वासीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो सम्मासम्बुद्धो। x x x इधकच्चो पुग्गलो पुब्बे अननुस्सुतेसु धम्मेसु सामं सच्चानि अभिसम्बुज्झति, न च तत्थ सब्बञ्ञुतं पापुणाति, न व बलेसु वासीभावं। अयं वुच्चति पुग्गलो पच्चेकबुद्धो। (पुग्गलपञ्ञति)

3. जरामरणं दुक्खसच्चं, जातिसमुदयसत्त्वं, उभिन्नम्पि निस्सरणं निरोधसच्चं, निरोधपजाननापटिपदा मग्गसच्चं ति एवं एकेकपदुद्धारेन सब्बधम्मे सम्मा सामञ्च बुद्धो अनुबुद्धो पटिबुद्धो। (विशुद्धिमग्ग)

4. इति सो भगवा अरहा सम्मासम्बुद्धो विद्याचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सानं। (मज्झिमनिकाय 2/376)

प्रत्येकबुद्ध को आधुनिक विद्वानों ने मौन बुद्ध कहा है। उसका कारण यह है कि ऐसे बुद्ध अनाचर्यक भाव से "प्रत्येकसम्बोधि"प्राप्त किये रहते हैं। पर धर्मोपदेश नहीं करते वे तीर्ण रहते हैं पर जनसमूह के तारणार्थ मार्ग का सम्पादन नहीं करते। वे सदा विमुक्तिसुख में रत हो एकान्तविहार करते हैं। "चुल्लनिद्देश" में प्रत्येक बुद्ध की चर्चा करते हुए नव कारणों से उन्हें एकान्तविहारी कहा है। प्रव्रज्या, अद्वितीय विहार, तृष्णा प्रहाण, एकान्तत: क्लेशरहितता, एकमात्रमार्गगमनता, अनुत्तरप्रत्येकसम्बोधि अधिगमनता की दृष्टि से अकेले होने के कारण वे एकान्तविहारी हैं। दो असंख्येय एक लाख कल्प तक पारमिताओं की परिपूर्ति कर प्रत्येक सम्बोधि प्राप्त करते हैं। पर न तो वे सर्वज्ञ होते हैं, न बलों पर वशिभाव प्राप्त करते हैं। उनकी ईर्यापथ ही विज्ञजनों के लिए देशना है। वे अन्य सम्यक् सम्बुद्धों के काल में भी उत्पन्न होते हैं पर ऐसे प्रसंग नहीं देखने को मिलते जब उनका अन्य बुद्धों के साथ साक्षात्कार हुआ हो।[2]

## सम्यक् सम्बोधि

तीसरी बोधि सम्यक् सम्बोधि कहलाती है। उसे प्राप्त करने वाले को बुद्ध तथा बुद्धत्व के साधक अधिकारी को बोधिसत्त्व कहते हैं। बोधिसत्त्व की कल्पना महायान धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। अर्हत् तथा प्रत्येक बुद्ध का लक्ष्य नितान्त

---

1. एवं सो पच्चेकसम्बुद्धो एको अनुत्तरं पच्चेकसम्बोधिं अभिसम्बोधि ति एको। (चुल्लनिद्देश)

2. "निदान कथा" अनुवादक डॉ० महेश तिवारी, पृ० 70

सीमित रहता है। अपना व्यक्तिगत कल्याणसाधन ही उन दोनों के अनुष्ठान का अन्तिम उद्देश्य होता है। पर बोधिसत्त्व संसार के समस्त प्राणियों के समग्र दुखों का नाश कर उन्हें निर्वाण प्राप्त करा देना चाहता है। बोधिसत्त्व यही चाहता है कि बुद्धप्रदर्शित मार्ग के अनुष्ठान से जिस पुण्यसम्भार का उसने अर्जन किया है उसके द्वारा समस्त प्राणियों के दुःखों को शान्ति हो।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्रावकबोधि का लक्ष्य होता है निर्वाण जबकि बोधिसत्त्व का लक्ष्य है पूर्णबोधि। दो बातें और स्पष्ट होती हैं कि बोधिसत्त्व सब जीवों को मात्र निर्वाण ही नहीं प्राप्त करा देना चाहते अपितु सांसारिक सुख कल्याण की प्राप्ति में भी सहायता करते हैं। दूसरी बात यह है कि चूँकि बोधिसत्त्व सभी जीवों की मुक्ति चाहता है अतः वह स्वयं निर्वाण नहीं प्राप्त करना चाहता क्योंकि निर्मुक्त होने के बाद वह जीवों की किसी भी प्रकार की सेवा से वञ्चित नहीं होना चाहता।[1]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Here we find two remarkable ideas (A) A Bodhisatva helps all beings not only to obtain the spiritual good or Nirvana but also to obtain more material advantages of happiness and welfare in the world(Sukha). The austere unworldness of the old ideas is abandoned in favour of more human aim .(B) A Bodhisattva wishes to help all beings to obtain Nirvana. He must, therefore, refuse to enter Nirvana himself as he can not apparently render any services to the living beings of the world after his own Nirvana.He thus find himself in rather illogical position of pointing the way to Nirvana for other beings while he himself stays in this world of suffering in order to do good to all creatures.

(' The Bodhesattva Doctrine ' Page 17)

हीनयान में सोतापन्न, सकदागामी, अनागामी औरअरहन्त ये चार भूमियाँ मानी जाती हैं किन्तु महायान में दस भूमियाँ हैं। असंग ने अपने "दशभूमिक शास्त्र" में इन भूमियों का विशद वर्णन किया है। इनके नाम हैं-

1• मुदिता- इस भूमि में बोधिसत्व के हृदय में लोगों के कल्याण की विशेष इच्छा उत्पन्न होती है जिससे उसका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। करुणा का उदय इस भूमि की विशेषता है और इसमें दृढ़ होने के लिए साधक अनेक प्रकार से चेष्टा करता है।

2• विमला- साधक के कायिक, वाचिक तथा मानसिक पापों को नाश इस भूमि में होता है। इसमें शील पारमिता का विशेष अभ्यास साधक करता है।

3• प्रभाकरी- यहाँ आकर साधक संसार के संस्कृत धर्मों को तुच्छ समझने लगता है। इस अवस्था में कामवासना तथा तृष्णा क्षीण होने लगती है। ~~इस प्रकार~~ और साधक का स्वभाव निर्मल हो जाता है। यहाँ साधक धर्म पारमिता काविशेष अभ्यास करता है।

4• अर्चिष्मती- इस भूमि में साधक अष्टांगिक मार्ग का अभ्यास करता है। उसके हृदय में दया तथा मैत्री का भाव जाग उठता है और वह वीर्य पारमिता का अभ्यास करता है।

5• सुदुर्जया- इस अवस्था में पहुँचकर साधक का चित्त समता को प्राप्त करता है और वह जगत् से विरक्त हो जाताहै। यहाँ ध्यान पारमिता का अभ्यास साधक विशेष रूप से करता है।

6• अभिमुक्ति- यहाँ आकर साधक सब प्रकार से समता का अनुभव करता है। सब पर असाधारण दयादृष्टि रखता है तथा प्रज्ञापारमिता का विशेष रूप से अभ्यास करता है।

7. दूरंगमा- इस भूमि में पहुँचकर बोधिसत्त्व ज्ञान के मार्ग में अग्रसर होता है और एक तरह से सर्वज्ञ हो जाता है।

8. अचला- यहाँ पहुँचकर साधक समस्त जगत् को तुच्छ समझने लगता है और अपने को सबसे परे समझता है।

9. साधमती-इस अवस्था में साधक लोगों के कल्याणार्थ उपायों को सोचता है और सबकों धर्मोपदेश करता है।

10. धर्ममेघ- इस भूमि में पहुँचकर साधक समाधिनिष्ठ हो जाता है और बुद्धत्व को प्रप्त करता है। महायान सम्प्रदाय के साधकों को यह अन्तिम अवस्था है। यहाँ पहुँचकर वे निर्वाण को प्राप्ति करते हैं।

इन भूमियों मे उत्तरोत्तर ऊँचे स्तर हैं और ये क्रमशः साधकों को निर्वाण पर पर पहुँचाने में सहायक होते हैं। या बुद्धत्व को प्राप्ति कराते हैं। (बुद्ध अपने को तथागत भी कहते थे।)[1]

---

(1) तथागत का अर्थ है वैसे गया या वैसे आया। पहले अर्थ का आशय है कि जैसे इससे पूर्व बुद्ध आये थे वैसे वह भी आये। स्वयं बुद्ध ने एक उपदेश में तथागत के आशय पर प्रकाश डाला है"जिस दिन तथागत को पूर्ण बोध होता है उस दिन से देह के अन्तिम अन्त के दिन तक तथागत जो कुछ कहता है वह निश्चय ही सत्य होता है सत्य के विपरीत नहीं होता। इसलिए वह तथागत कहलाता है।

(डॉ० दीवानचन्द्र-"दर्शन संग्रह",पृ0235)

सारांशत: कहा जा सकता है कि प्राचीन बौद्ध धर्म के मुमुक्षुओं के तीनों आदर्शों में पूर्वापेक्षया परपद श्रेष्ठ है। श्रावक का आदर्श अपेक्षा कृत न्यून होने पर भी पृथग्जन से उत्कृष्ट था। यद्यपि श्रावक तथा पृथग्जन का समान लक्ष्य व्यक्तिगत दु:खनिवृत्ति था तथापि पृथग्जन को उपायज्ञान नहीं था श्रावक उपायज्ञ थे। बोधि या ज्ञान उन्हें स्वत: प्राप्त नहीं होता था, उसकेउदय के लिए बुद्धादि शास्ताओं की देशना अपेक्षित थी। इसलिए इसको औपदेशिक ज्ञान कहते हैं। पृथग्जन त्रिवर्ग की सिद्धि में व्याप्त रहते थे किन्तु श्रावक इससे अतीत थे। श्रावकोंमें किसी का दु:ख निरोध पुद्गलनैरात्म्य के ज्ञान से ,किसी को प्रतीत्य समुत्पाद के ज्ञान से होता था। धर्म नैरात्म्य का ज्ञान किसी श्रावक को नहीं होता था। फिर भी इतना तो सत्य है कि ये लोग अध:पात की आशंका से मुक्त हो जाते थे क्योंकि ज्ञानाग्नि के द्वारा इनके क्लेश या अशुद्ध वासनात्मक आवरण दग्ध हो जाते थे।

प्रत्येकबुद्ध का आदर्श श्रावक से श्रेष्ठ है। यद्यपि इनका साधन जीवन वैयक्तिक स्वार्थ से ही प्रेरित है फिर भी आधार अधिक शुद्ध है। आधारशुद्धि के कारण उनको दु:ख निवृत्ति के उपाय के ज्ञान के लिए दूसरे से उपदेशज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। योगशास्त्र जिसे अनौपदेशिक या प्रातिभ ज्ञान कहता है उससे प्रत्येकबुद्धों का ज्ञान प्राय: समान है। किसी अंश में यह विवेकोत्थ प्रातिभ ज्ञान का ही एक रूप है। प्रत्येकबुद्ध अपने बुद्धत्व के लिए प्रार्थी होते हैं और उसे प्राप्त भी करते हैं किन्तु सर्व के बुद्धत्व के लिए उनकी प्रार्थना नहीं है।

श्रावक तथा प्रत्येक बुद्ध के ज्ञान में भी भिन्नता है। श्रावकों का ज्ञान पुद्गलनैरात्म्य का अवबोधरूप है अत: पुद्गलवादियों के अगोचर है। श्रावकोंको क्लेशावरण नहीं होता इसलिए इनका ज्ञान सूक्ष्म है। प्रत्येक बुद्ध में ज्ञेयावरण का

श्रावकों का ज्ञान परोपदेश हेतुक है अत: षोडशाकार से प्रभावित है इसीलिए वह गम्भीर है। परन्तु प्रत्येक बुद्ध का ज्ञान स्वयं बोधरूप है और तन्मयता से उद्भूत है। अत: पूर्व से अधिक गम्भीर है। एक बात और भी है-प्रत्येक बुद्ध अपने अधिगत ज्ञानादि के सामर्थ्य से दूसरों को कुशलादि में प्रवृत्त करते हैं। उनके साधन को इसलिए अधिक गम्भीर कहा जाता है कि वह उच्चार रहित है अत: दूसरे से उसका प्रतिघात सम्भव नहीं है।

सम्यक् सम्बुद्ध का आदर्श ही श्रेष्ठ आदर्श है। सम्यक् सम्बुद्ध को ही बुद्ध भगवान कहते हैं। यह अनुत्तर सम्यक् सम्बोधिप्राप्त हैं। क्लेशावरण तथा ज्ञेयावरण के निवृत्त होने से ही बुद्धत्वलाभ नहीं होता। यह ठीक है कि श्रावक का द्वैतबोध नहीं छूटता और प्रत्येक बुद्ध का भी द्वैतबोध नहीं छूटता, केवल सम्यक् सम्बुद्ध ही अद्वैत भूमि में प्रतिष्ठित होते हैं। यह भी ठीक है कि ज्ञेयावरण के निवृत्त न होने पर अद्वैतभाव का उदय नहीं होता। पतञ्जलि ने भी कहा है-"ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्" ज्ञान अनन्त होने से ज्ञेय अल्प है। बुद्धावस्था अनन्त ज्ञान की अवस्था है इसीलिए आचार्यों ने इस ज्ञान को "बोधि" न कहकर "महाबोधि" कहा है। इस अनन्त ज्ञान के साथ अनन्त करुणा भी रहती है।सत्त्वार्थक्रिया या परार्थोपादन का भाव-यही बुद्धों का बीज है।

श्रावकों का यह विश्वास अवश्य है कि उनके सम्प्रदाय में ही बोधिलाभ करने से निर्वाण प्राप्त हो जाता है। किन्तु वस्तुत: यह निर्वाण नहीं त्रिलोक से निर्गमन मात्र है। यह तथ्य भी अवधेय है कि शुद्धबोधि से महाबोधि का लाभ नहीं होता, उसके लिए भगवत्ता से योग होना आवश्यक है। पारमितासम्भार के पूर्ण न होने तक भगवत्ता का उदय नहीं होता। बोधिसत्त्व चरम जन्म में पारमिता पूर्ण करके भगवान् हो जाते हैं किन्तु बुद्ध नहीं होते। कोई भगवत्ता के साथ बुद्ध

भी होते हैं वही भगवान् बुद्ध है। बोधि और भगवत्ता की दो भिन्न-भिन्न धारायें हैं। बोधि की धारा में बुद्धत्व है किन्तु सम्बुद्धत्व नहीं क्योंकि दूसरे के प्रति करुणा नहीं है। इसलिए महाबोधि भी नहीं है। महाबोधि का लाभ तब तक नहीं होता जब तक निखिल विश्व को अपना समझकर करुणाविगलित भाव से उसकी सेवा न की जाय। सेवाकर्म चर्या है, बोधिभाव प्रज्ञा है। एक आश्रय में दोनों के युगपत् अवस्थान से बुद्धत्व और भगवत्ता का अभेद से प्रकाश होता है। यही मानव जीवन का चरम आदर्श है, यही बुद्ध की भगवत्ता है। भारतीय संस्कृति का यही रहस्य है। श्रीमद्-भागवत में इसी को ब्रह्मत्व एवं भगवत्ता कहा है-

वदन्ति यत्तत्त्वविदस्तत्त्वं तज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।

अर्थात् एक अद्वय ज्ञानात्मक तत्त्व को ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् कहा जाता है। एक तत्त्व को ही ज्ञान दृष्टि से ब्रह्म, योगदृष्टि से परमात्मा, भक्ति दृष्टि से भगवान् कहते हैं। योग कर्मात्मक है-"योग: कर्मसु कौशलम्" अत: ज्ञान, कर्म तथा भक्ति इन तीनों का एक में महासमन्वय है। ब्रह्म निर्गुण, निराकार, नि:शक्ति है। परमात्मा सगुण, सशक्ति एवं ज्ञानाकार है। भगवान् सगुण, सशक्ति और साकार है। तीनों का यह लक्षणभेद है किन्तु तीनों एक ही तत्त्व हैं। भागवत का अद्वयज्ञानवर्णन वज्रयान सम्प्रदाय के "अद्वयवज्रसिद्धि" नामक ग्रन्थ में भी है-

यस्य स्वभावो नोत्पत्तिर्विनाशो नैव दृश्यते ।
तज्ज्ञानमद्वयं नाम सर्वसङ्कल्पवर्जितम् ।।

भागवत में भक्ति का जो स्थान है, बौद्धागम में करुणा का वही स्थान है। प्रज्ञापारमिता तथा करुणा से सामरस्य का तात्पर्य यह है कि प्रज्ञा के प्रभाव से सास्रव धातुओं का अतिक्रम होता है तथा करुणा के प्रभाव से इनका निर्वाण

प्रज्ञया न भवे स्थानं कृपया न शमे स्थितिः।

अर्थात् प्रज्ञा से संसार का दर्शन नहीं होता और कृपा से निर्वाण नहीं होता। सत्त्वार्थकरूप पारतन्त्र्य के प्रभाव से बोधिसत्त्वगण भव या शम किसी में अवस्थान नहीं करते।

## बुद्धकारक पारमिताएँ

बुद्धकारक धर्मों को परमी या पारमिता कहा गयाहै। इस शीर्ष के अन्तर्गत ऐसे दस धर्मों का कथन है जिनकी सम्यक् परिपूर्ति के फलस्वरूप बुद्धत्व की प्राप्ति इष्ट है। बौद्धपरम्परा से स्पष्ट है कि अतीत सभी बोधिसत्त्वों ने इन धर्मों का पूर्णतः परिपालन किया था। उनकी ऐसी चर्या को लक्ष्य कर ही ये "पौराणिक बोधिसत्त्व द्वारा आसेवित निसेवित" कहे गये हैं।

पारमिता का अर्थ है पार चला जाना अथवा पराकाष्ठा को प्राप्त करना। ये पारमिताएँ उस अवस्था विशेष का द्योतन करती है जहाँ एक-एक धर्म का परिपालन पराकाष्ठा को प्राप्त रहता है। बोधिसत्त्व की चर्याओं से अभिदर्शित है कि इन्होंने शील आदि धर्मों को कोटिनिष्ठ परिपूर्ति की थी। फलतः ये परमी या पारमिता के नाम से अभिहित हुए। इन्हें धर्म विशेष की परिपूर्ति का परमभाव भी कहा जा सकता है।[1]

बौद्ध परम्पराओं में पारमिताओं का बहुत महत्त्व है। बुद्ध के प्रादुर्भाव से बौद्धशासन का अस्तित्व है तथा इन दोनों के मूलस्वरूप पारमिताएँ हैं। इनके सम्यक् परिपालन विना बुद्ध का ~~मूलस्वरूप~~ प्रादुर्भाव असम्भव है। सुमेधकथा

---

1. Parami (abstract from Parama)- completeness,perfection, highest state etc.

(Pali English Dictionary- Rhys Davids P. 77).

से स्पष्ट है कि सुमेध ने सम्यक् सम्बोधि के आगे अर्हत् के आदर्श निर्वाण को तुच्छ समझा और बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए दस पारमिताओं का ग्रहण किया। पालिजातक कथाओं से विदित है कि शाक्य मुनि 550 विविध जन्म लेकर पारमिताओं द्वारा सम्यक् सम्बुद्ध की लोकोत्तर सम्पत्ति प्राप्त की। जैन धर्म में भी तीर्थंकरत्व की प्राप्ति के लिए 20 धर्मों का पालन अपेक्षित बताया गया है।

पारमिता परिपूरण परम्परा के उद्भव तथा विकास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि इनकी कल्पना अपेक्षाकृत नवीन है। पिटककाल में ये अज्ञात सी प्रतीत होती हैं क्योंकि समस्त विनयपिटक, अभिधर्मपिटक तथा सुत्तपिटक के प्रथम चार निकायों में पारमिताओं का उल्लेख अनुपलब्ध है। प्रथमत: इनका उल्लेख खुद्दक निकाय के बुद्धवंश में प्रश्नोत्तर रूप में हुआ है-

दानं शीलं च नेक्खम्मं पञ्ञाविरियं च कीदिसं ।
खन्तिसच्चमधिट्ठानं मेत्तुपेक्खा च कीदिसा ।।
दस पारमी तथा धीर कीदिसी लोकनायक ।
कथं उपपारमी पुण्णा परमत्थपारमी कथम् ।।

इसी प्रश्न के विसर्जन स्वरूप भगवान् ने अतीत के बुद्धों तथा अपनी पूर्वकथा कही तथा उसी क्रम में पारमिताओं का आख्यान किया। सुमेधकथा के प्रसंग में इनका बुद्धकारक धर्म के रूप में दूसरी बार कथन है[1] जो प्राय: उसी रूप में जातकट्ठकथा में वर्णित है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त बुद्धकारक धर्म के रूप में पारमिताओं का कथन अन्यत्र नहीं है। यद्यपि "परमी" शब्द अन्य अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।[2]

---

1. निदानकथा, पृ0 48-62
2. मज्झिमनिकाय, 3/92

पारमिताओं का बुद्धकारक धर्म के रूप में सुव्यवस्थित ढंग से कथन बाद में हुआ पर ये धर्म पिटक में अज्ञात नहीं हैं। इनका समावेश अष्टांगिक मार्ग में सुगमतया देखा जा सकता है जो तथागत को आदिदेशना का प्रतिपाद्य विषय है तथा पिटक में सर्वत्र चर्चित है। इनका यह रूप इस प्रकार दर्शनीय है–

| त्रिविध शिक्षा | मार्गाङ्ग | पारमिता |
| --- | --- | --- |
| शील | सम्यक् वचन | सत्यपारमिता |
| | सम्यक् कर्म | दानपारमिता |
| | सम्यक् आजीविका | शील पारमिता |
| | | क्षान्ति पारमिता |
| समाधि | सम्यक् व्यायाम | वीर्य पारमिता |
| | सम्यक् स्मृति | मैत्री पारमिता |
| | सम्यक् समाधि | उपेक्षा पारमिता |
| | | अधिष्ठान पारमिता |
| प्रज्ञा | सम्यक् दृष्टि | प्रज्ञा पारमिता |
| | सम्यक् संकल्प | नैष्क्रम्य पारमिता |

आधुनिक विद्वानों के अनुसार पारमिताओं की कल्पना उत्तरकालीन है।[1] निदानकथा में आये हुए बोधिसत्त्व के ऐसे वचन कि "अज्ञात वेष से सभी चित्तमलों को नष्टकर निर्वाण प्राप्त करना मेरा ध्येय नहीं है। मेरे लिए उचित यह है कि दीपंकर बुद्ध के समान परम सम्बोधि की प्राप्ति कर धर्म नौका बन जनसमूह को संसारसागर से पार उतारने के बाद स्वयं निर्वाण प्राप्त करूँ" महायान की ओर झुके दीख पड़ते हैं। पारमिताएँ भी ऐसे विचार के परिपोषक हैं।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

हीनयान तथा महायान के संस्कृत ग्रन्थों में प्राय: छ: पारमिताओं का उल्लेख है। असंग ने दान पारमिता से दारिद्र्य निवारण, शील पारमिता से विषयनिमित्तक क्लेश अग्नि का निर्वापन, क्षान्ति पारमिता से क्रोध का अपचयन, वीर्य पारमिता से कुशल धर्मों का संचयन, ध्यान पारमिता से चित्त का सन्धारण तथा प्रज्ञा पारमिता से परमार्थ का प्रजानन बताया।[1] "दशभूमिकसूत्र" में सर्वप्रथम दश पारमिताओं का नाम आया। वहाँ इन छ: के साथ उपायकौशल्य, प्रणिधान, बल तथा ज्ञान का योग है। इस प्रकार पारमिताओं की तीन सूची उपलब्ध होती हैं-स्थविरवाद सम्मत दश, महायान सम्मत छ: तथा दशभूमिकसूत्रगत दश। इनमें तुलनात्मक दृष्टि डालने पर लगता है कि दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, धर्म तथा प्रज्ञा तीनों में समान हैं तथा अपने प्राचीनतम रूप का परिचय देती हैं। स्थविरवादी परम्परा में नैष्क्रम्य, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा नामक पाँच का योग कर ध्यान को उससे पृथक् कर दिया। इनके स्वभाव पर विचार करने से देखा जा सकता है कि इन दश पारमिताओं का अन्तर्भाव छ: के अन्तर्गत हो सकता है। शील के अन्तर्गत सत्य तथा नैष्क्रम्य एवं ध्यान में मैत्री व उपेक्षा स्वभावत: समाविष्ट हैं। पुन: "दशभूमिकसूत्र" में जिन चार को जोड़ा गया है वे भी छ: के अन्तर्गत देखी जा सकती हैं। यथा ज्ञान का प्रज्ञा के भीतर तथा उपायकौशल्य, प्रणिधान और बल का वीर्य में अन्तर्भाव सम्भव है। अत: पूर्वकथित छ: का ही सुव्यवस्थित व प्राचीनतम रूप सिद्ध होता है। आर्य असंग ने भी "महायानसूत्रालंकार" में छ: पारमिताओं का अधिशील, अधिचित्त, अधिप्रज्ञा, तथा सर्वसहायक नामक वर्गों में विभाजन किया है। उक्त विभाजन तथा दश पारमिताओं को छ: मे अन्तर्भाव निम्न तालिका से स्पष्ट हो सकता है-

---

1. महायान सूत्रालंकार, 16-13

ऐसे कार्यों का सम्बन्ध चूँकि दानादि सभी के साथ देखा जा सकता है अतः उपपारमिताभी दश होती हैं। परमार्थपारमिता को अभिहित जीवनपरित्यागपुरस्सरकोटिनिष्ठ कार्यों से है। जब बोधिसत्त्व ने दानादि के परिपालन में जीवनादि त्याग द्वारा परमोत्कर्षता दर्शायी है तो उन परमभावोपगत गुणविशेष को परमार्थपारमिता कहा जाता है।

जातकों में परमार्थ पारमिता का विशिष्ट स्थान है।[1] जातक कथाओं से प्रकट है कि बोधिसत्त्व की चर्याओं में परमार्थपारमिता का बाहुल्य है। यथा शश जातक में अभ्यागत ब्राह्मण के लिए बोधिसत्त्व द्वारा शरीरत्याग के कार्य को परमार्थ पारमिता कहा गया है-

भिक्खाय उपगतंदिस्वा सकेत्तानं परिच्चजिं।
दानेन मे समो नत्थि एसा मे दानपारमीति ॥
अत्तपरिच्चागं करोन्तस्स दानपारमिता परमत्थपारमिता नाम जाता[2]।

## दान पारमिता

सर्ववस्तुओं का जीवों के लिए दान और दानफल का भी परित्याग दानपारमिता है। आत्मभाव का त्याग ही निर्वाण है। बोधिसत्त्व का किसी में ममत्व नहीं होता, वह देने में मात्सर्य नहीं करता। जिसको जिस वस्तु की आवश्यकता हो वह विना शोक के, विना फलाकांक्षा और प्रतिसार के देदे-अशोचन्न-

---

1. "अंगपरिच्चागो पारमियोनाम बाहिरभण्डपरिच्चागो उपपारमियो नाम जीवितपरिच्चागो परमत्थपारमियो नामाति।" (निदानकथा, पृ062)
2. निदान कथा, पृ0 112

समधिगतमिदं मयातिथेयं हृदयं विमुन्च यतो विषाददैन्यम्। समुपनतम- नेन सत्करिष्याम्यहमतिथिप्रणयं शरीरकेण ॥ (जातकमाला, 6/17)

विप्रतिसारी अविपाकप्रतिकांक्षी परित्यक्ष्यामि।[1]

दानं हि बोधिसत्त्वस्य बोधिरिति।[2]

त्रिपिटक में कुशल और अकुशल कर्मों का प्रचुर विवेचन है। कुशलकर्मों के उद्देश्य क्रम में सर्वत्र दान का नाम आता है। बौद्ध परम्परा में कर्म वस्तुत: चेतना का नाम है। फलत: दान को परित्यागचेतना कहा जा सकता है।[3] उसे कायद्वार से उत्पन्न होने पर कुशल कायकर्म, वचीद्वार से उत्पन्न होने पर कुशलवचीकर्म, मनोद्वा से उत्पन्न होने पर कुशल मनोकर्म कहा जा सकता है।[4] मनोकर्म में काय का तथा वची कर्म में मन का योग आवश्यक है। प्रवृत्ति द्वार के कारण उसका वैसा नाम पड़ता है।

इस पारमिता की पूर्ति के समय बोधिसत्त्व की अवस्था उल्टे घट के समान होती है जो पुन: न पाने की आशा से भी सब जल का त्याग कर देता है। बोधिसत्त्व द्वारा दानकृत्यों का परिचय कई जातकों-जैसे श्रेष्ठि, शिबि, वेस्सन्तर जातक में मिलता है। उसका परम उदात्त रूप शश जातक में है जिसमें बोधिसत्त्व ने देय वस्तु के प्राप्य न होने पर स्वशरीर ही दे दिया।[6]

यदास्ति यस्येप्सितसाधनं धनं स तन्नियुङ्क्तेऽर्थिसमागमोत्सवे ।
न चास्ति देहादधिकं च मे धनं प्रतीच्छ सर्वस्वमिदं यतो मम ।।[7]

---

1. शिक्षासमुच्चय (बिब्लियोथिका बुद्धिका में प्रकाशित) पृ0 2।
2. शिक्षासमुच्चय ( " " " ) पृ034
3. "दीयति अनेन दानं परिच्चागचेतना"।
4. कामावचर-कुसलसम्पि कायद्वारे पवत्तं कायकम्मं वचीद्वारे पवत्तं वचीकम्मं मनोद्वारे पवत्तं मनोकम्मं चेति कम्मद्वारवसेन तिविधं होति। (अभिधम्मत्थसंगह)
5. यथापि कुम्भो सम्पुण्णो यस्स कस्सचि अधो कतो, वमते उदकं निस्सेसं न तत्थ परिरक्खति।। तथेव याचके दिस्वा हीनमुक्कट्ठमज्झिमे, ददाहि दानं निस्सेसं कुम्भो विय अधो कतो।। निदानकथा, पृ050
6. " न ससस्स तिला .......... भुत्वा वने वसा"ति।-ससजातक,

# शील पारमिता

शील का अर्थ है प्राणातिपात आदि सब गर्हित कर्मों से चित्त की विरति। शम के ही प्रभाव से चित्त समाहित होता है और समाहित-होने से यथाभूत दर्शन होता है। यथाभूत दर्शन से ही सत्त्वों के प्रति महाकरुणा पैदा होती है। इस प्रकार बोधिसत्त्व शील, चित्त और प्रज्ञा को पूर्ण शिक्षा पाकर सम्यक्सम्बोधि प्राप्त करता है।

चित्तपूर्वङ्गमाश्चा सर्वधर्माः। चित्ते परिज्ञाते सर्वधर्माः परिज्ञाता भवन्ति।[1] आर्यधर्मसङ्गीतिसूत्र में कहा है-"तदुच्यते। चित्ताधीनो धर्मो धर्माधीना बोधिरिति।[2] "आर्यगण्डव्यूहसूत्र" में भी कहा है"स्वचित्ताधिष्ठानं सर्वबोधिसत्त्वचर्या स्वचित्ताधिष्ठानं सर्वसत्त्वपरिपाकविनयः।[3]

शील बौद्ध साधना का आधार है। शील की ही भित्ति पर स्थित हो ब्रह्मचर्य का परिपालन होता है। शील के अभ्यास विना कुलपुत्रों की साधना में प्रतिष्ठा नहीं होती। शील की प्रज्ञप्ति पञ्चशील, अट्ठशील, दशशील, इन्द्रियसंवरशील, आजीव-परिशुद्धिशील, पातिमोक्खसंवरशील आदि अनेक प्रकार से की गई है। शील-परिपालन के सम्बन्ध में भगवान का ~~अनेक प्रकार से~~ आदेश है कि यथा टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी गाय अपने पूँछ की, माता इकलौते पुत्र को तथा काना पुरुष अपने

---

1. शिक्षा समुच्चय, पृ0 121
2. शिक्षा समुच्चय पृ0 122
3. शिक्षा समुच्चय पृ0 122

एकमात्र आँख की रक्षा करता है तथैव शील की रक्षा करते हुए उसके प्रति प्रेम और सदा गौरव करने वाले बनें।[1] शीलवनागराज, चम्पकनागराज, भूरिदत्तनागराज, छन्दनागराज, तथा जयदिस्स राजा के पुत्र अलिनकुमार की कथा इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैं। शंखपाल जातक की घटनाएं शील का परमोत्कर्ष प्रतिपादित करती हैं जिसके कारण यह परमार्थपारमिता के नाम से जानी जाती है। चरियापिटक का यह वचन इस उदात्त भावना का परिचायक है

सूलेहि विज्झयन्तेऽपि कोट्टयन्तेऽपि सत्तिहि ।
भोजपुत्ते न कुप्पामि एसा मे शीलपारमी ॥[2]

## नैष्क्रम्य पारमिता

"नेक्खम्म" शब्द "नैष्क्रम्य" तथा "निष्काम्य" दोनों अर्थों का द्योतक है। बुद्ध के अनुसार जीवन नाना बाधाओं से युक्त रजोपथ है अतः स्मृतिवान् होकर संसार के प्रति समस्त आसक्तियों का त्याग करना चाहिए-"तस्मा जन्तु सदा सतो कामानि परिवज्जये"। लेकिन प्रश्न उठता है कि निष्काम हो नैष्क्रम्याभिमुख कैसे हुआ जाय ? इसके उत्तर में बोधिसत्त्व कहते हैं कि जैसे बन्धनागार में रहता मनुष्य सदा इससे स्नेहरहित व असन्तुष्ट रहता है तथैव सभी भवों को मानकर सभी योनियों से मुक्ति के लिए सोत्कण्ठा नैष्क्रम्याभिमुख होना चाहिए-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. किकीव अण्डं चमरो व वालधिं पियं व पुत्तं नयनं व एककं ।
तथेव शीलं अनुरक्खमानका सुपेसला होथ सदा सगारवाति ॥
(विसुद्धिमग्ग)

यथापि चमरी वालं किस्मिंचि पटिलग्गतं ।
उपेति मरणं तत्थ न विकोपेति वालधिं ॥ निदानकथा, पृ0 50

यथा अन्दुघरे पुरिसो चिरवुत्थो दुखोद्दितो,
न तत्थं रागं जनेति मुत्ति एव गवेसति ।
तथेव त्वं सब्बभवे पस्स अन्दुधरे विय
नेक्खम्माभिमुखो होहि भवतो परिमुत्तिया।।[1]

सोमनस्सकुमार, हत्थिपालकुमार, अयोघरपण्डित के समय बोधिसत्त्व ने इस पारमिता का पूर्ण परिपालन किया। चूलसुतसोमजातक से स्पष्ट है कि बोधिसत्त्व ने राज्य के प्रति तनिक भी आसक्ति न दिखाई। फलत: उनका यह नैष्क्रम्य परमभाव प्राप्त कृत्य परमार्थपारमिता कही जायेगी-

"महारज्जं हत्थगतं खिलपिण्डं छड्डयि ।
चजतो न होति लग्गं एसा मे नेक्खम्मपारमी"ति।।

जातकमाला में अगस्त्य, बिस, अयोगृह जातकों में इस पारमी पूर्ति को देखा जा सकता है। यथा- "इत्यनुनीय स महात्मा पितरं कृताभ्यनुज्ञ: पित्रा तृणवदपास्य राज्यलक्ष्मीं तपोवनाश्रयं चकार। तत्र च ध्यानान्यप्रमाणानि चोत्पाद्य तेषु च प्रतिष्ठाप्य लोकं ब्रह्मलोकं अधिरुरोह।[2]

## वीर्य पारमिता

कुशल कर्म में उत्साह का होना वीर्य है। सांसारिक दु:ख का तीव्र अनुभव न होने से कुशल कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती। इस निर्व्यापारिता से आलस्य होता है। समस्त सत्कर्मों के लिए पाँच गुण अपेक्षित हैं-श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि,

---

1. निदानकथा, पृ0 52
2. अयोगृहजातक (जातकमाला) अन्तिम परिच्छेद ।

प्रज्ञा। इनमें श्रद्धा द्वारा विश्वास वीर्य द्वारा उत्साह, समाधि द्वारा एकाग्रता तथा प्रज्ञा द्वारा ज्ञान को वृद्धि होती है। स्मृति व्यंजन में लवण की भाँति सब में विद्यमान होती है। इनमें वीर्य का विशिष्ट स्थान है। उसके कारण ही प्रवृत्ति होती है। कहा भी गया है-"यथा सिंह सभी दशाओं में उत्साह सम्पन्न रहता है तथैव वीर्य पारमिता में लगे हुए प्राणी को सभी योनियों तथा अवस्थाओं में दृढ़ उत्साह, उद्योग तथा वीर्य सम्पन्न होना चाहिए-

यथापि सीहो मिगराजा निसज्जट्ठानचंकमे ।
अलीनविरियो होति पग्गहीनमनो सदा ।।
तथेव त्वम्पि सब्बभवे पग्गण्ह विरियं दव्ळहं ।
विरियपारमितं गन्त्वा सम्बोधिं पापुण्णस्ससी।।[1]

महाजनक जातक में उपलब्ध विविरण इस कार्य को चरमभाव प्राप्त अवस्था के द्योतक हैं।

## क्षान्ति पारमिता

शान्तिदेव एक कारिका में कहते हैं-

क्षमते श्रुतमेषेत संश्रयेत वनं ततः ।
समाधानाय युज्येत भावयेदशुभादिकम्।।

शिक्षासमुच्चय में इसके प्रत्येक पद की व्याख्या की गई है-मनुष्य में क्षान्ति होनी चाहिए। जो अक्षम है वह श्रुतादि में खेद सहन करने की शक्ति न

---

1. निदान कथा, पृ0 54

रखने के कारण अपना वीर्य नष्ट कराता है। अखिन्न होकर श्रुत की इच्छा करनी चाहिए क्योंकि बिना ज्ञान के समाधि का उपाय नहीं जाना जाता और क्लेशशोध का उपाय भी अधिगत नहीं होता। ज्ञानी के लिए भी संकीर्णचारी होने से समाधान दुष्कर है, इसलिए वन का आश्रय ले। वन में भी बिना चित्त समाधान के विक्षेप का प्रशमन नहीं होता इसलिए समाधि करे। समाहितचित्त होने पर भी बिना क्लेशशोधन के कोई फल नहीं होता इसलिए अशुभ आदि की भावना करे। क्षान्ति त्रिविध मानी गयी है- दु:खाधिवासनाक्षान्ति, परापकारमर्षण क्षान्ति, धर्मनिध्यान क्षान्ति। दु:खाधिवासनाक्षान्ति वह है जिसमें अत्यन्त अनिष्ट का आगम होने पर भी दौर्मनस्य न हो। दूसरे के किये हुए अपकार को सहना और उसका प्रत्यपकार न करना परपकारमर्षण क्षान्ति है। कटुता आकाश का स्वभाव नहीं है धूम का है अत: धूम से क्रोध करें न कि आकाश से। दण्ड के प्रेरक से द्वेष करना युक्त होगा तो यह अधिक समुचित होगा कि दण्डप्रेरक के प्रेरक से द्वेष करें-

मुख्यं दण्डादिकं हित्वा प्रेरके यदि कुप्यते ।
द्वेषेण प्रेरत: सोऽपि द्वेषोऽस्तु मे वर ।।[1]

लाभ के अभाव में आज ही मर जाना अच्छा है पर परापकार द्वारा लाभ सत्कार पाकर, चिरकाल तक मिथ्याजीवन व्यतीत करना बुरा है। लाभ नि नश्वर होने से नष्ट हो जायेगा किन्तु पाप सदा स्थिर रहेगा-

"नंक्ष्यतीहैव मे लाभ: पापं तु स्थास्यति ध्रुवम्"।[2]

इसमें संशय नहीं कि बुद्ध और बोधिसत्त्वों ने समस्त जगत् अपनाया है यह निश्चित है कि बुद्ध सत्त्व के रूप में दिखाई पड़ते हैं। हमने सब सत्त्वों को दु:ख देकर बुद्धों को दु:खित किया है, इसलिए उनसे क्षमा माँगनी चाहिए । वे

---

1. बोधिचर्यावतार, 6/41

नाथ हैं हम उनका अनादर कैसे कर सकते हैं-

आत्मीकृतं सर्वमिदं जगत्तैः कृपात्मभिर्नैव हि संशयोऽस्ति ।

दृश्यन्त एते ननु सत्त्वरूपास्त एव नाथाः किमनादरोऽत्र ।।[1]

तथागत इसी से प्रसन्न होते हैं, स्वार्थसिद्धि भी इसी से होती है, लोक का दुःख भी इसी से नष्ट होता है, इसलिए यही मेरा व्रत हो -

तथागताराधनमेतदेव स्वार्थस्य संसाधनमेतदेव ।

लोकस्य दुःखापहमेतदेव तस्मान्ममास्तु व्रतमेतदेव।।[2]

इस पारमिता का विशद रूप क्षान्तिजातक में द्रष्टव्य है। परशु द्वारा काटे जाने पर भी इस निर्मम कृत्य के सम्पादक के प्रति बोधिसत्त्व का तनिक भी क्रोध नहीं देखा गया। इस परम भाव को प्राप्ति के कारण यह परमार्थ पारमिता है-

गात्रच्छेदेऽप्यक्षतक्षान्तिधीरं चित्तं तस्य प्रेक्षमाणस्य साधोः ।

नासीद् दुःखं प्रीतियोगान्नृपं तु भ्रष्टं धर्माद्वीक्ष्य सन्तापमाप।।[3]

" अचेतनं वा कोट्टेन्ते तिण्हेन फरसुना मम ।

कासिराजे न कुप्पामि एसा मे खान्तिपारमी ति ।।[4]

---

1. बोधिचर्यावतार 6/126
2. बोधिचर्यावतार 6/127
3. जातकमाला, 28/56
4. निदानकथा, पृ0 114

## सत्य पारमिता

किसी भी घटना को यथा घटित अवस्था में वर्णित करना ही सत्य कथन है। अयथार्थ को यथार्थ रूप में, अतथ को तथ रूप में व्यक्त करने से विरति ही इसका अभिप्राय है। संसार की समस्त बाधाओं को अतिवर्तन करने के लिए जिन चार धर्मों का कथन है उनमें सत्य प्रधान है। एक सत्य कथन के सम्यक् परिपालन में जो परम भाव दर्शाया जाता है वह सत्य पारमिता है। सत्य परिपालन में वैसे ही अडिग रहना चाहिए जैसे औषधितारा (शुक्र) किसी भी ऋतु में अपने पथ को नहीं त्यागता। सुतसोम जातक से स्पष्ट है कि बोधिसत्त्व को प्राणोत्सर्ग सुकर था पर सत्यकथन-परित्याग असम्भव था-

स्थाने खल्वस्य विख्यातं सत्यवादितया यशः ।
इति प्राणान् स्वराज्यं च सत्यार्थं योऽयमत्यजत्।।[1]

## अधिष्ठान पारमिता

अधिष्ठान का अर्थ दृढ़ निश्चय है। जिस प्रकार पर्वत् हवा से चारों ओर से झकझोरे जाने पर भी न प्रकम्पित होता है न चलायमान, तथैव लक्ष्य विनिश्चय के प्रति अडिग तथा अचर रह अभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति की जा सकती है। बोधिसत्त्व का ऐसा अधिष्ठान बोधिमण्डाभिरोहण के क्षण में द्रष्टव्य है जब वे कहते हैं कि भले ही मेरा चमड़ा, नसें, हड्डियाँ सूख जाँय, माँस, रक्त भी सूख जाय, पर सम्यक् सम्बोधि को प्राप्त बिना इस आसन को न छोड़ूँगा। इस प्रकार के दृढ़ निश्चय के साथ वह सौ वज्रों के पात से भी न टूटने वाले आसन में बैठ गये।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

## मैत्री पारमिता

मैत्री अद्वेषचित्त का नाम है इसे परहितचिन्ता भी कहा जा सकता है। अनुदया, हितैसिता, अनुकम्पा, अव्यापाद आदि इसके पर्याय हैं। मैत्री भावना के सम्बन्ध में हित, अहित दोनों के प्रति एकचित्तता का भाव लाना प्रथम चरण बताया गया है"

"हितेसु अहितेसु पि एकचित्तो भवेय्यासि"। मैत्री मातृहृदय का वह समान गुण है जिसके कारण वह अपने सभी पुत्रों के प्रति स्वभावत: मंगलकामना करती है फलत: इसे हितभावनासमुत्थापित प्रेमविस्फार कहा जा सकता है। हमें इस उदात्त विचार का संवर्द्धन करना चाहिए कि "सुखिनो व खेमिनो होन्तु सब्बे सत्ता भवन्तु सुखतत्ता" मेत्तसुत्त में भगवान् ने कहा है कि " संसार के समस्त प्राणी जंगम, स्थावर, दीर्घ, महान्-सुखपूर्वक विहार करें। कोई किसी को वञ्चना या अपमान न करे। जैसे माता इकलौते पुत्र की रक्षा करती है तथैव मनुष्य समस्त प्राणियों के प्रति प्रेमबद्ध हो। ऐसे असीम प्रेम की भावना बाधा, हिंसा, शत्रुता रहित संसार के ऊपर नीचे, तिरछे जहाँ कहीं भी रह रहे प्राणियों के प्रति हो।"

मैत्रीभावना का ऐसा प्रामाण्यरूप ही ब्रह्मविहार कहा गया है तथा इसी की चरमोपलब्धि ही मैत्री पारमिता है। कुरङ्गमिगजातक, एकराजजातक आदि में इस भावना का परिचय मिलता है। बोधिसत्त्व की यह वाणी किस प्रकार अभय विहार का द्योतन करती है-"न मुझसे कोई डरता है न मैं किसी से डरता हूँ। मैत्रीबल में आश्रित हो सदा वन में विचरण करता हूँ।"

न मे कोचि उत्तसति नापिहं भायामि कस्सचि ।

मेत्ताबलेनुपत्थद्धो रमामि पवने सदा ।।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

## उपेक्षा पारमिता

अदु:ख,असुख भाव को उपेक्षा कहते हैं। अभिधर्म दर्शन के अनुसार सुख, दुख,सौमनस्य, दौर्मनस्य तथा उपेक्षा नामक पाँच वेदनाएँ होती हैं। कायिक आनन्द को सुख,कायिक पीड़ा को दु:ख,मानसिक सुख को सौमनस्य तथा मानसिक दु:ख को दौर्मनस्य एवं मानसिक न सुख न दु:ख भाव को उपेक्षा कहते हैं-"मज्झत्त-भावूपगमेन च उपक्खतीति उपेक्खा" इस प्रकार उपेक्षा एक वेदना का नाम है। बुद्धघोष कहते हैं-"उपपत्तितो इक्खतीति उपेक्खा। अपक्खपतिता हुत्वा पस्सतीति अत्थो"। तथा "सा हि सुखदुक्खाकारपवत्तिं उपेक्खति मज्झत्ताकार सण्ठिता तेनाकारेन न ववन्ततो उपेक्खा"। इस प्रकार स्पष्ट है कि सुख दुख के प्रति मध्यस्थ भाव ही उपेक्षा है। इसकी भावना पूर्ववत् करनी चाहिए। बुद्ध के इन वचनों से कि "मैं श्मसान में शवों तथा हड्डियों को नीचे रखकर सोता हूँ। गोपमण्डली मेरे निकट आ अनेक रूप दर्शाकर व्यंग्य करती है। उनके द्वारा थूक फेंककर पीड़ा देने तथा माला गन्धादि के उपहारादि से सुख पहुँचाने से भी मैंने कभी समभाव का उल्लंघन नहीं किया।" उपेक्षा का ऐसा कोटिनिष्ठ उदाहरण होने से यह उपेक्षा पारमिता है।

## प्रज्ञा पारमिता

प्रज्ञा पारमिता यथार्थ ज्ञान को कहते हैं इसका दूसरा नाम भूततथता है। प्रज्ञा विना पुनर्भव का अन्त नहीं होता। प्रज्ञा द्वारा परिशोधित होने पर ही दानादि पूर्णता को प्राप्त करते हैं, और पारमिता का व्यपदेश प्राप्त करते हैं। प्रज्ञाविना अन्य पारमिताएँ लौकिक कहलाती हैं। उदाहरणार्थ जब तक दाता भिक्षु दान और अपने अस्तित्व में विश्वास रखता है तब तक उसकी दान पारमिता लौकिक कहलाती है। प्रज्ञा से समन्वित होकर ही पारमिताएँ सचक्षुष्क होती हैं और

लोकोत्तर संज्ञा प्राप्त करती है। प्रज्ञा का प्राधान्य होने पर भी अन्य पारमिता का ग्रहण अत्यावश्यक है। सम्बोधि की प्राप्ति में दान पहला कारण है, शील दूसरा कारण है। दान-शील की अनुपालना क्षान्ति द्वारा होती है। दानादि त्रितय पुण्यसम्भार वीर्य अर्थात् कुशलोत्साह के बिना सम्भव नहीं होता और बिना ध्यान अर्थात् चित्तैकाग्र्य के प्रज्ञा का प्रादुर्भाव नहीं होता क्योंकि समाहित चित्त होने पर ही यथाभूत परिज्ञान होता है।

सर्वधर्म के अनुपलम्भ को ही प्रज्ञापारमिता कहते हैं। "अष्टसाहस्रिका-प्रज्ञापारमिता" में कहा गया है- "योऽनुपलम्भः सर्वधर्माणां सा प्रज्ञापारमितेत्युच्यते"। शून्यता में जो प्रतिष्ठित है वही स्थिति प्रज्ञापारमिता की है। जब यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि भावों की उत्पत्ति न स्वतः होती है न परतः। न उभयतः होती है और न हेतुतः। तभी प्रज्ञा पारमिता का उदय होता है। तब इस परमार्थ सत्य की प्रतीति होती है कि दृश्यमान जगत् स्वप्नवत् अलीक, मिथ्या है। यह सांवृत्तिक सत्य है पारमार्थिक नहीं। व्यवहारदशा में ही प्रतीत्य समुत्पाद की सत्यता है, परमार्थ दशा में सर्वधर्म शून्य हैं। उस समय उत्पन्न बोधिचित्त निस्स्वभाव, निरालम्ब, सर्वशून्य, निरालय तथा प्रपञ्चसमतिक्रान्त माना जाता है।[1]

प्रज्ञापारमिता का पारमार्थिक ज्ञान बोधिसत्त्वों को केवल बीजावस्था में ही सम्भव है। इसकी फलावस्था केवल बुद्धों में उपलब्ध होती है।[2] प्रज्ञा के बिना उदय हुए बुद्धत्व की प्राप्ति असम्भव है। देवरूप से प्रज्ञापारमिता की उपासना

---

1. निस्स्वभावं निरालम्बं सर्वशून्यं निरालयम् ।
प्रपञ्चसमतिक्रान्तं बोधिचित्तस्य लक्षणम् ।।
"नैरात्म्यपरिपृच्छासूत्र" (विश्वभारतीसीरीजन04) I 2

2. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 363-364

बौद्धों का प्रधान आधार है।[1]

जब परिदृश्यमान रूप का सद्भाव विचार करने पर नहीं मालूम पड़ता तब अनागत आदि की संभावना की कथा निरर्थक है। अतः सिद्ध है कि भाव तत्त्वतः निःस्वभाव हैं। निःस्वभाव ही भावों का पारमार्थिक रूप ठहरता है। यह परमार्थ परम प्रयोज्य है पर इस में भी अभिनिवेश नहीं होना चाहिए क्योंकि भावाभिनिवेश और शून्यताभिनिवेश में कोई विशेषता नहीं है। दोनों ही सांवृत होने के कारण कल्पनात्मक हैं। अभाव का भी कोई स्वरूप नहीं है, भाव विकल्प ही सकल विकल्प का प्रधान कारण है। जब उसका निराकरण हुआ तब सब विकल्प एक ही प्रहार में निरस्त हो जाते हैं।

यद्यपि सकल विकल्प की हानि होने से परमार्थ का प्रतिपादन नहीं हो सकता तथापि संवृत्ति का आश्रय लेकर शास्त्र में यत्किञ्चित् निदर्शनोपदर्शन किया जाता है। वास्तव में तत्त्व अवाच्य हैं पर दृष्टान्त द्वारा कथञ्चित् शास्त्र में वर्णित है। बिना व्यवहार का आश्रय लिये परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता और बिना परमार्थ को अधिगत किये निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। नागार्जुन ने कहा है-

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते ।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते ।।[2]

---

1. सर्वेषामपि वीराणां परार्थनियतात्मनाम् ।
बोधिका जनयित्री च माता त्वमसि वत्सला।।
बुद्धैः प्रत्येकबुद्धैश्च श्रावकैश्च निषेविता ।
मार्गस्त्वमेका मोक्षस्य नास्त्यन्य इति निश्चयः।। (प्रज्ञापारमितासूत्र)

2. मध्यमकमूल 24/10

यद्यपि दानादि वस्तुतः स्वभावरहित हैं तथापि परमार्थतत्त्व के अधिगम के लिए सब तत्त्वों पर कल्पना कर बोधिसत्त्व को इनका उपादान करना चाहिए-"उपायभूतं व्यवहारसत्यमुपेयभूतं परमार्थसत्यम्"।[1]

अर्थात् व्यवहार सत्य उपाय या हेतुरूप है और परमार्थसत्य उपेय या फल स्वरूप है। दानादि पारमिता रूपी उपाय द्वारा परमार्थ तत्त्व का लाभ होता है। बोधिसत्त्व को उत्कृष्टतम् साधना प्रज्ञापारमिता है। प्रज्ञापारमिता और "धर्मधातु" पर्याय हैं। प्रज्ञापारमिता को सर्वधर्ममुद्राक्षय या अक्षयमुद्रा कहा गया है। इनके अनुसार प्रज्ञापारमिता मुद्रालक्षण नहीं है। वह सत्य,भूत,प्रज्ञोपाय है। बोधिसत्त्व का चित्त इस प्रकार प्रज्ञा को भावना करने से धर्मता के परिशुद्ध होने से शान्त हो जाता है और उसको प्रज्ञापारमिता पूरी होती है[2] -अपि नाम कश्चन धर्मो योद्व्यलक्षणों नामेत्युच्यते सर्वमुद्राक्षयामुद्रा। आसु मुद्रासु न मुद्रालक्षणं इत्युच्यते। सत्यं भूतं प्रज्ञोपाय: प्रज्ञापारमिता।..... बोधिसत्त्वस्य महासत्त्वस्य प्रज्ञां भावयतो न चित्त चरति धर्मतायाः परिशुद्धत्वात्। एवं पूरयति प्रज्ञापारमि-ताम्।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ये दस पारमिताएँ ही बुद्धकारक धर्म हैं। इनसे भिन्न अन्य किसी धर्म का उल्लेख नहीं है[3] यहजान बोधिसत्त्व ने चार असंख्येय

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. मध्यमकावतार, 6/80

2. बोधिचित्तोत्पादसूत्रशास्त्र

3. इमस्मिं लोके बोधिसत्तेन हि पूरेतब्बा बोधिपरिपाचना बुद्धकारकधम्मा एतक्का एव। दस पारमियो ठपेत्वा अञ्ञे नत्थि। (निदानकथा, पृ062)

एक लाख वर्षों तक इनका परिपालन किया। उनकी यह चर्या असंख्येय एक लाख वर्षों तक इनका परिपालन किया। उनकी यह चर्या सुमेध ब्राह्मण के रूप में शुरू हुई और विश्वन्तर राजा के रूप में समाप्त हुई। इस भव के अनन्तर तुषित लोक में कुछ दिन तक निवास कर पुन: सिद्धार्थ गौतम के रूप में जन्म लेकर बुद्धत्व को प्राप्त किया।

इन दश धर्मों के परिपालन से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है पर इसी क्रम से परिपालन किया जाता है। इसका कोई आधार विवरण उपलब्ध नहीं होता। पुन: दश पारमिताओं के कथन के बाद जो उनके "सम्मसन" की चर्चा है उससे किसी निश्चित क्रम की सूचना नहीं मिलती। विवरण है कि बोधिसत्व ने दृढ़ता के साथ अधिष्ठान करते हुए पुन: पुन: सम्मसन कर अनुलोम,प्रतिलोम क्रम से उनके ज्ञान को दृढ़ किया। वे अन्त से प्रारंभ कर आदि तक पहुँचते थे। इसी प्रकार मध्य से प्रारम्भ कर दोनों छोर तक ले जाते थे।" इससे स्पष्ट है कि इनकी गणना का आदि,मध्य या अन्त से कोई क्रम हो सकता है।

साथ ही सूक्ष्मतया विश्लेषण से विवृत होता है कि किसी एक धर्म का नितान्त पृथक रूप से परिपालन नहीं हो सकता। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि दान का परिपालन हो रहा है और शील,सत्यादि का नितान्त अभाव है। अत: वास्तविकता ऐसी प्रतीत होती है कि दशों धर्मों का परिपालन एक साथ चल रहा था पर एक-एक जीवन में या उस जीवन के कृत्य विशेष में किसी एक धर्म का परम भाव प्राप्त हुआ और इसी कारण निमित्ता पारमिता कहलायी। यथा

शशयोनि में बोधिसत्व ने अभीप्सित वस्तु देने में आत्मोत्सर्ग किया फलत: परमभाव प्राप्त वह दान कृत्य दान पारमिता कहलाई।[1] इसी तरह अन्य पारमिताओं के विषय में भी समझना चाहिए।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. भिक्खाय उपगतं दिस्वा सकत्तानं परिच्चजिं ।
   दानेन मे समो नत्थि एसा मे दानपारमी ।।

(निदानकथा, पृ0 112)

# चतुर्थ अध्याय

## जातकमाला तथा पालि जातकट्ठकथा का तुलनात्मक विवेचन

## जातकमाला तथा जातकट्ठकथा का तुलनात्मक विवेचन

बौद्ध धर्म के प्रचार की जिस भव्य भावना ने अश्वघोष की भारती को काव्यमय विग्रह पहनने का आग्रह किया उसी ने आर्यशूर की वाणी को काव्यमयी सज्जा से अलंकृत होने को बाध्य किया । दोनों का इस भव्य मार्ग में पधारने का उद्देश्य समान ही था- "रूक्षमनसामपिप्रसाद" रूखे मन वाले पाठकों को प्रसन्नकर बौद्ध उपदेशों का विपुल प्रचार तथा प्रसार[1] । दोनों अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल भी हुए हैं । बौद्ध कथाओं का काव्यात्मक रोचक " आख्यान" शैली में अवतारण आर्यशूर का मुख्य कार्य है । " जातकमाला" बौद्ध कथाओं का भाण्डागार कहे जाने वाले पालि जातकों से चुनी हुई उपदेशमयी कथाओं का संस्कृत अनुवाद न होकर एक स्वतंत्र ग्रन्थ है ।

पालि जातकों की शैली वर्णन प्रधान है घटनाओं को सीधे - सादे शब्दों में कह डालना ही उनका उद्देश्य है, परन्तु गद्य-पद्यात्मक आख्यान शैली में निबद्ध जातकमाला काव्यगुणों से ओत-प्रोत है, इसकी शैली प्रसादमयी है । कथा के मार्मिक स्थानों का उद्घाटन इसकी विशेषता है । मानव हृदय पर आघात करने वाले तथा आवर्जन करने वाले भावसन्तानों का भव्य विवरण देने में आर्यशूर किसी कवि से पीछे नहीं हैं । विश्वन्तर जातक में राजकुमार विश्वन्तर की पत्नी उसे जंगल में जाने के लिए उत्तेजित करते समय वन के सौन्दर्य तथा सरसता से अपरिचित नहीं है वह जंगल में मयूरों के सुन्दर नृत्य, मधुप- योषिताओं

---

1. स्यादेव रूक्षमनसामपि च प्रसादो धर्म्या: कथाश्च रमणीयतरत्वमीयुः ।।
(जातकमाला श्लोक- 2)

के माधुर्य युक्त गीत , कुसुम- वृक्षों के परिमल से लदी हुई वायु तथा नदियों की कोमल कल कल ध्वनि के प्रलोभन से अपने पतिदेव को लुभाती है[1] -

निर्दुर्जनान्यनुपभुक्तसरित्तरूणि नानाविहङ्गविरूतानि मृगाकुलानि ।
वैदूर्यकुट्टिमनोहरशाद्वलानि क्रीडावनाधिकसुखानि तपोवनानि ।।
अलङ्कृताविमौ पश्यन्कुमारौ मालभारिणौ ।
क्रीडन्तौवनगुल्मेषु न राज्यस्य स्मरिण्यसि ।।
ऋतुप्रयत्नरचिता वनशोभा नवा नवा: ।
वने त्वां रमयिष्यन्ति सरित्कुञ्जाश्च सोदका: ।।
चित्रं विरुतवादित्रं पक्षिणां रतिकाङ्क्षिणाम् ।
मदाचार्योपदिष्टानि नृत्तानि च शिखण्डिनाम् ।।
माधुर्यान्वगीतं च गीतं मधुपयोषिताम् ।
वनेषु कृतसङ्गीतं हर्षयिष्यति ते मन: ।
आस्तीर्यमाणानि च शर्वरीषु ज्योत्स्नादुकूलेन शिलातलानि ।
संवाहमानो वनमारुतश्च लब्धाधिवास: कुसुमद्रुमेभ्य: ।।
चलोपलप्रस्खलितोदकानां कला विरावाश्च सरिद्वधूनाम् ।
विभूषणानामिव सन्निनादा: प्रमोदयिष्यन्ति वने मनस्ते ।।

काव्य में प्रचार की भावना विद्यमान अवश्य है किन्तु सरल प्रकृति के साथ रागात्मिका वृत्ति के सद्भाव के कारण जातकमाला सचमुच तक श्लाघनीय कृति है । कवि ने अपने उद्देश्य के निमित्त बोल-चाल की व्यावहारिक सरल संस्कृत का

---

1. विश्वन्तर जातक श्लोक- 33-39

प्रयोग किया है और उसे अलंकार के आडम्बर से प्रयत्नपूर्वक बचाया है । पद्यभाग के समान गद्यभाग और भी सुश्लिष्ट सुन्दर तथा सरस है । समास का प्रयोग इसे रुक्ष-क्लिष्ट नहीं बनाता , प्रत्युत गाढबन्धता को प्रदान करने में समर्थ होता है गद्य-पद्य निर्मित आख्यान शैली में निबद्ध काव्य का यह उज्ज्वल उदाहरण है । वर्णन की मुख्यता होने पर भी यह काव्य अपनी सरल बोधगम्य शैली की सरसता तथा हृदयावर्जन के लिए प्रख्यात रहेगा ।

पालि जातकट्ठकथा तीन भागों में विभक्त है (1) दूरेनिदान (2) अविदूरे निदान (3) सन्तिके निदान ।

बोधिसत्त्व ने जब सुमेध तपस्वी का जन्म ग्रहण कर भगवान् दीपङ्कर के चरणों में जीवन समर्पित किया, उस समय से लेकर वेस्सन्तर का शरीर छोड तुषित स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने तक की कथा दूरे निदान कही जाती है । तुषित लोक से च्युत होकर महामाया देवी के गर्भ से उत्पन्न हो - - - बोधगया में बुद्धत्व प्राप्त करने तक की कथा अविदूरे निदान कही जाती है । जहाँ- जहाँ भगवान् बुद्ध ने विहार करते समय कोई जातक कहे, उन स्थानों का जो उल्लेख है वह सन्तिके निदान है ।

जितनी जातक कथाएं हैं वे दूरे निदान के ही अन्तर्गत आती हैं । प्रत्येक पालि जातक के पच्चुप्पन्नवत्थु अतीतवत्थु, गाथा, वेय्याकरण, तथा समोधान नामक विभागों के बारे में पहले विस्तार से बताया जा चुका है । पच्चुप्पन्नवत्थु का तात्पर्य है वर्तमान कथा अर्थात् भगवान् बुद्ध के समय की कोई घटना और यही वर्तमान कथा अतीतवत्थु अर्थात् अतीत काल की घटना को

कहने का अवसर उत्पन्न करती है । उदाहरणार्थ, वट्टकजातक में बुद्ध एवं भिक्षुओं के मगध में चारिका करते समय दावाग्नि का लगना और बुद्ध की महिमा से बुझना इतनी कथा तो वर्तमान कथा अर्थात् बुद्ध के जीवन की घटना है इसी में

सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना ।
माता पिता च निक्खन्ता जातवेद पटिक्कमाति ।।

यह गाथा कहकर एतदन्तर्गत निहित पूर्वकथा को जानने का कौतूहल उत्पन्न कर दिया गया, तब वर्त्तकापोतक के जन्म के समय आग लगने की मुख्य कथा (अतीतवत्थु) प्रारंभ कर दी जाती है ।

अवधेय है कि जातकों के ये विभाग जातकमाला में नहीं हैं । यथा समोधान भाग मात्र बिस जातक में ही पाया जाता है और उसे भी कतिपय विद्वान् प्रक्षिप्त ही मानते हैं[1] -

अहं शारद्वतीपुत्रो मौद्गल्यायनकाश्यपौ ।

---

1. At the end of this (Bisa) Jataka there is a remark that this Jataka was composed by Bhagwan, followed by the stanzas ( अहं शारद्वती --- ) giving the past and future identifications of the characters of the story. Such a description is invariably found in all the Pali Jatakas but Aryasura does not include such a description in his Jatakas. Hence Kern has rightly regarded as spurious the portion at the end of this single Jataka. (Dr. R. C. Dwivedi edition, Introduction P. XVIII).

पूर्णानिरुद्धावानन्द इत्यासुभ्रातिरस्तदा ।
भगिन्युत्पलवर्णासीद्दासी कुब्जोत्तराऽभवत् ।
चित्रो गृहपतिर्दासो यक्ष: सातागिरिस्तदा ।।

इसी प्रकार वेय्याकरण भी जातक माला में नहीं पाया जाता साथ ही पच्चुप्पनवत्थु भी नहीं है । आर्यशुर बोधिसत्व के गुणों की प्रशंसा से भूमिका शुरू कर अतीत कथा शुरू कर देते हैं ।

पालि जातकों में साहित्यिक विधाओं के कई रूप पाये जाते हैं । उनमें कतिपय जातक गद्यात्मक कथाएं हैं जिनमें मात्र एक या कुछ गाथाएं हैं जो कि कहानियों का सारांश या नैतिक भाग हैं यथा एकक निपात के सभी जातक इसके अन्तर्गत आते हैं। जातकों का दूसरा प्रकार चम्पू साहित्य का है । अधिकांश जातक इसके उदाहरण है लेकिन कतिपय जातक ऐसे हैं जो मूल रूप से गाथात्मक हैं । उन गाथाओं में कुछ तो संवादात्मक हैं लेकिन कुछ संवादात्मक गाथाएं वर्णनात्मक अनुच्छेदों से युक्त हैं कुछ जातक पूरे के पूरे महाकाव्य या लघु काव्य ही है यथा "वेस्सन्तर जातक"। कुछ तो किसी विषय में नैतिक कहावतों की पंक्तियां मात्र है। जहाँ तक जातकमाला का प्रश्न है वह एक कलाकार उपदेष्टा कवि की कृति होने से चम्पू शैली की रचना है जिसमें कहानी अपने गद्यात्मक रूप के साथ प्रस्तुत होती है और श्लोक उस गद्य में निहित भावों एवं घटनाओं के वर्णन को दुहराते और एक तरह से उसका समर्थन करते चलते हैं[2] ।

---

1. M.Winternitz-" Jataka Gathas And Jataka Commentary" Indian Historical Quarterly' Vol.IV,No.1. 1928.

2. Amongst the literary types mentioned by Pro.Winternitz it will be found that the Jatakamala follows the Campu style in which the story is introduced in prose and verses repeat and support the description of the ideas and events contained in the prose.

प्रत्येक जातक के प्रारंभ में आर्यशूर एक नैतिक आदर्श की- जिसकी कहानी के माध्यम से व्याख्या करना है- प्रशंसा करते हैं । यथा शिबि जातक में सद्धर्म की-"दुष्करशतसमुदानीतोऽयमस्मदर्थं तेन भगवत सद्धर्म इति सत्कृत्य श्रोतव्यः । " तथा शश जातक में औदार्य की -" तिर्यग्गतानामपि सतां महात्मनां शक्त्यनुरूपा दानप्रवृत्तिर्दृष्टा । केन नाम मनुष्यभूतेन न दातव्यं स्यात् -" इसके बाद फिर कथा का प्रारंभ" तद्यथानुश्रूयते" इस निश्चित शब्द समूह से होता है । जिस नैतिक आदर्श की स्तुति प्रारंभ में की जाती है वह कथान्त में पुनः उपसंहार के रूप में आता है । यथा शश जातक में ही -

" तदेवं तिर्यग्गतानामपि महासत्त्वानां शक्त्यनुरूपा दानप्रवृत्तिर्दृष्टा । केन नाम नुष्यभूतेन न दातव्य स्यात् । तथा तिर्यग्गता अपि गुणवात्सल्यात् सम्पूज्यन्ते सद्भिरिति गुणेष्वादरः कार्य इत्येवमप्युन्नेयम् ।"

कर्न कथा के उपसंहार भागों को अनावश्यक और बाद का जोड़ा हुआ मानते हैं[1] । यद्यपि कथा का तात्पर्य स्पष्ट रूप से अन्त में बतलाना आधुनिक मनीषा को ठीक नहीं जंचता फिर भी परशुरामशर्मा इसे प्रक्षिप्त नहीं मानते । अन्य विद्वानों ने भी इस विचार का खण्डन किया है और सिद्ध किया है कि

---

Jatakamala edited by H Kern. introd. P.X

यह भाग कथा का अविभाज्य अंग है।

इसके बाद प्रस्तावनात्मक कथा आती है जो बोधिसत्व के शश, हंस आदि रूप में जन्म लेने का वर्णन करती हैं और इस भूमिका के तुरन्त बाद बोधिसत्व के गुणों का बखान करने वाली गाथाएं आती है। यथा मत्स्य जातक में देखिए-

बोधिसत्वः किल कश्मिश्चिन्नातिमहति - - - - - - सरसि मत्स्याधिपतिर्बभूव। स्वभ्यस्तभावाच्च बहुषु जन्मान्तरेषु परार्थचर्यास्तत्रस्थोऽपि परहितसुखप्रतिपादनव्यापारो बभूव।

अभ्यासयोगाद्धि शुभाशुभानि कर्माणि सात्म्येन भवन्ति पुंसाम्।
तथाविधान्येव यदप्रयत्नाज्जन्मान्तरे स्वप्न इवाचरन्ति ।।
अन्योऽन्यहिंसाप्रणयं नियच्छन्परस्परप्रेम विवर्धयंश्च।
योगादुपायज्ञतया च तेषां विस्मारयामास स मत्स्यवृत्तम् ।।
तत्तेन सम्यक्परिपाल्यमानं वृद्धिं परां मीनकुलं जगाम।
पुरं विनिर्मुक्तमिवोपसर्गैर्न्यायप्रवृत्तेन नराधिपेन ।।

इसके विपरीत पालि जातक कथाओं का सार यह है कि बुद्ध के जीवन में कोई घटना उनके पूर्व जीवन की घटना से मिलती जुलती घटित होती है तो श्रोताओं को यह कहकर कि अमुक घटना मेरे अमुक पूर्व जन्म के समय भी घटी और

---

1. "जातकमाला- परशुरामशर्मा, प्रस्तावना पृ० 12

तब श्रोताओं के कौतूहल के बाद अतीतकथा शुरू कर दी जाती है । अवधेय है कि अतीत कथा की सार स्वरूप किसी गाथा का प्रसंग देकर जातककथा के शुरू में ही यह बता दिया जाता है कि प्रस्तुत गाथा बुद्ध ने कहाँ और क्यों कही । इसके बाद में अतीत कथा की हेतुभूता वर्तमान कथा प्रारंभ कर दी जाती है । अतीतकथा के पूर्ण होने के बाद उपसंहार और तब समोधान भाग के साथ कथा का अन्त हो जाता है । उदाहरणार्थ वट्टक जातक में देखिए –

सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना ।

माता पिता च निक्खन्ता जातवेद । पटिक्कमाति ।।

अतीतवत्थु की सारभूता इस गाथा का सन्दर्भ देकर प्रारंभ में ही कह दिया गया है कि यह गाथा बुद्ध ने मगध में चारिका करते समय दावाग्नि के बुझने के सम्बन्ध में कही –

सन्ति पक्खाति इदं सत्था मगधेसु चारिकं

चरमानो दवाग्गिनिब्बापनं आरब्भ कथेसि ।"

तब फिर वर्तमान कथा प्रारम्भ की गई कि " एक समय बुद्ध के भिक्षुगण सहित भिक्षाटन करते समय दावाग्नि उठी तब व्याकुल भिक्षुगण बुद्ध के पास गये । वहाँ देखा कि उनके आस-पास आग शान्त है । इस पर भिक्षुगण ने उनका गुणगान किया । तब बुद्ध बोले कि यह मेरा अब का प्रताप नहीं है, यह मेरी पुरानी सत्यक्रिया का बल है । इस क्षेत्र में कल्प भर आग न जलेगी । इस पर छिपी अतीत की घटना के कारण भिक्षुओं में कुतूहल पैदा हुआ तब बुद्ध ने अतीत कथा कही ।

" सत्था तेसं कथं सुत्वा न भिक्खवे । एते एतरहि मय्हं बलं यं इमं भूमिप्पदेशं पत्वा एस अग्गि निब्बायति । इदं पन मय्हं पोराणकसच्चबलं । इमस्मिं

अथायस्मा आनन्दो सत्थु निसीदनत्थाय चतुग्गुणं संघाटिं पञ्ञपेसि। निसीदि सत्था पल्लकं आभुजित्वा । भिक्खुसंघोपि तथाग ' वन्दित्वा परि-वारेत्वा निसीदि । अथ सत्था इदं ताव भन्ते । अम्हाकं न पाकटं अतीतं पटिच्छन्न तं नो पाकटं करोथाति भिक्खूहि आयाचितो अतीतं आहरि ।

इसके बाद अतीतवत्थु में " वर्त्तकापोत्क कथा " बुद्ध ने बताई । अवधेय है कि यही अतीतकथाएं ही जातकमाला में मिलेंगी वर्तमानकथा या पच्चुप्पन्नवत्थु नहीं ।

पालि जातकों की उपर्युक्त अतीतवत्थु प्राय: " पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" अतीते वाराणीसयं ब्रह्मदत्ते रज्जं कोरे न्ते" के साथ प्रारम्भ होती है । पता नहीं यह ब्रह्मदत्त कोई राजा हुआ है या नहीं? सम्भव है " जनक " की तरह " ब्रह्मदत्त " भी अनेक राजाओं की पदवी रही हो । प्रतीत तो यही होता है कि ब्रह्मदत्त का मूल्य कथा आरम्भ करने के लिए निश्चित शब्द समूह से अधिक कुछ नहीं । जैसे उर्दू की प्राय: हर कहानी " एक दफा का जिकर है" से आरम्भ होती है और अंग्रेजी की 'Once upon a time' से, वैसे ही हमारी जातक कथाओं के लिए प्रस्तुत शब्द समूह है । जातकट्ठकथा के अनुसार इन कथाओं में से तीन चौथाई जेतवन विहार में कही गई हैं शेष राजगृह, कौशाम्बी, वैशाली आदि स्थानों में ।

जातक कहानियों की एक सामान्य विशेषता देव, यक्ष, नाग, सिद्धों

---

1. वट्टक जातक ( जातकट्ठकथा)

द्वारा बोधिसत्त्व को उनकी नैतिक विजय पर साधुवाद देना है । यथा जातकमाला[1] में -

वितर्कातिशये तस्य हृदये प्रविजृम्भिते ।
आविश्चक्रे प्रसादश्च प्रभावश्च दिवौकसाम् ।।
ततः प्रहर्षादिव सचला चला मही बभूव निभृतार्णवांशुका ।
विततस्तनुः खे सुरदुन्दुभिस्वना दिशः प्रसादाभरणाश्चकाशिरे ।
प्रसक्तमन्दस्तनिताः प्रहासिनस्तडित्पिनद्धाश्च घनाः समन्ततः ।
परस्पराश्लेषविकीर्णरेणुभिः प्रसक्तमेनं कुसुमैरवाकिरन् ।।
समुद्वहनधोरगतिः समीरणः सुगन्धि नानाद्रुमपुष्पजं रजः ।
मुदा प्रविद्धैरविश्रक्तभक्तिभिस्तमर्चयामास कृशांशुकैरिव ।।

तथा जातकट्ठकथा[2] में -

" अथ नं सक्को " ससपण्डित तवगुणो सकलकप्पं पाकटो होतु" ति पब्बतं पीळेत्वा पब्बतरस आदाय चन्दमण्डले ससलक्खणं आलिखित्वा बोधिसत्तं आमन्तेत्वा तस्मि वनसण्डे तस्मि एव वनगुम्बे तरुणदब्बतिणपिट्ठे निपज्जापेत्वा अत्तनो देवट्ठानमेव गतो ।"

इसी प्रकार देवराज इन्द्र का प्रछन्न वेश में बोधिसत्त्व की नैतिक परीक्षार्थ आगमन दोनों स्थानों में समान रूप सेपाया जाता है ।

---

1• शशजातक, श्लोक 18-21

2• ससजातक ( जातकट्ठकथा ) अन्तिम परिच्छेद ।

जातकमाला के 34 जातकों में बुद्ध ने पारमी पूरणार्थ निम्नलिखित योनियों में जन्म लिया -

| | योनि | रूप | जन्मसंख्या | कुलसंख्या |
|---|---|---|---|---|
| 1. | मनुष्य | तपस्वी | 1 | |
| | " | नाविक | 1 | |
| | " | सदाचारी | 1 | |
| | " | परिव्राजक | 1 | |
| | " | राजा | 8 | |
| | " | श्रेष्ठि | 3 | 15 |
| 2. | पशु | शश | 1 | |
| | " | मत्स्य | 1 | |
| | " | बटेर | 1 | |
| | " | हंस | 1 | |
| | " | वानर | 2 | |
| | " | सिंह | 1 | |
| | " | मृग | 1 | |
| | " | हस्ती | 1 | |
| | " | भैंसा | 1 | |
| | " | मयूर | 1 | 11 |
| 3. | देव | ब्रह्मा | 6 | |
| | " | इन्द्र | 2 | 8 |

उपलब्ध 547 जातकों (पालि) में पारमी पूरणार्थ ग्रहण की गई योनियाँ प्रकार है -

| योनि | रूप | जन्मसंख्या | कुलसंख्या |
|---|---|---|---|
| 1. मनुष्य | तपस्वी | 83 | |
| " | राजा | 85 | |
| " | शिक्षक | 26 | |
| " | राजसभासद | 24 | |
| " | ब्राह्मण | 24 | |
| " | राजकुमार | 24 | |
| " | कुलश्रेष्ठि | 23 | |
| " | वणिक् | 13 | |
| " | पण्डित | 22 | |
| " | श्रेष्ठी | 12 | |
| " | दास | 5 | |
| " | कुम्भकार | 3 | |
| " | चाण्डाल | 3 | |
| " | हस्तिवालक | 2 | |
| " | चोर | 2 | |
| " | सर्पवैद्य | 1 | |
| " | द्यूतचारी | 1 | |
| " | राज | 1 | |
| " | स्वर्णकार | 1 | |

| | योनि | रूप | जन्मसंख्या | कुलसंख्या |
|---|---|---|---|---|
| | मनुष्य | रजतकार | 1 | |
| | " | छात्र | 1 | |
| | " | वर्द्धकी | 1 | 359 |
| 2. | देवता | वृक्षदेवता | 43 | |
| | " | शक्र | 20 | |
| | " | ब्रह्मा | 4 | |
| | " | गन्धर्व | 1 | 68 |
| 3. | पशु | कपि | 18 | |
| | " | मृग | 11 | |
| | " | सिंह | 10 | |
| | " | गज | 6 | |
| | " | अश्व | 4 | |
| | " | वृषभ | 4 | |
| | " | श्रृंगाल | 2 | |
| | " | सूकर | 2 | |
| | | [illegible] श्वान | 1 | |
| | " | शश | 1 | 59 |
| 4. | पक्षी | वनहंस | 8 | |
| | " | सारस | 6 | |
| | " | कुक्कुट | 5 | |
| | " | बाज़ | 5 | |

| योनि | रूप | जन्मसंख्या | कुलसंख्या |
|---|---|---|---|
| पक्षी | वनकुक्कुट | 1 | |
| " | काक | 2 | |
| " | कठफोड़वा | 2 | |
| " | चिल्ल | 1 | 34 |
| 5. जलजन्तु | मत्स्य | 2 | |
| " | गोध | 3 | |
| " | जलकुक्कुट | 1 | |
| " | मेढक | 1 | 7 |
| 6. अन्यजीव | सर्प | 4 | |
| " | मूषिक | 2 | 6 |
| | | | 533 |

शेषउपलब्ध 14 कथाओं में उनकायोनिगत रूप स्पष्ट नहीं है ।

जातकमाला की 28 जातक कहानियाँ तो पालि जातकों के आधार पर हैं परन्तु अन्य 6 जातक तो प्राचीन बौद्ध अनुश्रुति परआधारित है। जिन 28 जातकों का मौलिक आधारपालि जातक हैं उन पालि जातकों से आर्यशूर की कथाओं में एक मुख्य अन्तर यह भी है कि पालि गाथाओं के मध्य जो अन्तराल गद्य के द्वारा भरा गया है वह बहुत अपर्याप्त लगता हैऔर इसलिए आसानी से पहचाना जा सकता है जबकि दूसरी ओर जातकमाला में गद्य में भी कलात्मकता व्याप्त है । आर्यशूर की शैलीगत स्निग्धता, पदावली की मसृणता एवं भाषा की प्रसन्नता के कारण प्रभूत अन्तर तो सर्वत्र सुस्पष्ट ही है, जैसा कि आगे स्पष्ट होगा-

1. व्याघ्री जातक -

इस जातक का कोई पालि उद्गम अभी तक नहीं मिल पाया है। इसमें बोधिसत्व ने एक सद्यःप्रसूता बाघिन को जो अपनी अपने ही नवजात शिशु को खाना चाहती है, अपना शरीर समर्पित कर देते हैं। यह कथा दिव्यावदान में भी प्राप्त है[1]। इस अवदान के अनुसार ब्रह्मप्रभ नामक माणवक ने अपने नवजात शिशुओं में से एक को खाकर दूसरे को खाने को उद्यत बाघिन को अपना शरीर समर्पित कर दिया -

अथापरेणसमयेन व्याघ्री प्रसूता क्षुत्क्षामपरीता इच्छति स्वकौ पोतकौ भक्षयितुम् । एकं पोतकं गृह्णाति द्वितीये मुञ्चति न भक्षयति । तां ब्रह्मप्रभो माणवकोऽपश्यत् । - - - - अयमहं त्यागं करिष्यामि, अतित्यागं त्यागातित्यागं स्वयं गलपरित्यागम् । - -- तेन सत्येन सत्यवचनेन या मे परित्यागो निष्फलो भूदिति कृत्वा स्वयमेव गलं छित्वा तस्या व्याघ्रया: पुरत उपनिक्षिपति।

व्याघ्रीनखावलिविलासविलुप्यमाना वक्षःस्थली क्षणमलक्ष्यत वीक्षताराः।
रोमाञ्चचर्चिततनोस्तुहिनांशुशुभ्रा सत्त्वा प्रकाशकिरणांकुरपूरितेव ।।[2]

अवदान[3] कल्पलता के अनुसार एक ब्राह्मण के दो पुत्र चोर हो गये। पकड़े जाने

---

1. दिव्यावदान, 32 वॉ अवदान "रूपवत्यवदान"
2. रूपवत्यवदान, श्लोक ।
3. व्याघ्र्यवदान " अवदानकल्पलता "

पर वध्य स्थल पर लाये गये उनको बुद्ध ने छुड़वाया और बताया कि पूर्व जन्म में इनकी माता बाघिन थी जो क्षुधा: प्रभूत इन दोनों को खाना चाहती थी तब भी मैंने उसको निवारित किया था-

ज्ञात्वा दयावान् सर्वज्ञ: स्वयमभ्येत्य तां भुवम् ।
प्रसादानुग्रहेणैव चक्रे विगतबन्धनौ ।।
मयैव रक्षितावेतौ पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि ।
एतयोर्जननी व्याघ्री घोररूपा तदाभवत् ।
कदाचिदेतौ क्षुत्क्षामा पोतकौ भोक्तुमुद्यता ।।
स्वशरीरं मया दत्वा व्याघ्री सा विनिवारिता ।।
अद्य ताविव चौरत्वं कर्मशेषादुपागतौ ।
मयासंरक्षितौ व्याघ्री माता सेवेयमेतयो: ।।

"रूक्यवत्यवदान"[1] में भी दिव्यावदान के समान वर्णन उपलब्ध है जिसके निम्न श्लोक का भाव-साम्य जातकमाला में अक्षरश: प्राप्त है -

इयं वराकी क्षुद्दु:खाद्धता पोतभक्षणे ।
अहो बतास्या: स्वार्थेन पुत्रस्नेहोऽपि विस्मृत:[2] ।।

तथा अहो बतातिकष्टेयमात्मस्नेहस्य रौद्रता ।
येन मातापि तनयानाहारयितुमिच्छति[3] ।।

---

1. अवदानकल्पलता, 51 वाँ अवदान
2. रूक्मवत्यवदान श्लोक- 37
3. जातकमाला व्याघ्री जातक श्लोक- 19

2. शिबि जातक-

जातकमाला के प्रस्तुत जातक के अनुसार बोधिसत्व एक बार शिबियों के राजा हुए । दानवीर उनके पास याचकों ने तो अपनी पिपासा शान्त की किन्तु उनकी दान की प्यास न बुझी । एक बार उन्होंने सोचा कि वे सज्जन भाग्यवान् है जिनके पास याचक नि:शंक भाव से अङ्गों की भी माँग करते हैं । इस उदार विचारसे विस्मित होकर इन्द्र ने ब्राह्मण वेश में दान की परीक्षार्थ उनकी आँख मांगी, राजाने दोनों आँखे दे दीं । देवों ने साधु- साधु की और शक्र के प्रताप से उनकी आँखे पुन: वापस मिल गई । पूरे जातक में दान की महिमा गाई गयी है । पालिजातकट्ठकथा में[1] यह कथा ठीक इसी रूप में है, अन्तर मात्र भाषा का है भावों का नहीं । अविस्मरणीय है, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि पालि जातकट्ठकथा का पच्चुप्पन्नवत्थु भाग जातकमाला की किसी कहानी में नहीं मिलेगा । उसकी अती कथा ही जातकमाला में निबद्ध हुई है । कहानियों का सामान्य अन्तर भी बताया जा चुका है, अब मात्र कथानकगत और भावात्मक तुलना ही की जायेगी । जहाँ तक शिबि जातक की बात है, दोनों स्थानों में भाव में कहीं कोई वैभिन्य नहीं[2] है यथा-

सक्को हमस्मि देविन्दो आगतोस्मि तवन्तिके ।

वरं वरस्सु राजीसि यं किञ्च मनसिच्छसि ।।

पहूतं मे धनं सक्क बलं कोसो चनप्पको ।

अन्धस्स में सतो दानि मरणं एव रूच्चति[3] ।।

---

1. सिवि जातक जातक नं0 499

2. तुलनीय जातकमाला श्लोक-25 — जातकट्ठकथा गाथा 12

तथा- शक्रोऽहमस्मि देवेन्द्रस्त्वत्समीपमुपागत: ।
वरं वृणीष्व राजर्षे यदिच्छसि तदुच्यताम् ।।
प्रभूतं मे धनं शक्र शक्तिमच्च महद् बलम् ।।
अन्धभावात्त्विदानीं मे मृत्युरेवाभिरोचते ।।[1]

उसीप्रकार

दूरे अपस्सं थेरो व चक्खुं याचितुं आगतो ।
एक नेत्ता भविस्साम चक्खुं मे देहि याचितो ।।
केनानुसिट्ठो इधमागतोसि वनिब्बक चक्खु पथानि याचितुम् ।
सुदुच्चजं याचसि उत्तमङ्ग यं आहु नेत्ते पुरिसेन दुच्चजं ।।
यं आहु देवेसु सुजम्पतीति मघवोति नं आहु मनुस्सलोके ।
तेनानुसिट्ठो इधमागतोस्मि वनिब्बको चक्खु पथानि याचितु ।।[2]

तथा

दूरादपश्यन्स्थविरोऽभ्युपेतस्त्वच्चक्षुषोऽर्थी क्षितिपप्रधान: ।
एकेक्षणेनापि हि पङ्कजाक्ष गम्येत लोकधिप लोकयात्रा ।।
केनानुशिष्टस्त्वमिहाभ्युपेतो मां याचितुं ब्राह्मणमुख्य चक्षु: ।
सुदुस्त्यजं चक्षुरितिप्रवाद: सम्भावना कस्य मयि व्यतीता ।।
शक्रस्य शक्रप्रतिमानुशिष्टया त्वां याचितुं चक्षुरिहागतोऽस्मि ।
सम्भावनां तस्य ममैव चाशां चक्षुप्रदानात्सफलीकुरूष्व।।[3]

---

3• जातकट्ठकथा गाथान 20,21

1• जातकमाला शिबिजातक, श्लोक 32,22

2• शिबिजातक (पालि) गाथा सं 1-3

3• शिबिजातक, श्लोक नं0 10-12

"चरियापिटक" में भी यह कथा इसी रूप में आयी है[1]। मात्र गाथात्मककृति होने से पूरी कथा गाथाओं में ही है तथापि भाव व कथानक में कोई अन्तर नहीं है।

## 3. कुल्माषपिण्डीजातक-

बोधिसत्त्व एक बार कोशलाधिपति हुए। एक बार अपने पूर्व जन्म का स्मरण कर कहा कि पुण्यात्माओं की थोड़ी सेवा का भी अनन्य फल होता है, ऐसा हम केवल सुनते थे किन्तु अब रूखी-सूखी कुल्थी की दाल की भिक्षा का यह प्रत्यक्ष फल (राजत्व) देखो। उत्सुक रानी के पूछने पर बताया कि पूर्व जन्म में वह मजदूर थे और 4 भिखारी सन्यासियों को विनम्र भाव से कुल्थी की दाल दी थी उसी का फल है कि आज राजा हैं। यह सुनकर रानी को पूर्वजन्म का स्मरण हो गया और बताया कि पूर्व जन्म में वह एक दासी थी और आहार से थोड़ा भात निकालकर दुःखानुभूतिशून्य मुनि को दिया था जिसका यह फल है। इस प्रकार दान की महिमा अन्त तक गायी गयी है।

लगभग इसी रूप में यह कथा पालि जातक[2] में भी प्राप्त होती है। यथा दोनों में साम्य देखिए -

न किरत्थि अनोमदस्सिसु परिचरिया बुद्धेसु अप्पिका।

---

1. चरियापिटक, "सिबिराजचरिया"
2. कुम्मासपिण्ड जातक, जा० नं० 415

सुक्खाय अलोणिकाय व पस्स फलं कुम्मासपिण्डया ।।

हत्थिगवास्सा च ये बहु धनधञ्ञ पठवी च केवला ।

नारियो चिमा अच्छरूपमा पस्स फलं कुम्मासपिण्डया[1] ।।

तथा-

न सुगतपरिचर्या विद्यते स्वल्पिकापि ।

प्रतनुफलविभूतिर्यच्छ्रुतं केव प्राक् ।

तदिदमलवणायाः शुष्करूक्षारूणायाः

फलविभवमहत्त्वं पश्य कुल्माषपिण्डयाः

रथतुरगविचित्रं मत्तनागेन्द्रनीलं

बलमकृशमिदं मे मेदिनी केवला च ।

बहुधनमनुरक्ता श्रीरूदाराश्च दाराः

फलसमुदयशोभां पश्य कुल्माषपिण्डयाः[2] ।।

इसी प्रकार अन्यत्र कथा में भी पूर्ण साम्य[3] है । यथा-

देवी विय अच्छरूपमा मज्झे नारिगणस्स शोभसि ।

किं कम्ममकासि भद्दकं केनासि वण्णवती सुकोशले[4] ।।

---

1. पालिगाथा नं० 1,2

2. जा०मा०श्लोक 4,5

3. तुलना कीजिए जातकगाथा-

| | पालिजातक |
|---|---|
| श्लोक 6,7 | गाथा 3 |
| 10-13 | 4-7 |
| 14-16 | 8-10 |
| 17 | 11-12 |

4. जातकट्ठकथा गाथा 10

ढंग से ~~स्ल~~ 2। श्लोक आये हैं लेकिन वह तो कलाकार कवि की कृति ही है। उस एकमात्र गाथा की तुलना जातकमाला के श्लोक 18 से की जा सकती है।

कामं पतामि निरयं उद्धपादो अवंसिरो
नाननरियं करिस्सामि हन्द पिण्डं पटिग्गह ।।
कामं पतामि नरकं स्फुरदुग्रवह्निं
ज्वालावलीढशिथिलावनतेन मूध्नर्ा ।
न त्वर्थिना प्रणयदर्शितसौहृदानां
सम्मानकालमवमाननया हरिष्ये ।।

5. अविषह्यश्रेष्ठि जातक-

एक बार बोधिसत्त्व अविषह्य नामक धनसेठ हुए। वे अति दान-परायण थे। उनकी दानशीलता से इन्द्र विस्मित हुए और सोचा कि धन कम हो जाने पर उनको कंजूसी की ओर बहकाया जा सकता है। किन्तु ये तो घटने के अनुपात में और अधिक दान देते रहे, तब इन्द्र ने एक रस्सी व हँसिया छोड़कर सारी सम्पत्ति छिपा दी। अविषह्य को इस बात से बहुत दुःख हुआ कि मेरे पास धन न रहने से याचकों को अतिकष्ट होगा। इस घोर गरीबी में भी वह परिचितों के आगे भी हाथ नहीं फैला सके और रोज घास काटकर बेंचते तथा प्राप्त धनसे भिक्षुओं का सत्कार करते। इस पर विस्मित इन्द्र ने अनेकधा दान से विरत होने के तर्क दिये और कहा कि और नहीं तो पहले धन का उपार्जन करो फिर दान दो। बोधिसत्त्व ने एक नहीं सुनी। उनकी दान की इस एकनिष्ठता पर प्रसन्न हो इन्द्र ने छिपाई गयी सारी सम्पत्ति लौटा दी और क्षमा माँगकर अन्तर्धान हो गये।

पालि जातकों में यह कथा "विसय्ह जातक[1]" नाम से प्राप्त होती है। थोड़ा सा अन्तर यह है कि बोधिसत्त्व घास काटकर बेंचते और याचकों के आधिक्य के कारण सारे प्राप्त धन कोदे देते। इस प्रकार छ: दिन बीते। सातवें दिन सुकुमार एवं निराहार रहने के कारण सूर्यातप सह न सके तथा घास लाते समय बेहोश गिरपड़ते हैं। तब इन्द्र प्रकट होता है और दान वृत्ति को रोकना चाहता है। बाकी कथा समान है। हाँ एक सामान्य अन्तर जो हर जातक में होगा, यहाँ भी है। आर्यशूर ने गद्य के साथ- साथ 33 श्लोक कह डाले हैं जब कि पालि कथा में मात्र 4 गाथायें ही है। पद्यों का भावसाम्य सुस्पष्ट है-

अनरियमरियेन सहस्सनेत्त सुदुग्गतेनापि अकिच्चमाहु।
मा वो धनं तं अहु देवराज यं भोगहेतु विजहेमु सद्धं।।

ठीक यही बात आर्यशूर कहते हैं -

अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र सुदुष्करं सुष्ठ्वपि दुर्गतेन।
मा चैव तद्भून्मम शक्र वित्तं यत्प्राप्तिहेतोः कृपणाशयः स्याम्[2]।।

एवमेव

अदासि दानानि पुरे विसय्ह ददतो च ते खयंधम्मो अहोसि।
इतो परञ्चे न ददेय्य दानं तिट्ठेय्युं ते संयमन्तस्स भोगा।।

---

1. जातकट्ठकथा जा० नं० 340

2. श्लोक नं० 11

और इत्थं गतः सन्नपि चेन्न दद्या याया ' पुनः पूर्वसमृद्धिशोभाम् ।

शश्वद् कृशेनापि परिव्ययेण कालेन दृष्ट्वा क्षयमर्जनानाम् ।।

तथा

येन एको रथो याति तेन परो रथो ।

पोराणं निहितं वट्टं वत्ततञ्ञेव वासव ।

यदि हेस्सन्ति दस्साम असन्ते किं ददामसे ।

एवं भूतापि दस्साम मा दानं पमदाम्हसे ।।

और एकोरथश्च भुवि यद्विध्यति वर्त्म

तेनापरो व्रजति धृष्टतरं तथान्यः ।

कल्याणमाद्यमिममित्यवधूय मार्गं

नासत्यथप्रणयने रमते मनो मे ।।

अर्थश्च विस्तरमुपैण्यति चेत्पुनर्मे ।

हर्ता मनांसि नियमेन स याचकानाम् ।

एवगतेऽपि च यथाविभवं प्रदास्ये

मा चैव दाननियमे प्रमदिष्म शक्र[1] ।।

6• शश जातक–

एक समय बोधिसत्व किसी जंगल में खरगोश बनकर पैदा हुए । इनके विशिष्ट मित्र थे एक ऊदविलाव, एक वानर और एक सियार । जिनका सम्बन्ध

---

1• जातक माला श्लोक 26–27

पारिवारिक था । एक बार सायंकाल धर्मोपदेश के समय पूर्णचन्द्र मण्डल को देखकर बोधिसत्व ने कहा कि कल पूर्णिमा होगी अत: आप लोग पोसथ व्रत का पालन करते हुए आहार के समय आगत अतिथि को सत्कार करके प्राणरक्षार्थ भोजन करियेगा । सबके चले जाने पर शश ने सोचा कि मेरे मित्र तो जैसे- तैसे अतिथि सत्कार कर ही सकते हैं मैं ही अक्षम हूँ । बहुत चिन्तित होने पर उसे यादआया कि मेरे पास शरीर रूपी धन तो है ही और यह अतिथि सत्कार में समर्थ भी है । इस विचारको जानकर धरती, आकाश आदि झूम उठे । परीक्षा लेने के लिए इन्द्र दूसरे दिन दोपहर के समय पहुँचे । क्रमश: ऊदबिलाव, सियार और वानर ने लायी हुई भोज्य सामग्री प्रस्तुत की । शश ने कहा कि मेरे पासदेह के सिवा कुछ नहीं है । कृपा करके उसे ही स्वीकार कीजिए इतना कहकर अंगारों के ढेर में कमलयुक्त जलाशय में राजहंस के समान आरूढ हो गया । तब इन्द्र ने प्रकट होकर पुष्प वृष्टि की साथ ही शश की आकृति से वैजयन्त प्रासाद, सुधर्मा देवसभा के शिखरों के साथ चन्द्र मण्डल को भी अलंकृत किया ।

पालि जातक[1] में कथानक में थोडा सा अन्तर है । जातकमाला में ऊदबिलावादि के द्वारा भोजन प्रस्तुत करते समय ही बताया गया है कि ये चीजे इस हालत में हम ले आये हैं जबकि पालि में ~~नब~~ इनके द्वारा उपोसथ के दिन सबेरे जाकर भोजन लाने का अलग से वर्णन ही है यथा-

---

1. 316 वाँ ससजातक

तेसु उद्दो पातो एव "गोचरं परियेसिस्सामि"ति निक्खमित्वा गंगातीरं गतो । अथेको बालिसिको सत्त रोहितमच्छे उद्धरित्वा वल्लिया आवुणित्वा नेत्वा गङ्गातीरे बालिकाय पटिच्छादेत्वा मच्छे गण्हन्तो अधो मङ्गा भस्सि । उद्दो मच्छगन्धं घायित्वा वालिकं वियूहित्वा मच्छे दिस्वा नीहरित्वा "अत्थिन खो इमेसं सामिको"ति तिक्खत्तुं घोसेत्वा सामिकं अपस्सन्तो वल्लियं डंसित्वा अत्तनो वसनगुम्बे ठपेत्वा "वेलायमेव खादिस्सामि" ति अत्तनो शीलं आवज्जन्तो निपज्जो ।

इसी प्रकार पालि जातकानुसार इन्द्र सवेरे क्रमशः उद्‌विलास , सियार और वानर के पास जाता है जब कि जातकमाला के अनुसार सबके सामने ही इन्द्र उपस्थित हुआ है ।

– पठमं उद्दस्स वसनट्ठानं गत्वा ब्राह्मणवेसेन अट्ठासि, ब्राह्मण किमत्थं ठितोसीति वुत्ते पण्डित, सचे किञ्चि आहारं लभेय्यं उपसथिको हुत्वा समणधम्मं करेय्यं "ति । सो साधु दास्सामि ते आहारं ति तेन सद्धिं सल्लपन्तो पठमं गाथमाह–

सत्त मे रोहिता मच्छा उदका थलमुब्भता ।
इदं ब्राह्मण में अत्थि एतं भुत्वा वने वसा ति ।।

ब्राह्मणो "पातो व ताव होतु पच्छा जानिस्सामि"ति सिगालस्य सन्तिकं गतो, तेनापि किमत्थं ठितोसीति वुत्ते तथेवाह । सिगालो साधु दस्सामि ति तेन सद्धिं सल्लपन्तो दुतियं गाथमाह–

दुस्सं मे खेत्तपालस्य रत्तिभत्तं अपाभतं ।
मंससूला च द्वे गोधा एकञ्चदधिवारकं ।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वसा"ति।

ब्राह्मणो" पातो व ताव होतु पच्छा जानिस्सामि"ति मक्कटस्स सन्तिकं गतो तेनापि किमत्थं ठितोसी"ति वुत्ते तथेवाह । मक्कटो " साधु दस्सामि"ति तेनसद्धिं सल्लपन्तो ततियं गाथमाह-

अम्बपक्कोदकं सीतं सीतच्छायं मनोरमं ।
इदं ब्राह्मण मे अत्थि एतं भुत्वा वने वसा"ति ।।

ब्राह्मणो " पातो व ताव होतु, पच्छा, जानिस्सामि" ति ससपण्डितस्स सन्तिकं गतो, तेनापि किमत्थं ठितोसी"ति वुत्ते तथेवाह ।- - - - अहं अत्तानं परिच्चजित्वा अङ्गारगब्भे पतिस्सामि, मम सरीरे पक्केत्वं मंसं खादित्वा समणधम्मं " करेय्यासि" ति ते सद्धिं सल्लपन्तो चतुत्थं गाथमाह-

न ससस्स तिला अत्थि न मुग्गा न तण्डुला ।
इमिना अग्गिना पक्कं ममं भुत्वा वने वसा"ति ।।

उपर्युक्त गाथाओं का भावसाम्य जातकमाला के इन श्लोकों में है -

मीनारिभिर्विस्मरणोज्झिता वा त्रासोत्प्लुता वा स्थलमभ्युपेताः ।
खेदप्रसुप्ता इव सप्त मत्स्या लब्धा मयैतान्निवसेह भुक्त्वा ।।
एका च गोधा दधिभाजनं च केनापि सन्त्यक्तमिहाध्वगच्छन् ।

तन्मे हितावेक्षितयोपयुज्य वनेऽस्तु तेऽस्मिन्गुणवासवास: ।।

आम्राणि पक्वान्युदकं मनोज्ञं छाया च सत्सङ्गमसौख्यशीता ।

इत्यस्ति मे ब्रह्मविदां वरिष्ठ भुक्त्वैतदत्रैव तवास्तु वास: ।।

न सन्ति मद्गान तिला न तण्डुलावने विवृद्धस्य शशस्य केवन् ।

शरीरमेतत्त्वनलभिसंस्कृतं ममोपयुज्याद्य तपोवने वस[1] ।।

चरियपिटक मे भी आयी कथा[2] में कोई अन्तर नहीं है । यथा-

न मे अत्थि तिला मुग्गा मासा व तण्डुला घतं ।

अहं तिणेन यापेमि न सक्का तिणदातवे ।।

यदि कोचि एति दक्खिणेय्यो भिक्खाय मम सन्तिके ।

दज्जाहं सकमत्तानं न सो तुच्छो गमिस्सति ।।

चरियापिटक के इन पद्यों की छाया जातकमाला में देखिए-

अतिथेरभ्युपेतस्य सम्मानं येन तेन वा ।

विधातुं शक्तिरस्त्येषामत्र शोच्योऽहमेव तु ।।

समधिगतमिदं मयातिथेयं हृदय विमुन्च यतो विषाददैन्यम् ।

समुपनतमनेन सत्करिष्याम्यहमतिथिप्रणयं शरीरकेण ।।

7• अगस्त्य जातक-

बोधिसत्व एक समय महान् ब्राह्मणवंश में जन्म लेते हैं । गृहस्थी को

---

1• जातकमाला शश जातक श्लोक 26-29

2• ससपण्डितचरिया

अनेक अपकर्मों व आपदाओं का स्थान समझकर उन्होंने तपोवन का आश्रय लिया वहाँ भी उपलब्ध फल-मूलादि से अतिथि सत्कारकरते थे। इनकी तपश्चर्या से विचलित इन्द्र परीक्षा लेने आये और फलमूलादि लुप्त कर दिया, इस पर वह पत्ते उबालकर खाने लगे। इसी क्रम में व्रतकाल में इन्द्र रोज आते और वे उबाले पत्ते उन्हें देकर निराहार ही रहते। प्रसन्न इन्द्र ने तप का कारण पूँछा औरप्रसन्न होकर उनको वर दिये। बोधिसत्व ने कहा कि मेरे पास लोभ न फटके, द्वेषाग्नि दूर रहे, मूर्खों का संसर्ग न हो, धीर सज्जनों सेसम्पर्क हो, अक्षय धन हो और दित्सा हो तथा इस दिव्य रूप में आप कभी दर्शन न दें। इसके बादउपसंहार के साथ कथा समाप्त हो जाती है।

पालि जातक[1] थोड़ा भिन्न रूप में है। उसके अनुसार बोधिसत्व बहन के साथप्रव्रजित होते हैं लेकिन बाद में छिपकर उससे दूर चले जाते हैं। फल के समय फल, पत्तों के समय पत्ते ही उबालकर खाते। तीन दिन तक इन्द्र को उबले पत्ते देकर निराहार रहे तब इन्द्र तप का कारण पूछते हैं, आदि।

पालि जातक की गाथा सं० 12 अपने संस्कृत रूपान्तर के साथ जातक-माला में द्रष्टव्य है-

धीरं पस्से सुणे धीरं धीरेन सह संवसे।

धीरेन अल्लाप संल्लाप तं करे तं च रोचये।।

वीक्षेय धीरं श्रृणुयां च धीरं स्यान्मे निवास: सह तेन शक्र

---

1• 480 वाँ अमित्त जातक"

सम्भाषणं येन सदैव भूयादेतत् वरं देववरप्रयच्छ ।।[1]

इसी प्रकार गाथा सं0 19-21 का स्पष्ट रूपान्तर देखिए-

वरं च मे अदो सक्क सब्बभूतानं इस्सर ।
न मं पुन उपेय्यासि एतं सक्क वरं वरे ।।
बहूहि बत चरियाहि नरा च अत्थ नारियो ।
दस्सनं भाभिकङ्खन्ति किं नु मे दस्सने भयंमु ।।
तं तादिसं देववण्णं सब्बकाम समिद्धिनं ।
दिस्वा तपो पमज्जेय्य एतं ते दस्सने भये ।

तथा- वरं ममानुग्रहनम्पदाकरं ददासि चत्सर्वदिवौकसां वर ।
न माभ्युपेयाः पुनरित्यभिज्ज्वलन्निमं वरं दैत्यनिसूदनवृणे ।
जपव्रतेज्याविधिना तपश्रमैर्जनोऽयमन्विच्छति दर्शनं मम ।
भवान्पुनर्नेच्छति केन हेतुना वरप्रदित्साभिगतस्य मे सतः ।।
निरीक्ष्य ते रूपममानुषाद्भुतं प्रसन्नकान्तिज्वलितं च तेजसा ।
भवेत्प्रमादस्तपसोति मे भयं प्रसादसौम्यादपि दर्शनात्तव[2] ।।

इसी प्रकार प्रायः सभी गाथाएंपूर्ण साम्ययुक्त रूप में जातकमाला में विद्यमान हैं[3] ।

---

1• श्लोक28
2• जातकमाला श्लोक 36-38
3• तुलनीय गाथानं 2=श्लोक 12

| | गाथा | श्लोक |
|---|---|---|
| 4-= 14-15 | 12;13 | 28 |
| 6= 17-18 | 14 | 30,31 |
| 8,9 = 20-22 | 16,17 | 34 |
| 10, 24-26 | | |

चरियापिटक में भी यही कथा दस गाथाओं में संक्षिप्त रूप में वर्णित है लेकिन कथा अधूरी है ।

8• मैत्रीबल जातक-

इस जातक के मूल स्रोत का पता अब तक नहीं चल सका है । इसके अन्तर्गत मैत्रीबल नामक राजा के औदार्य का वर्णन है । पाँच मांसभक्षी यक्षों को उनके माँगने पर अपना ताजा मांस और गरम-गरम रक्त देकर उसने प्रसन्न किया था और उनके इस उदारता एवं उद्देश्य से उन क्रूरकर्माओं का स्वभाव भी बदल गया तथा हिंसा न करने का राजा को वचन दिया । इस प्रकार 66 श्लोकों में राजा की वादान्यता का विस्तृत वर्णन है ।

9• विश्वन्तर जातक-

एक बार बोधिसत्त्व शिबिराज सञ्जय के विश्वन्तर नामक राजकुमार के रूप में जन्मे । विदेशी एक राजा ने ब्राह्मणों को भेजकर सुलक्षण गजेन्द्र को दानवीर विश्वन्तर से दान मंगवा लिया । सिबिलोग उस गजेन्द्र को राजलक्ष्मी मानते थे अतः कुमार के इस अनावश्यक दानवीरता से क्रुद्ध होकर राजा से आग्रहक कुमारको राज्य से निकलवा दिया । उनका अनुसरण उनकी पत्नी मद्री, पुत्र जाली तथा पुत्री कृष्णाजिना ने भी किया । बंकपर्वत में निर्वासित रहते हुए उनसे एक बारएक ब्राह्मण ने बच्चों कीभी याचना की । मद्रीकी अनुपस्थिति में ही राजा ने बच्चे दान कर दिये । इस अवसर पर संस्कृत साहित्य में अन्यत्र दुष्प्राप्यकरूण रस का प्रवाह है । इस दान से विस्मित इन्द्र परीक्षार्थ आये और उनके माँगने पर राजा ने अपनी पत्नी भी सहर्ष दान कर दिया । तब चकित इन्द्र ने साशीष बताया कि आपके पिता बच्चों को लेकर शीघ्र आपके पास

आरहे हैं । राजा संजय आते हैं और विश्वन्तर को ले जाकर राजा बना दिया जाता है ।

जातकट्ठकथा में यह कथा " महावेस्सन्तरजातक"[1] के नाम से आई है तथा एक स्वतंत्र महाकाव्य सा है जिसमें 807 गाथाएं है । मूलकथा प्रारंभ होने से पहले यह बता दियागया है कि वेस्सन्तर के माता पितापूर्व जन्म में कौन थे, कैसे उनको मातृत्व-पितृत्व का अवसर प्राप्त हुआ । कथा में मुख्य अन्तर एक यह है कि पालि कथा में वेस्सन्तर अपने वनगमन के बादपत्नी को दूसरा पति खोज लेने को कहते हैं भले ही वह साथ ही चल देती है । इसमें प्रकृतिवर्णन भी जातकमाला की अपेक्षा विस्तृत है । विश्वन्तर के वनगमन के बाद में फुसती का विस्तृत विलाप आया है जो जातक माला में अप्राप्य है । इसी प्रकार परिजनों एवं पुरजनों का भी वर्णन यहाँ हुआ है । इसी प्रकार विश्वन्तर द्वारा प्रव्रज्या की अनुमति माँगना तथा कामयोगी पिता का निन्दित किया जाना भी जातकमाला में नहीं है । इतना ही नहीं पालि में संजय माद्री को वन का भयावह वर्णन कर रोकना चाहते हैं किन्तु मद्री कष्टकर वैधव्य जीवन को त्याग कर हर कीमत पर बन जाने को आतुर है और श्वसुर द्वारा कहे जाने पर भी पुत्र-पुत्री को छोड़े जाने को तैयार नहीं है । इतना वर्णन अधिकही है । इसी प्रकार पालि के अनुसार वेस्सन्तर शाम तक चेतिय राष्ट्र पहुँचे वहाँ भी राजा औरपुरवासियों द्वारा रोके जाने औरराज्य देने को भी वेस्सन्तर स्वीकार नहीं करते । उसके बाद पूजक नामक कलिगवासीवृद्ध ब्राह्मण का विस्तृत वर्णन है जो अपनी नवयौवना पत्नी के आग्रह से बच्चों को दासत्व के लिए

---

1. 547 वाँ जातक

मॉगने आता है। पालि की कथा के अनुसार जब ब्राह्मण बच्चों को ले जा रहा था तो ब्राह्मण के गिरने एवं बन्धन टूट जाने से दो बार बच्चे लौट-कर करूण उपालम्भ देते हैं। कहीं समय से आकर माँ बच्चों को रोक न ले अतः हिमवन्तवासी देव हिंसक जीवों का रूप धारण कर उसका रास्ता रोके दिखाये गये हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जातकट्ठकथा में कथा का विस्तार अधिक ही है जिसमें उसको लघु करने एवं काव्यात्मक बनाने में आर्यसूर को थोड़ा काट छाँट करनी पड़ी है इस प्रकार पालि जातक दसवरकथा, हिमालयवर्णन, दानकाण्ड वनप्रवेशकाण्ड, पूजककाण्ड महावनवर्णन, कुमारपर्व, मद्रीपर्व, शक्रपर्व, महाराजपर्व, क्षत्रियकाण्ड एवं नगर काण्ड नामक काण्डों में विभक्त है/मुख्य कथा में कोई विभेद नहीं दिखाई पड़ता। कतिपय साम्यमूलकदृष्टान्तदेखिए-

नेस धम्मो महाराज यं त्वं गच्छेय्यय एकको।
अहम्पि तेन गच्छामि येन गच्छसि खत्तिय[1]।।

तथा नैषधर्मो महाराज यद्याया वनमेकक:।
तेनाहमपि यास्यामि येन क्षत्रिय यास्यसि।।

एवमेव अम्मा च तात निक्खन्ता त्वञ्च नो तात दस्ससि[2]।
याव अम्मम्पि पस्सेमु अथ नो तात दस्ससि[3]।।

---

1. गाथा नं0 73
2. श्लोक नं0 31
3. गाथा नं0 489

तथा अम्बा च तात निष्क्रान्ता त्वञ्च नौ दातुमिच्छसि।
यावत्तामपि पश्यावस्ततो दास्यति नौ भवान्॥[1]

अपरञ्च एहि कण्हे रिस्साम नत्थत्थो जीवितेन नो।
दिन्नम्हापि जनिन्देन ब्राह्मणस्स धनेसिनो[2]॥

तथा एहि कृष्णे नरिष्याव: को न्वर्थो जीवितेन नौ।
दत्तावां नरेन्द्रेण ब्राह्मणाय धनैषिणे[3]॥

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि कतिपय गाथाएंमात्र संस्कृत रूपान्तरहैं। भावसाम्य तो सर्वत्र विद्यमान ही है[4]।

चरियापिट में "वेस्सन्तरचरिया" नाम से यही कथा वर्णित है जिसकी कथा ठीक जतकट्ठकथानुसार है। जिसकी 17 गाथाएं अक्षरश: जातकट्ठकथा की गाथाएं ही है[5]।

10 यज्ञ जातक-

एक बार बोधिसत्त्व राजा हुए। उनकी प्रजा के अपकर्मों से राज्य में अनावृष्टि के कारण व्याकुलता छा गई। पुरोहितों एवं वृद्ध ब्राह्मणों ने वेदविहित यज्ञ को वृष्टि का कारण बताया साथ ही सैकड़ों पशुहिंसा से युक्त विधि भी बतायी। राजा ने सोचा कि भला पशु हिंसा से धर्म, स्वर्ग या देवता-प्राप्ति का क्या सम्बन्ध हो सकता है। उसने घोषित किया कि वह सहस्रनरमेधयज्ञ करेगा

---

1· श्लोक 64
2· गाथा नं0 524
3· श्लोक नं0 72
4· तुलनीय गाथा नं0 463-65 श्लोक नं0 56,57

लेकिन जो भी दुर्विनीत, दुराचारी हैं उन्हीं को यज्ञपशु बनाया जायेगा। इस पर सारी प्रजा धर्मशील और सदाचारी बन गई और अनावृष्टिजन्य विप्लव दूर हो गया। कोष से धन लुटाकर भी राजा ने प्रजा को समृद्ध बना दिया।

इस जातक का पालि-स्रोत अबतक नहीं मिल सका है। हाँ पशुहिंसा की इतनी प्रबल निन्दा की गई है कि जिसके आधार पर इसका मूल स्रोत अवान्तरकालिक लगता है और बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म के मध्य द्वन्द्व की सूचना देता है। यह बात अवधेय है कि इसमें वर्णित पशुहिंसा की निन्दा से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह बौद्ध धर्म ही है जिसने कि वैदिक धर्म व दर्शन की आलोचना का सूत्रपात किया। वस्तुत: धर्म के हिंसात्मक रूप के विरुद्ध

---

| | तुलनीय गाथा नं० | श्लोक नं० |
|---|---|---|
| | 511-13 | 70-71 |
| | 515-518 | 73-75 |
| | 624- 626 | 85-87 |
| 2. | गाथा (चरियापिटक) नं० (7 10 | गाथानं०(जातकट्ठकथा) 16 17- |
| | 11-14 | 18-21 |
| | 16 | 24 |
| | 27 | 222 |
| | 30-31 | 224-225 |
| | 30-36 | 226-230 |
| | 50,51 | 648,649 |

उपनिषदों में भी विद्रोह दिखाईपड़ता है । जिनकी मौलिकता निश्चित रूपसे पूर्वबौद्ध कालीन है । इनमें आध्यात्मिक मुक्ति के साधन के रूप में माने गये हिंसा युक्त कर्म का परित्याग कर दिया गया है और मुक्ति का साधन ज्ञान माना गया है ।

11· शक्र जातक-

एक बार बोधिसत्व देवराज इन्द्र हुए । उनकी त्रिभुवन व्यापिनी कीर्ति को न सह सकने से दैत्यों ने उन पर धावाबोल दिया । युद्ध में देव सेना जब भाग चली तो अकेले इन्द्र ने डटकर सामना किया किन्तु युद्धस्थल छोड़ देना ही हितकर समझकर सारथि से रथ लौटवाया । शक्र ने लौटते हुए सामने एक श्यामल का वृक्ष देखा जिसमें गरूण शावक घोंसलें में भरे पडे थे । अत: सारथी सेपुन: लौटने को कहा तब सारथी मातलि ने कहा कि तब तक हम घिर जायेगे । इस पर बोधिसत्व ने कहा कि निरीह प्राणियों की हत्याकरके अपयश का टीका लगाने की अपेक्षा दैत्यराज की गदा से मर जाना अच्छा है । इसप्रकार उनके अचानक मुड़ते रथ को देखकर दैत्य घबड़ाकर भाग गये और देवों की विजय हुई ।

---

1· प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म ।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्यु पुनरेवापियन्ति ।। मुण्ड0 1·2·7

ब इष्टापूर्त मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढा।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं विशन्ति ।। वही 1·2·10

स एतद्ध स्म वै तद्विद्वांसं आहुर्ऋषय: कावषेया:
किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं यक्ष्यामहे । बृहदारण्य-

द तद्यथेह कर्मजितो लोक: क्षीयत -
एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोक: क्षीयते ।। छान्दो0 8·1·6

जातकट्ठकथा में यह कथा "कुलावकजातक"[1] में आयी है । लेकिन वहाँ इसमे एकजन्म पहेले की कथा भी जोड दी गई है । उस पूर्व जन्म में बोधिसत्व मवलग्राम में मघकुमार के नाम से जाने गये । उसने सम्पूर्ण ग्रामवासियो को पंचशील में प्रतिष्ठित किया जिससे ग्रामभोजक को कष्ट हुआ और उसने चुगलखोरी करके राजासे साथियों सहित मघकुमार को हाथी से कुचलवाने का आदेश दिलवाया लेकिन हाथी ने वैसा नहीं किया । इसका हेतु पूँछने पर मघकुमार ने पंचशील को बताया । स जन्म में मघकुमार के नन्दा , चित्ता, सुधम्मा तथा सुजाता नामक 4 भर्याएथी । सुजाता के अतिरिक्त सभी उसकी धर्मानुसारिणी थीं । अगले जन्म में मवकुमार शक्र हुआ और इससे आगे कथा समान है । समोधान में बतायागया है कि सुजाता के अलावा तीनों पूर्व पत्नियाँ इन्द्र की पत्नियाँ बनी थी । सुजाता शुभ कर्म न करने के कारण पहले बगुली हुई फिर अगले जन्म में कुम्भकार की पुत्री बनी और धीरे धीरे पंचशीला हो जाने के कारण अगले जन्म में वेपचित्त असुरेन्द्र की पुत्री होकर शक्र की पाणिग्रहीता बनी । शक्र जातक की मूलभूता जातकट्ठकथा की इस कथा में मात्र एक गाथा है -

कुलावका मातलि । सिम्बलिस्मि
ईसामुखेन परिवज्जयस्सु ।
कामं चजाम असुरेसु पाणं
मायिमे दिजा विकुलावा अहेसुं ।

---

1. 31 वाँ० ना०

जो जातक माला के निम्न श्लोकों का स्रोत है -

अजातपक्षद्विजपोतसङ्कुला द्विजालया: शाल्मलिपादपाश्रया: ।
अमी पतेयुर्न यथा रथेषया विचूर्णिता वाह्य मे रथं तथा ।।
अस्मान्निवर्तय रथं वरमेव मृत्यु -
दैत्याधिपप्रहितभीमगदाभिघातै: ।
धिग्वाददग्धयशसो न तु जीवितं मे ।
सत्त्वान्यमूनि भयदीव मुखानि हत्वा ।।[1]

12. ब्राह्मण जातक-

एक समय बोधिसत्त्व एक ब्राह्मणकुल मे जन्म लेते हैं । उनकी योग्यता और गुरूभक्ति ने गुरू को प्रेम व प्रसन्नता से भर दिया । शिष्यों की शील परीक्षा हेतु गुरू ने अपनी गरीबी का दुखदवर्णन किया और द्विजों के लिए चोरी को आपद्धर्म बताकर चोरी करके अपनी गरीबी दूर करने का आदेश दिया । बोधिसत्व के अलावा सभी शिष्य इसअनुचित आज्ञा को कर्तव्य समझकर स्वीकार कर लिए । लेकिन बोधिसत्व मौन रहे । गुरू के पूँछने पर बतायाकि मेरे मन में आपके प्रति स्नेह कम नहीं है, न मैं कठोर हृदय हूँ । मैं चुप हूँ क्यों यह कार्य उचित नहीं है । यस्मात् किसी के लिए भी छिपकर पाप करना उचित नहीं, एकान्त का कोई अस्तित्व नहीं है । पुण्यात्मा दिव्य दृष्टि से सर्वत्र देखते हैं । मनुष्य के कर्म कोई देखे यानहीं वह स्वयं तो देखता ही है । यह सब सुनकर गुरू का हृदय विभोर हो गया ।

---

1. श्लोक 11.13

जातकट्ठकथा में यह कथा " सीलवीमंसन जातक"[1] के अन्तर्गत है । थोडा सा अन्तर यह है कि इसमें आचार्य ने सदाचारी शिष्य के साथ पुत्री का विवाह करने के लिए विद्यार्थियों से वस्त्राभूषणचुराने के लिए कहा है । उसकी प्रथम गाथा जातकमाला में भाषान्तर के साथ देखी जा सकती है-

नत्थि लोके रहो नाम पापकम्मं पकुब्बतो,
पस्सन्ति वनभूतानि तं बालो मञ्जती रहो
अहं रहो न पस्सामि सुञ्ञं वापि न विज्जति ।
यत्थ अञ्ञं न पस्सामि असुञ्ञं होति तं मया ।।
नास्ति रहो नाम पापं कर्म प्रकुर्वतः ।।
अदृश्यानि हि पश्यन्ति ननु भूतानि मानुषान् ।।
कृतात्मानश्च मुनयो दिव्योन्मिषितचक्षुषः ।
तान्नपश्यन्रहोमानी बालः पापे प्रवर्तते ।।
अहं पुनर्न पश्यामि शून्यं क्वचन किञ्चन ।
यत्राप्यन्यं न पश्यामि नन्वशून्यं मयैव तत् ।।[2]

13• उन्मादयन्ती जातक-

एकदा बोधिसत्व शिबिराज हुए । उनके एक प्रधान मंत्री की उन्मादयन्ती नाम्नी कन्या अपूर्व सुन्दरी थी । एक बार उसके पिता ने राजा सेपत्नी रूप

---

1• 305 वाँ जातक

2• जातकमाला श्लोक 13-14-15

में स्वीकारने की प्रार्थना की । राजाद्वारा भेजे गये स्त्रीपरीक्षक ब्राह्मण उसे देखकर विगलित धैर्य हो गये । उन्होंने सोचा कि इसकी रूप शोभा से राजा को उन्माद होगा और राज्य सम्पादन असम्भव हो जायेगा अतः आकर राजा से बताया कि यह स्त्री कुलक्षणा है । इस पर उसके पिता ने सचिव अभिपारक से इसका विवाह कर दिया । कौमुदी महोत्सव को देखने निकले राजा उसको देख कामार्त हो गये । जब जान गया कि वह सचिव की पत्नी है तो और अत्यधिक चिन्तित हुआ । अभिपारक राजा के अभिप्राय को समझकर बहुशः अपनी पत्नी को समर्पित करना चाहा किन्तु सच्चरित्र राजा ने किसी भी कीमत पर उसको स्वीकार नहीं किया ।

जातकट्ठकथा[1] में उम्मदन्ती के सौन्दर्य का हेतु भी बता दिया गया है कि पूर्व जन्म में अपने लाल वस्त्र का आधा भाग एक स्थविर को तन ढकने के लिए दिया था अतः इतनी सुन्दर हुई । कुछ पद्यों की समानता भाषान्तर मात्र है[2] ।

भूतानि मे भूतपती नमस्सतो
आगम्म यक्खो इदं एवं अब्रवि ।
रञ्ञो मनो उम्मदन्त्या निविट्ठो
ददामि ते तं परिवारयस्सु ।। (15) गाथा तथा-

---

1. उम्मदन्ती जातक, 527 वाँ
2. तुलनीय पालिगाथा नं० जातकमाला श्लोक नं०

| पालिगाथा नं० | जातकमाला श्लोक नं० |
|---|---|
| 5 | 12 |
| 17 | 22 |
| 18,19 | 26-27 |
| 30-32 | 30-31 |
| 35 | 32 |
| 41 | 33 |
| 34 | 34 |

अथार्चयन्तं नरदेव देवान्नाकादुपेत्याम्बुरुहाक्ष यक्षः ।
मामाह नावैषिनृपस्यकस्मादुन्मादयन्त्यां हृदये निविष्टं ।।

तथा 17 श्लोक

पुञ्ञा च धंसि अमरो न चम्हि जनो च नो पापं इदं तिजजञ्ञा।
भुसो च त्यस्सा मननो विघातो दत्वा पियं उम्मदन्तिं अदिटग ।।

तथा गाथा 16

पुण्याच्चयुतः स्याममरो न चास्मि विद्याच्च नः पापमिदं जनोऽपि
तद्विप्रयोगाच्च मनो ज्वरस्त्वां बहिनः पुरा कथामिव क्षिणोति ।।

अपरन्च- श्लोक- 19

गावं चे तरमानानं जिम्हं गच्छति पुंगवो ।
सब्बा ता जिम्हं गच्छन्ति नेत्ते जिहम्हगते सति ।।
एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो
सो चे अधम्मं चरति पगेव इतरा पजा
सब्ब रट्ठ दुःखं सेति राजा चे होति अधम्मिको ।।

(गाथा 48-49)

यथा-

जिह्मं शुभं वा वृषप्रचारं गावोऽनुगा यद्वदनुप्रयान्ति ।
उत्क्षिप्तशङ्काङ्कुशनिर्विघट्टं प्रजास्तथैव क्षितिपस्य वृत्तिम् ।।
(श्लोक 39)

"कथा सरित्सागर" में भी उन्मादयन्ती कथा तीन स्थानों में वर्णित है[1]।

---

1. तृतीयलम्बक प्रथम तरंग-
उन्मादिनीति नाम्ना च कन्यका सापि पप्रथे ।
उन्माद्यति मतस्तस्या रूपं दृष्ट्वाऽखिलो जनः ।।
षष्ठ लम्बक, सातवां तरंग

14 सुप्पारग जातक-

एकबार बोधिसत्त्व कुशल नाविक के घरपैदा हुए । सागर यात्रा में सिद्ध होने के कारण इन्हें सुपारग कहते थे । एक बार सुवर्णभूमि के बनियों ने सफल यात्रा के लिए उनको जहाज परचढा लिया। जहाज क्रमश: मध्यसागर, खुरमाली, दधिमाली, अग्निमाली, कुशमाली, नलमाली और अन्तत: बडवामुख में पहुंचा। क्रमश: प्राप्त होने वाले इन समुद्रो का भयानक दृश्य बनिये बताते जाते और तल्लक्षणानुसार बोधिसत्त्व समुद्रों का नाम बताते जाते । मृत्युद्वार वड़वामुख में पहुँचकर बनियों के जीवन की आशा छोंडकर व्याकुल होने पर सुपारग ने देवों को सुनाते हुए कहदिया है कि मैंने कभी प्राणि-हिंसा न की हो तो सकुशल जहाज लौट जाये । इस प्रकार उनके पुण्यबल से जहाज सकुशल लौट आया । उनके निर्देशानुसार बनिये नलमाली आदि समुद्रों से वैदूर्यादि मणियों को कंकण-पत्थर समझकर ले आये थे । तट पर पहुँचकर प्रेमविह्वल उन्होंने सुपारग की पूजा अर्चना की ।

पालि जातक में आँख में नमकीन जलपड़ जाने से सुपारक को अन्धा बतायागया है -

"तस्स अपरभागे लोणजलपहटानि द्वेपि चक्खूनि नस्सिंसु ।" तब से वह राजा का मूल्य निर्धारक बन गया । वह वस्तुओं को छूकर उसकी कमी बता देता था । लेकिन राजा हर बार उसको आठ कार्षापण पुरस्कार दे रहाथा ।

---

1. 463 वाँ जा सुप्पारकजातक

राजा का दान नाई के समान है अतः नाई का जाया होगा- यह सोचकर सुपारग अपने निवास भरुकच्छ वापस चला गया इसके बाद बनियों की समुद्री यात्रा है जो दोनों जगह समान है । आर्यशूर ने कतिपय गाथाओं का पालि संस्कृत रूपान्तर किया है -

> यतो सरामि अत्तानं यतो पत्तोस्मि विञ्ञुतं
> नाभिजानामि संचिच्च एकपाणम्पि हिंसितं
> एतेन सच्चवज्जेन सोत्थिं नावा निवत्ततु ।।[1]

तथा-

> स्मरामि यद् आत्मानं यतः प्राप्तोऽस्मि विज्ञताम् ।
> नाभिजानामि सञ्चिन्त्य प्राणिनं हिंसितुं क्वचित् ।।[2]

इसी प्रकार प्रायः सभी गाथाओं का भावसाम्य जातकमाला में दृष्टव्य है।[3]

---

1. पालि गाथा नं० 13
2. श्लोक नं० 30
3. तुलनीय पालि गाथा नं० 1,2 — 12,13 श्लोक जातकमाला

| पालि गाथा | श्लोक जातकमाला |
|---|---|
| 1,2 | 12,13 |
| 3,4 | 16,17 |
| 5,6 | 14-15 |
| 7,8 | 18,19 |
| 9,10 | 20,21 |
| 11,12 | 22,23 |

15. मत्स्य जातक-

बोधिसत्त्व का जन्म एक बार मत्स्य योनि में हुआ । एक बार वर्षाधिकारियों के प्रमादवश वर्षा कम हुई । ग्रीष्मकाल में सभी तालाब, पोखर सूखने लगे । दीन, विषण्ण मछलियों को छटपटाते देखकर वहदया-विह्वल हो गये । तब यह सोचकर कि सत्य काप्रभाव ही इन प्राणियों का सहाराहो सकता है, कहने लगे कि कठोर विपत्ति में भी मैने कभी हिंसा नहीं की, यदि यह सत्य है तो देवराज बरसाकर तालाबों को भर दे। अतः असमय में ही बादल होकर वृष्टि से तालाबों को भर दिया । वर्षा का कमनीय वर्णनहुआ है । इन्द्र आकर क्षमा माँगते हैं और वचन देते हैं कि अब ऐसी असावधानी कभी नहीं होगी ।

पालि में आयी कथा[1] में भी कोई अन्तर नहीं है । हाँ उसमें मात्र एक गाथा का प्रयोग हुआ है-

अभित्थनय पज्जुन्न निधि काकस्स नासय ।
काकं सोकाय रन्धेहि मन्च शोका पमोचयाति ।।

जो जातकमाला के इस श्लोक से साम्य रखती है -

उद्गर्ज पर्जन्य गम्भीरधीरं प्रमोदमुद्वासय वायसानाम् ।
रत्नायमानानि पयोसि वर्षन्संसक्तविद्युतज्ज्वलितद्युतीनि ।।[2]

---

1. मच्छ जातक 75 वाँ जातक

2. मत्स्य जातक श्लोक नं0 14

16• वर्तिकापोतक जातक-

एक बार बोधिसत्त्व बटेर का बच्चा हुए। माँ बाप द्वारा लाये गये कीड़े-मकोड़े न खाने के कारण उनकी देह व पंख दुबले ही रह गये। उसी समय जंगल में आग लगी और उनके घोंसले तक पहुँच गयी। तब दुर्बल बोधिसत्त्व के अलावा सभी उड़कर भाग गये। उन्होंने अनुनयपूर्वक कहा कि मेरे छोटे पैरों को अभी पैर भी नहीं कहा जा सकता, पंख भी ठीक से नहीं जमे हैं। आपके डर से मेरे माँ-बाप भी उड़गये। आपके आतिथ्य योग्य यहाँ कुछ भी नहीं है अतः आपका लौट जाना ही उचित है। उनकी यह पवित्र वाणी सुनकर आग सरिता में पहुँचने के समान शान्त हो गयी। इस प्रकार सत्यवचन की महिमा वर्णित की गई है।

जातकट्ठकथा[1] में अग्निदेव के लौटने की प्रार्थना तो इन्हीं शब्दों में है-

> सन्ति पक्खा अपतना सन्ति पादा अवञ्चना।
> माता पिता च निक्खन्ता जातवेद। पटिक्कमा"ति।
> व्यायर्थाभिधानचरणोऽस्म्यविरूढपक्ष
> स्त्वत्सम्भ्रमाच्च पितरावपि मे प्रडीनौ।
> त्वद्योग्यमस्ति न च किञ्चिदिहातिथेय-
> मस्मान्निवर्त्तितुमतस्तव युक्तमग्ने ॥

---

1• वट्टकजातक 35 वाँ जा०

और जातकमाला के अनुसार इन्हीं शब्दों से अग्नि शान्त भी हो जाती है किन्तु पालि में गाथा की वेय्याकरण के बाद बोधिसत्व के सत्यक्रिया का भी वर्णन है-

इति महासत्तो सचे मय्हं पक्खानं अत्थिभावो ते च पसारेत्वा आकासे अपतनभावो स सच्चं पादानं अत्थिभावो वेद उक्खिपित्वा अवञ्चनभावो मातापितुन्नं कुलावके येव छड्डेत्वा पलातभावो च सब्बो सभावभूतो येव जातवेद । एतेन स्ववेन त्वं पटिक्कमाहि ।

चारियापिटक में भी यही कथा "वट्टपोतक चरिया" के अन्तर्गत वर्णित है । साथ ही उपर्युक्त गाथा के अतिरिक्त पालि जातक में वर्णित शेष दो गाथाएं भी है-

अत्थिलोके शीलगुणो सच्चं सोचेय्यनुद्दया ।

तेन सच्चेन कहामि सच्चकिरियमुत्तम ।।

सहसच्चे कते मय्हं महापज्जलितो शिखी ।

वज्जेसि सोलसकरीसानि उदकं पत्वा यथा शिखी ।।"

महाभारत में भी[1] यह कथा आयी है । वहाँ बच्चों के पिता मन्दपाल ऋषि अण्डे से निकलने के पूर्व ही सपत्नी के पास चले जाते हैं और खाण्डववन दाह की आग रास्ते में देख वहीं अग्नि से बच्चो को न जलाने की प्रार्थना करते हैं ।

---

1. महाभारत आदिपर्व, 228 से 231 अध्याय (शार्ङ्गकोपाख्यान)
माता प्रणष्टा पितरं न विद्मः पक्षा जाता नैवनो धूमकेतो ।
न नरस्त्राता विद्यते वै त्वदन्यस्तस्मादस्मांस्त्राहि बालांसत्वमग्ने
वही 231 अध्यायश्लोक 9
तथा तत् कृतवानग्निरभ्यनुज्ञाय शार्ङ्गकान् ।
ददाह खाण्डवं दावं समिद्धो जनमेजय: ।। वही 25 वाँ श्लोक

घोसों में माँ जरिता का मार्मिक विलाप है और बच्चों के अतिशय प्रार्थना पर माँ का घोंसला छोड़कर उड़ना वर्णित है और तब शारङ्गकों के स्तवन से प्रसन्न अग्निदेव का अभयदान देना विवृत है ।

17• कुम्भजातक –

एक बार बोधिसत्व शक्र हुए । मनुष्यलोक का भ्रमण करते हुए उन्होंने सर्वमित्र नामक राजा को कुसंगति में पड़कर मद्य में मस्त देखा । मद्य के नाना दोषों को विचार कर उन्होंने उसकी चिकित्सा करनी चाही । वह ब्राह्मण रूप में एक घड़ा लेकर गये । सत्कार के बाद शराब के नाना दोषों को बताते हुए राजा से ऐसी दोषयुक्त मदिरा से भरे उस घड़े को लेने को कहा । शक्र की हृदयाकर्षक युक्तियुक्त बातें सुनकर मद्यपान से विमुख होकर राजा ने कहा कि आप हमारी पूजा स्वीकार करें तब शक्र ने कहा कि मेरा कहना मानिए , यही मेरी पूजा होगी – यह कहकर अन्तर्हित हो गये ।

पालि में[1] यह कथा कुछ भिन्न है । उसके अनुसार सुरा नामक एक जंगली मनुष्य हिमालय गया, वहाँ एक वृक्ष के खोखले में पानी भर जाता था और आस पास के हरड़,आँवला और मिर्च के वृक्षों से उनके फल भी उससे गिरते थे और तोतों द्वारा लाये धान के चावल भी। धूप में पककर वह मादक द्रव्य बन गया । जो पक्षी, वानर आदि उस जल को पीते बेहोश होकर नीचे गिर पड़ते

---

1• 512 वाँ जातक

और कुछ देर बादपुन: भाग जाते । उस जंगली मनुष्य ने कौतुकवशात् उसको पिया और माँस खाने की इच्छा होने पर वहीं पडे जीवों को पकाकर खाया । यह बात पार्श्ववर्ती वरुण तपस्वी से बताया और दानों वैसा ही करते । इनके अविष्कार के कारण ही यह पेय सुरा और वारुणी कहलायी । क्रमश: बात राजा तक पहुँची। इसके दोषों से पूरा नगर सूना हो गया । वहाँ से भाग ये दोनों श्रावस्ती के सर्वमित्र राजा को इससे अवगत कराया । तब देवेन्द्र का आना और मदिरा का दोष वर्णन वैसा ही जैसा जातकमालाकार ने किया है । कतिपय पालि गाथाएं मात्र संस्कृत रूपान्तर है यथा-

धञ्ञ धनं रजतं जातरूपं खेत्तं गवं यत्थ विनाशयन्ति ।
उच्छेदनि वित्तवतं कुलानं तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ ।।[1]

तथा- यत्प्रसक्तानि कुलानि नैशुर्लक्ष्मीनिकेतान्युदितोदितानि ।
उच्छेदनी वित्तवतां कुलानां सेयं घटे क्रेयुयतयाधिरूढा ।।[2]

अपरञ्च - ददामि ते गामवरानि पंच दासीसतं सत्त गवं सतानि ।
आजञ्ञयुत्ते च रथे दसा इमे आचरियो होसि ममत्थकामो ।।[3]

और ददामि ते ग्रामवरांश्च पञ्च दासीशतं पञ्चगवाँ शतानि ।
सदश्वयुक्तांश्च रथान्दशेमान्हितस्य वक्ता हि गुरुर्ममासि ।।[4]

---

1. गाथा- 14
2. श्लोक- 19
3. गाथा 29
4. श्लोक- 31

वैसे तो प्राय: सभी गाथाओं की स्पष्ट छाया जातकमाला में द्रष्टव्य है।

18• अपुत्र जातक-

एक समय बोधिसत्व सदाचारी कुल में उत्पन्न हुए। माता- पिता की मृत्यु के बाद वैराग्य हो गया और एक वन में तपस्या करने लगे। उनके पिता के मित्र उनको उस उम्र में तपश्चर्या न कर गृहस्थी को भोगने के लिए कहने लगे। इस पर बोधिसत्व द्वारा गृहस्थी की निस्सारता एवं विषय भोग की निन्दा पूरे जातक में वर्णित है। इस जातक का पालि स्रोत अब तक नहीं मिल सका।

19• बिस जातक-

अपने एक पूर्व जन्म में बोधिसत्व एक विख्यात ब्राह्मण हुए। उनके छ: छोटे भाई तथा एक बहन उन्हीं के अनुवर्ती थे।माता- पिता की मृत्यु के बाद बोधिसत्व को वैराग्य हुआ और प्रव्रज्या के लिए उनका सभी ने अनुसरण किया साथ ही एक दासी व दास भी प्रव्रजित हुए। वह दासी सरोवर से कमलनाल निकालकर सबका हिस्सा लगाकर लकड़ी की चोट से आहार की वेला सूचित कर हट जाती और वय: क्रम से वे अपना हिस्सा लेकर अपने- अपने आश्रम में जाते। बोधिसत्व की परीक्षार्थ इन्द्र ने आकर उनके पाँच दिन तक हिस्से चुरा देते थे और वह निराहार ही रहते। दुर्बलता देख भाइयों द्वारा पूछने पर

---

1• 

| तुलनीय पालिगाथा नं | श्लोक नं0 |
|---|---|
| 1-3 | 7-11 |
| 4,5 | 12,13 |
| 6,8 | 14 |
| 7 | 15 |
| 9,22 | 16 |
| 25 | 18 |

उन्होंने सब कुछ बता दिया । इस पर सभी अपनी सत्यता प्रकट करने के लिए शपथ लेते हैं । वहाँ रहने वाले एक यक्ष, हाथी व वानर भी । बोधिसत्त्व ने भी शपथ लिया कि यदि मैंने किसी पर शंका की हो तो कामोपभोग में लीन रहकर घर में ही मरूँ । कामोपभोग की निन्दा सुनकर इन्द्र प्रकट होकर कारण पूछते हैं और तब गृहस्थी की निस्सारता का वर्णन है ।

अवधेय है कि आर्यशूर के इस जातक में समाधान भी है जिसे कर्न ने प्रक्षिप्त माना है -

अहं शारद्वतीपुत्रो मौद्गल्यायनकाश्यपौ ।
पूर्णानिरुद्धावानन्द इत्यासन्भ्रातरस्तदा ।।
भगिन्युत्पलवर्णासीद्दासी कुब्जोत्तराभवत् ।
चित्रो गृहपतिर्दासो यक्षा सातागिरिस्तदा ।।

आर्यशूर ने कथा को थोड़ा बदला भी है । पालि के अनुसार[1] माता पिता ने बच्चों को क्रमशः गृहस्थी बसाने के लिए कहा था लेकिन वे तैयार नहीं हुए । उनकी मृत्यु के बाद सब प्रव्रजित हो गये । पालि में बोधिसत्त्व, बहन तथा दासी को छोड़कर सभी को बारी- बारी से फलाफल लाते दिखाया गया है ।

---

1. भिस जातक 488 वाँ

साथ ही तीन दिन बादबोधिसत्व स्वयं पूछते हैं कि मेरा हिस्सा लगता है या नहीं?कौन चुराता है ? इसके बाद की कथा उभयस्थानों में समान है ।

आर्यशूर ने कतिपय गाथाओं को मात्र संस्कृत में रूपान्तरित किया है यथा-

अस्सं गवं रजतं जातरूपं भरियञ्च सो इध लभतं मनापं ।
पुत्तेहि दारेहि समङ्गि होतु भिसानि ते ब्राह्मण यो अहासि ।।[1]

तथा समृद्धिचिह्नाभरणं स गेहं प्राप्नोतु भार्याञ्च मनोभिरामाम् ।
समग्रतामेतु च पुत्रपौत्रैर्बिसानि ते ब्राह्मणयो ह्यहार्षीत् ।।[2]

अज्झायकं सब्बसमत्तवेदनं तपस्सिनं मञ्ञतु सब्बलोको ।
पूजेतु न जानपदा समेच्च भिसानि ते ब्राह्मण यो अहासि ।।[3]

तथा अध्यापकं सम्यगधीतवेदं तपस्विसम्भावनया महत्या ।
अर्चन्तु तं जानपदाः समेत्य बिसेषु लुब्धो न गुणेषु यस्ते ।।[4]

एवमेव सो गामणी होतु सहायमज्झे नच्चेहि गीतेहि पमोदमानो ।
सो राजतो ब्यसनं अलत्थ किञ्चि भिसानि ते ब्राह्मण यो अहासि ।।[5]

तथा स ग्रामणीरस्तु सहायमध्ये स्त्रीनृतगीतैरुपलाप्यमानः ।

---

1. गाथा- 1
2. श्लोक- 11
3. गाथा नं० 6
4. श्लोक- 16

ना राज्यस्य व्यसनानि लब्ध बिसार्थमात्मार्थमशीजमध: [1] ।।

वैसे तो सारा जातक मात्र संस्कृत रूपान्तर है । पालि की सभी गाथाएं जातकमाला के श्लोक ।। से लेकर छायावत् विवृत हैं ।

चरियापिटक[2] में यह कथा विवृत है औरप्रव्रज्या लेने तक संक्षिप्त कथा गाथाओं में वर्णित है, साथ ही माँ-बाप के भी साथ- साथ प्रव्रजित होने का वर्णन है-

उभो माता पिता मय्हं भगिनी च सत्तभातरो ।
अमितधनं छड्डयित्वा पाविसिम्हा महावनं ति ।।

20 वाँ श्रेष्ठि जातक-
---------------

बोधिसत्व एक बारश्र राजा के कोषाध्यक्ष हुए । उनकी अनुपस्थिति में एक बार उनकी सास बेटी से मिलने आयी । पतिविषयक समाचार पूछने पर पुत्री ने बताया कि उनके समान तो कोई प्रव्रजित भी दुर्लभ है । क्षीण-श्रवण-शक्ति के कारण सास ने प्रव्रजित शब्दसुनकर मान लिया कि वे प्रव्रजित हो गये हैं । और रोनें लगी । नारी के सहज स्वभाव के कारण पुत्री का दिल भी भर गया औरपूर्व प्रसंग को भूलकर वह भी रोने-चिल्लाने लगी । धीरे- धीरे नौकर चाकर, पड़ोसी सभी आ गये । लौटते समय घर के पासजब बोधिसत्वनेसुना कि मेरे प्रव्रज्या से दु:खी होकर ये रो रहे हैं तो सचमुच प्रव्रज्या के लिए वह राजा से अनुमति माँगने गये । वहाँ से लौटते समय बीच में बन्धु बान्धवों नें रोकना चाहा लेकिन उन्होंने सोचा कि यदि मुझसे इनको इतना स्नेह है तो मेरे साथ ये तपोवन ही क्यों नहीं चलते । इसप्रकार जातक के अन्ततक घर के दोषों का वर्णन है ।

जातकट्ठकथा में यह कथा "कल्याणधम्मजातक"[1] के नाम से आई है। कथा में कोई विभेद नहीं है। इसमें प्रयुक्त मात्र दो गाथाओं में पहली का संस्कृत रूपान्तर देखिए-

कल्याणधम्मोति यदा जनिन्द लोके समञ्ञा अनुपापुणाति।
तस्मा न हीयेथ नरो सपञ्ञो हिरियापि सन्तो धुरमादियन्ति ।।

तथा कल्याणधर्मेति यदा नरेन्द्र सम्भावनामेति मनुष्यधर्मा।
तस्या न हीयेत नरः सधर्मा ह्रियापि तावद्धुरमुद्वहेत्ताम्[2] ।।

21• चूळबोधि जातक-

एक बार बोधिसत्त्व ने ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर प्रव्रज्या ग्रहण की। उनका साथ पत्नी ने भी दिया। एक बार राजा वन में इनके पास पहुँच गया तो इनकी रूपवती भार्या को देखकर धैर्य-स्खलित हो गया। लेकिन तपोबल के भय के कारण पहले तपः शक्ति की परीक्षा लेना ही उचित समझा। उसने पूँछा कि आपकी पत्नी का कोई उपहरण करे तो वन में आप क्या करेगें। तपस्वी ने कहा कि जो मेरे प्रतिकूल आचरण करेगा मैं उसका बलपूर्वक दमन करूँगा। राजा ने यह समझकर कि यह स्त्री में आकण्ठ आसक्त है, महिला पदाधिकारियों से उस मुनि पत्नी को अन्तःपुर पहुँचवा दिया। और कहा कि अब क्यों चुप बैठे हैं।

---

1• 171 वाँ जातक

2• श्लोक- 18

तब मुनि ने कहा कि प्रतिकूल आचरण करने वाले को मैंने छोड़ा कहाँ ?
राजा के पूँछने पर बताया कि तुम्हारे प्रति उपजे क्रोध को मैंने दमित किया ।
इस अवसरपर क्रोध के दोषों कासविस्तार वर्णन है । प्रसन्न हो राजा ने
क्षमा- याचना पूर्वक पत्नी वापस कर दिया ।

चरियापिटक में भी इसी रूप में कथा "चूलबोधिचरिया" नाम
से आयी है । पालि जातकट्ठकथा[1] की कथा में भी कोई अन्तर नहीं है । पूरी
गाथाओं को जातकमालाकारने मानो संस्कृत रूप दिया हो ।

यम्हि जाते न पस्सति अजाते साधु पस्सति ।
सो मे उप्पज्जि नो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो ।।
ये जातेन नन्दन्ति अमित्ता दुक्खमेसिनो ।
सो मे उप्पज्जिनो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो ।।
यस्मिं च जायमानम्हि सदत्थं नावबुज्झति ।
सो मे उप्पज्जि नो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो[2] ।।

तथा- जाते न दृश्यते यस्मिन्नजाते साधु दृश्यते ।
अभून्मे स न मुक्तश्च क्रोधः स्वाश्रयबाधनः ।।
येनजातेन नन्दन्ति नराणामहितैषिणः ।
सोऽभून्मे न विमुक्तश्च क्रोध शात्रवनन्दनः ।।
उत्पद्यमाने यस्मिंश्च सदर्थं न प्रपद्यते ।
तमन्धीकरणं राजन्नहं क्रोधमशीशमम्[3] ।।

---

1. चुल्लबोधिजातक, 443 वाँ जातक
2. गाथा 6-9
3. श्लोक- 22- 25

22. हंस जातक-

बोधिसत्त्व एक समय मानसरोवर के हंसाधिपति हुए । मंत्री सुमुख सहित प्राणिहित में निरत उनके सद्गुणों से आकृष्ट राजा ने उनको देखने की इच्छा प्रकटकी और कृत्रिम सरोवर का निर्माण कराकर पकड़वाया । जाल में तो मात्र हंसराज ही बँधे थे किन्तु मंत्री सुमुख ने राजा का साथ नहीं छोड़ा । उनकी मित्रता एवं राजभक्ति से खुश कूर बहेलिये ने यद्यपि दोनों को मुक्तकर दिया था, तथापि व्याध का श्रम बेकार न जाय इस उद्देश्य से वे दोनों उसके साथ दरबार में गये । वहाँ इनके विषय में सब जाकर राजा को आश्चर्यमिश्रित खुशी हुई और हंसराज ने वहाँ राजा को शिष्टता पूर्वक धर्मोपदेश किया ।

पालि की कथा का आर्यशूर ने थोड़ा परिवर्तन किया है । पालि के अनुसार सुमुख नामक व्याध "मानुसिय" सरोवर में पेशेवर रूप से पक्षी पकड़ता था और उसी के जाल में हंसराजा फँसे थे, राजा ने उनको पकड़वाया नहीं था । फिर भी इस किञ्चित्कर अन्तर के बाद भी दोनों में पूर्ण भाव - साम्य है । आर्यशूर के अधिकांश श्लोक गाथाओं के मात्र संस्कृत रूपान्तर लगते हैं[1] यथा-

| गाथा नं० | श्लोक |
|---|---|
| 3,4,5 | 18,19,20 |
| 9,10,11 | 25,26 |
| 12,13 | 27,28 |

1. चुल्लहंस जातक जा० नं० 533

का नु पासेन बद्धस्स गति अञ्जा महानला ।

सा कथं चेतयानस्स मुत्तस्स तव रूच्चति ।

कं वा त्वं पस्ससे अत्थं मम तुय्ह च पक्खिम ।

ञातीनं वावसिट्ठानं अभिन्न जीवितक्खये ।।

यं न कञ्चनदेपिच्छ अन्धेन तमसा गतं ।

तादिसे सन्चजं पाणं कं अत्थं अभिजोतये[1] ।।

तथा- का नु पाशेन बद्धस्य गतिरन्या महानलात् ।

सा कथं स्वस्थचित्तस्य मुक्तस्याभिमता तव ।।

पश्यस्येवं किमर्थं उा त्वं ममात्मन एव वा ।

ज्ञातीनां वाविशेषणामुभयोर्जीवितक्षये ।।

लक्ष्यते च न यत्रार्थस्तमसीव समासमन् ।

तादृशे सन्त्यजन् प्राणान् कमर्थं द्योतयेद्भवान्[2] ।।

अन्यच्च- अद्धा एसो सतं धम्मो यो मित्तो मित्तं आपदे ।

न चजे जीवितस्सापि हेतु धम्मं अनुस्सरं[3] ।।

---

1. गाथा नं० 5-7

2. श्लोक नं० 30-32

3. गाथा नं० तुलनीय गाथा नं० 2,4 श्लोक 27·29

| | |
|---|---|
| 8,9 | 33,34 |
| 11-13 | 36-38 |
| 19 | 39-40 |
| 20-21 | 43-44 |
| 20-28 | 45-48 |
| 23,30,31 | 49-51 |

अद्भा धर्म: सतामेष यत्सखा मित्रापदि ।
न त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोर्धर्ममनुस्मरन् ।।[1]

कथासरित्सागर में भी इसकी कथा द्रष्टव्य है ।[2]

23• महाबोधि जातक -

एक बार बोधिसत्त्व महाबोधिनामक परिव्राजक हुए । किसी राजा के राज्य में पहुँचकर कल्याण मार्ग का उपदेश कर प्रतिदिन अनुगृहीत करना प्रारंभ किया । इनके प्रतिदिन वर्धिष्णु सम्मान को देखकर ईर्ष्यावशात् मंत्रियों ने राजा से चुगलखोरी करके इनके प्रति राजा का विश्वास व सम्मान कम करा दिया । जब यह राज्य से जाने को उद्यत हुए तो राजाने फिर से आकर दर्शनदेने का आग्रह किया । एक दिन तपो-मग्न जब उन्होंने दिव्यदृष्टि से देखा कि अहेतुवादी, ईश्वरकारणवादी, पूर्वकृतकर्मवादी, उच्छेदवादी तथा अर्थशास्त्रसम्मती कुछ अमात्य अपने मतों को ओर राजा को बहका रहे हैं तब एक कृत्रिम वानरचर्म लेकर वहाँ पहुँचकर सबके मतों का खण्डन किया और उनका संग छोड़कर राजा को धर्माचरण एवं सन्मार्ग की ओर उन्मुख किया ।

पालि जातक[3] में यह कथा थोड़ा भिन्न है । इसमें राजा के अहेतुवादी आदि मंत्री न्यायाधीस बताये गये हैं जो रिश्वत लेकर अन्याय करते थे । उनकी जगह राजा ने महाबोधि को न्यायाधीस बना दिया । जिनको चुगलखोरी करके

---

1• श्लोक- 35
2• कथासारिसागर कथासरित्सागर 17 लम्बक या 113 वाँ तरंग

3• 528 वाँ जातक महाबोधि जातक

उन्होंने मारने की योजना बनाई। जातकमाला में जो कुत्ता भूंककर महाबोधि के प्रति घटो सम्मान का समर्थन करता है वही यहाँ मारने की योजना को बोधिसत्त्व से बता देता है। कतिपय गाथाओं की समानता देखिए-[1]

अविलद्धं न सेवेय्य उदमानं वा अनोदकम्‌।
सचे पि नं अनुखणे वारि गद्धमगन्धिकम्‌॥
पसन्नं एव सेवेय्य अपसन्नं विवज्जये।
पसन्नं पयिरुपासेय्य रहदं वा उदकत्थिको[2]॥

एवं जलिनगम्भावस्तु न पर्युपास्यस्तोयार्थिना शुष्क इवोदपानः।
प्रयत्नलाभ्यापि ततोऽर्थसिद्धिर्यस्माद्‌भवेदाकलुषा कृशा च॥
प्रसन्न एव त्वभिगम्यरूपः शरद्विशुद्धाम्बुमहाह्रदाभः।
सुखार्थिनः क्लेशपराङ्मुखस्य लोकप्रसिद्धः स्फुटएष मार्गः[3]॥

24. महाकपि जातक-
---

बोधिसत्त्व एक समय हिमालय के वानर कुल में पैदा हुए। एक बार एक मनुष्य गाय खोजते हुए तेंदू के फल की लालच में विशाल गड्ढे में गिर गया।

---

1. तुलनीय पालि गाथा नं0 | श्लोक नं0
--- | ---
35 | 54
37-39 | 55,56
41,42 | 57,58
43-46 | 59-62
47-53 | 63-*64
54,55 | 65
58 | 66,67
60 | 68
65 | 72,73
66,67,69 | 74,75-77

कई दिन तक निरंतर वह जंगल में हताश होकर पड़ा रहा । किसी समय वहाँ उसको देखकर बोधिसत्व ने उसको वहाँ से निकाला और थकमांदे वह उस मनुष्य को रक्षार्थ नियुक्त करके सो गये । तभी उस नीच ने एक पत्थर उनके शिर पर मारने के उद्देश्य से पटका । लेकिन सौभाग्य से वह मरे नहीं जो जरूर । उसकी नीचता पर उसे धिक्कारा और उसे जंगल पार कराकर नगर की ओर भेज दिया । मित्रद्रोह के कारण उसको कोढ़ हो गया । और वह जंगल में रहने लगा।वहाँ राजा ने उसको देखा और कारण जानकर मित्रद्रोह के पापों का विस्तृत वर्णन किया ।

पालि जातक में भी यह कथा थोड़े से अन्तर के साथ विद्यमान है । यहाँ पूरी कथा पहले संक्षिप्त में बता दी गयी है फिर विस्तार से सारी कथा वह कोढ़ी कहता है । यहाँ राजा और उस कोढी काप्रश्नोत्तर गाथाओं में हुआ है । इस प्रकार 45 गाथाओं वाले इस जातक में गद्य अल्प मात्रा में ही है । भाव- साम्य सर्वत्र विद्यमान है ।

---

1. | पालि गाथा नं0 | श्लोक नं0 |
|---|---|
| 72,73 | 80 |
| 74 | 83 |
| 75-71 | 85-86 |
| 81 | 89 |

2. गाथा नं0 7-8

3. श्लोक नं0 13,14

4. महाकपिजातक 516 वाँ जातक

यथा- एहि मे पिट्ठि आरूयूह गीवं गण्हाहि बाहुहि ।

अहं तं उद्धरिस्सामि गिरिदुग्गतो वेगसा[1] ।।

तथा एहि पृष्ठं ममारूह्य कुण्ठा5स्तु भवान् मयि ।

यावदभ्युद्धरामि त्वां स्वदेहात्सारमेव च[2] ।

अन्यच्च आसितो च गमिस्सामि मंसं आदय सम्वलं ।

कान्तारं नित्थरिस्सामि पाथेय्यं मे भविस्सति[3] ।।

तथा- इदं च कान्तारमसुप्रतारं कथं तरिष्यामि बलेन हीनः ।

पर्याप्तरूपं त्विदमस्य मांसं कान्तारदुर्गोत्तरणाय मे स्यात्[4] ।।

25• शरभ जातक-

एक बार बोधिसत्व ने सिंहयोनि में जन्म ग्रहण किया । शिकार के लिए निकले हुए राजा ने उसका पीछा किया । एक विशाल गड्ढे के पास घोड़े के अचानक रुक जाने से राजा इस गड्ढे में गिर गया । राजा को अपने पीछे न देख सिंह समझ गया कि राजा गड्ढे में गिर गया होगा । राजा की छटपटाहट देखकर उसने उसे बाहर निकाल दिया । कृतज्ञ राजा सिंह के स्नेह एवं मधुर उपचार से अति प्रसन्न हुआ और सिंह को नगर चलने के लिए कहा । इस पर सिंह ने कहा कि यदि आप मेरा प्रिय ही करना चाहते हैं तो आप व्याधकर्म छोड

---

1• गाथा नं० 21
2• श्लोक नं० 11
3• गाथा नं० 28
4• श्लोक 18

दीजिए । इस प्रकार विविध पारलौकिक बातों से अनुगृहीत करके राजा को विदा कर यथास्थान चले गये ।

जातकट्ठकथा[1] में कथा थोड़ा और आगे बढ़ती है । बोधिसत्व के उपकार की याद करके राजा छः गाथाओं में उल्लास प्रकट करता है।उसको पुरोहित ने सुनकर अनुमान लगा लिया कि राजा शिकार के समय गड्ढे में गिर जाने से सिंह द्वारा निकाला गया होगा और उसने राजा से बताया भी।तब राजा ने उसे प्रसन्न होकर पुरस्कृत किया । एक दिन जब राजा निशाना साधने के लिए बाग पहुँचा तो शक्र ने सोचा कि राजा से सरभमिग का उपकार कहला अपना शक्रत्व प्रकटकर, धर्मोपदेश दे तथा पञ्चशीलों की महिमा कहलाकर आऊँगा । इस प्रकार जाकर सरभ के रूप में राजा के लक्ष्य के सामने आ गया तब राजा ने कहे जाने पर भी निशाना नहीं लगाया और सरभमिग के कृत उपकार को बताया । इस प्रकार शक्र ने अपना अभिप्राय पूरा किया ।

26- रूरु जातक-

किसी समय बोधिसत्व कस्तूरी मृग हुए । उनकी देहकान्ति रत्ननिधिवत् थी । गहन वन में उसने एक आदमी को नदी से बाहर निकाला । तब उस आदमी ने अपने प्राण मृग को समर्पित करते हुए कहा कि आज से ये प्राण आपके हैं । तथा पूछा कि मेरे लिए क्या सेवा है ? मृग ने कहा कि मेरे विषय में किसी से बताना भर नहीं । उसी समय किसी रानी ने एक कस्तूरी मृग को धर्मोपदेश करते हुए स्वप्न में देखा औरसबेरे राजा से उस स्वर्णिम मृग को पाने का आग्रह

---

1. सरभमिग जातक 483 वाँ जातक

जिसके पुरस्कार स्वरूप राजा ने प्रभूत धन, गाँव आदि घोषित करा दिया। धनलोलुप उस आदमी ने ही राजा को ले जाकर हिरन का निवास बता दिया। चारों ओर से अपने को घिरा जानकर मृग ने राजा के पास आकर पूछा कि मेरा निवास आदि बताया किसने? राजा द्वारा बताये जाने पर मृग ने उस कृतघ्न की बड़ी निन्दा की। उसके निन्द्य कर्मों को जानकर राजा ने उसे ही मारना चाहा किन्तु हिरन ने रोक दिया। राजा ने उस मृग को दरबार में ले जाकर धर्म के सारभूत दया का बहुश:उपदेश लाभ रानी सहित प्राप्त किया।

जातकट्ठकथा[1] में नदी में बहते व्यक्ति का पूर्व वृतान्त भी वर्णित है, जो जातकमालाकार ने नहीं किया। उसके अनुसार एक सेठ का महाधनक नामक पुत्र उसकी मृत्यु के बाद मद्य, स्त्री आदि में मस्त हो गया और सब धन नष्ट हो गया/कर्जदायकों से ऊबकर उसने गंगा में डूब मरना ही उचित समझा। अत: कहा कि उसका धन गंगा के किनारे गड़ा है वहीं देगा और सबको ले जाकर वहाँ गंगा में कूद पड़ा और बहते हुए आर्त स्वर से चिल्लाने लगा। आगे की कथा जातकमाला में यथावत् है। कथासाम्य के अतिरिक्त कतिपय गाथाएँ मात्र संस्कृत भाषान्तर मानी जा सकती है।[2] यथा-

---

1. रूरू जातक 482 वाँ जा

2. तुलनीय गाथा नं० -- श्लोक नं०

| गाथा नं० | श्लोक नं० |
|---|---|
| 7 | 25 |
| 9 | 30 |
| 5 | 22,23 |
| 8 | 30 |

सच्चं किरेवं आहंसु नरा एकच्चिया इध ।
कट्ठं विप्लावितं सेय्यो न त्वेव एकच्चियो नरो[1] ।।

तथा- सत्य एव प्रवादोऽयमुदकौघगतं किल ।
दार्वेव वरमुद्धर्तुं नाकृतज्ञमतिं जनम्[2] ।।

एवमेव यं उद्धरिं वहने वुय्हमानं महोदके सलिले सीघसोते ।
ततो निदानं भयमागतं मम दुक्खो हवे राज असब्भि सङ्गमो[3] ।

तथा- यमुह्यमानं सलिलेन हारिणा कृपावशादभ्युपपन्नवाहनम् ।
ततो भयं मीनृवरेदमागतं न खल्वसङ्गतमस्ति भूतये[4] ।।

चरियापिटक में यही कथा रुरुराजचरिया नाम से आयी है जो पालि कथा की अनुकारिणी है ।

27· महाकपि जातक-

एक बार बोधिसत्व हिमालय के किसी भूभाग में वानराधिपति हुए। वे सुस्वादु विशाल वट का आश्रय लेकर बानरकुल सहित रहते थे । नीचे बहने वाली नदी में कोई फल गिरे न जिससे उसका पता किसी मनुष्य को चले, अत: बोधिसत्त्व के आदेशानुसार सबसे पहले उसी के फल खाये जाते थे । एक बार चींटियों ने

---

1· गाथा नं० 7

2· श्लोक नं० 24

3· गाथा नं० 9

4· श्लोक नं० 30

पत्रपुटों से एक फल को ढक दिया जिससे यथासमय पककर वह नदी में गिर गया और जलक्रीडा करते हुए राजाके हाथ में पहुँचा । फिर नदी के सहारे उस वृक्ष का पता लगाकर उसको घेर लिया गया और राजा ने वानरों को मारने का आदेश दिया । तब बोधिसत्त्वने एक लता पकड़कर छलाग लगाकर वृक्ष की एक शाखा पकड़ ली और इस कृत्रिम पुल से वानरों को भाग जाने की आज्ञा दी । सभी वानर उनको रौंदते हुए भाग गये । यह दृश्य देखकर राजा ने चौंदोवा फैलवाकर बोधिसत्व को पकड़ा औरवानरों के प्रति इस त्याग का कारण पूछा । बोधिसत्व ने अपने वहाँ राजा को राजत्व के दायित्व का उपदेश दिया ।

पालि जातक[1] में मात्र इतना अन्तर है कि उसमें वट वृक्ष की जगह आम्रवृक्ष है और बोधिसत्व के ज्यादा घायल होने का कारण यह बताया कि उस समय देवदत्त भी वानरथा और शत्रु से बदला लेने के लिए ऊपरी शाखा से जोर से बोधिसत्व के ऊपर कूदा था । कतिपय पद्यों का साम्य देखिए[2] ।

> अत्तानं सङ्कमं कत्वा यो सोत्थि समतारयि ।
> किं त्वं तेसं किमो तुय्हं होन्ति एते महाकपि[3] ।।

---

1· 407 वाँ जा, महाकपिजा·

2· तुलनीय गाथा नं० 3,4,5=श्लोक 20,21,23

3· गाथा नं० 1

तथा गत्वा स्वयं संक्रमतामभीषां स्वजीवितेत्यक्तदयेन भूत्वा ।
समुद्धृता ये कपयस्त्वयेमे को नु त्वमेषां तव वा क एते ।।[1]

और भी राजाह इस्सरो तेसं यूथस्य परिहारको ।
तेसं सोकपरेतानं भीतानं ते अरिन्दम् ।।[2]
एवं एभिर्दाशप्रतिपत्तिदद्भिरारोपितो मय्ययाधिपत्यभार: ।
पुत्रोष्विवैतेष्ववबद्धहार्द: बोद्धुमेवाहमभिप्रपन्न: ।।[3]

28• क्षान्ति जातक-

किसी समय बोधिसत्व ने तापसजीवन ग्रहण किया/सदैव क्षमा का उपदेश देने से क्षान्तिवादी " कहलाते थे । कभी वन क्रीडा के लिए उत्सुक राजा अन्त: पुर सहित उसी रमणीकवन को गया जहाँ क्षान्तिवादी तपोलीन थे । क्रीडाजन्य थकान के कारण राजा के सो जाने पर नारियाँ घूमती हुई क्षान्तिवादी के पास पहुँची और घेरकर धर्म श्रवण करने लगीं । जब राजा वहाँ गया तो मुनि को कपटी समझा औरतलवार खींच ली । राजा की अनुचित बातों के विरूद्ध मुनि क्षमाशील ही बने रहे । राजा ने " मैं तुम्हारे प्रेम और क्षमाको देखता हूँ कहकर हाथ काट दिया । धीरे धीरे मुनि के हाथ पैर, नाक, कान सब काट डाला । मुनि की क्षमा अक्षुण्ण रही, हाँ राजा के अध:पात से सन्ताप अवश्य

---

1• श्लोक नं0 13

2• गाथा नं0 2

3• श्लोक नं0 15

हुआ । राजा ज्योंहि उपवन से बाहर आया धरती में समा गया । परिजनों से प्रार्थना की कि आप पूरे राज्य को नष्ट न करें । मुनि ने कहा कि मैं तो राजा की भी कुशलता चाहता हूँ । इस प्रकार सबको धर्मोपदेश देते हुए मुनि स्वर्ग सिधार गये ।

जातकट्ठकथा[1] में आई कथा ही उसी रूप में जातक माला में विवृत है । कथानक में अन्तर नहीं है । हाँ कलाकार की कृति होने से 4 गाथाओं के बदले आर्यशूर ने 69 श्लोकों को रचा है । समोधान के अतिरिक्त शेष दो गाथाएं अपने संस्कृत रूप में जातकमाला में प्राप्त है-

ये मे हत्थे च पादे च कण्णनासच्च छेदयि ।
तस्स कुज्झ महावीर मा रट्ठं विनस्स इदं ।।

एवं इमामवस्था गमितोऽसि येन नृपेण मोहादतिचापलेन ।
शापानलस्येन्धनतां स एव प्रयातु ते मा पुरमस्य धाक्षीः[2] ।।

अपरञ्च यो मे हत्थे च पादे च कण्णनासच्च छेदयि ।
चिरं जीवतु सो राजा नहि कुज्झन्ति मा दिसा ।।

एवं सपाणिपादमसिना कर्णनासमनागसः ।
छिन्नवान् योऽपि तावन्मे वने निवसतः सतः ।।
कथं तस्यापि दुःखाय चिन्तयेदपि मद्विधः ।
चिरं जीवत्वसौ राजा मा चैनं पापमागमत्[3] ।।

---

1 खन्तिवादी जातक 313वाँ जा०
2. श्लोक-59
3. श्लोक नं० 61-62

क्षेमेन्द्र ने भी इसी कथा को वर्णित किया है।[1] उसके अनुसार वाराणसी नरेश ब्रह्मदत्त के काशिसुन्दर और कलिभू" नामक दो राजकुमार थे। काशिसुन्दर प्रव्रजित हो गया उसी का नाम "क्षान्तिवादी" पड़ा। ब्रह्मदत्त के मरने के बाद कलिभू राजा हुआ और वही वन में क्षान्तिवादी के आश्रम में गया था। यह भी आया है कि अंगच्छेद करने से राज्य में अनावृष्टि आदि विप्लव हुए, उसका उल्टा जानकर राजा आश्रम आता है और क्षान्तिवादी क्षमा देते है तथा राजा के मोहविनाश की जिम्मेवारी भी ले लेते हैं -

यदा तु सम्यक सम्बोधिन्तामवाप्नोष्यनुत्तराम् ।
मोहच्छेदं करिष्यामि तदा ज्ञानासिना तव[2] ।।

कथासारित्सागर में भी यह कथा पायी जाती है।[3] एक मुख्य बात यह है कि यह कथा अजन्ता की गुफाओं में खुदी है जिसमें जातकमाला के श्लोक नं0 4,15 और 19 अंकित हैं।[4]

29 ब्रह्मजातक-

इस जातक के उपजीव्य स्रोत का पता अभी तक नहीं चला है। बोधिसत्त्व एक बार ब्रह्मलोक में पैदा हुए। अंगदिन्न नामक विदेहराज को पथभ्रष्ट देखकर

---

1. 29 वाँ अवदान, काशीसुन्दरावदान
2. श्लोक 83, अवदानकल्पलता, 29 वाँ अवदान।
3. कथासारित्सागर, षष्ठ लम्बक अथवा 28 वाँ तरंग
4. Jatakamala edited by R.C. Dwivedi, intro. P.

उसके पास गये । अभी दिव्य शक्ति को देखकर राजा ने उसका कारण पूछा तब ब्रह्मा ने राजा के परलोक विषयक अविश्वास को तर्कों द्वारा दूर किया । साथ ही कुकर्मों से प्राप्य नरक का भी भयावह वर्णन किया जिससे राजा भयभीत हुआ और उसके मन में वैराग्य उद्भूत हुआ । तब ब्रह्मर्षि बोधिसत्त्व ने अपने वचन रूपी दिव्य किरणों से राजा की मिथ्यादृष्टि से अन्धकार को दूर किया तथा सुगति का मार्ग प्रशस्तकर अन्तर्धान हो गये ।

30• हस्ति जातक-

इस जातक के भी पालि उद्गम का पता नहीं है । यह आर्यशूर की स्वयं की कृति है । इसके अनुसार बोधिसत्त्व एक विशालकाय हाथी हुए । एक बार राजा ने 1000 नागरिकों को राज्य से निकाल दिया । उनमें से 300 व्यक्ति विशाल मरुभूमि में भूख प्यास से मर गये । शेष 700 विलख चिल्ला रहे थे और तभी उन दया के मूर्त्त रूप हाथी को देखकर कहा कि हम आपकी शरण हैं । हाथी ने सोचा यहाँ कोई ऐसा खाद्य नहीं है जिसे पाथेय ~~प्र~~ बनाकर ये इस मरुस्थल को पार कर सकेंगे । मेरी देह का मांस खाकर और अंतड़ियों का मशक बनाकर ही ये पार जा सकते हैं । इस प्रकार सोचकर उसने तालाब का मार्ग दिखाते हुए कहा 'वहाँ जल पान आदि करने के बाद आपको थोडा सा आगे एक मृत हाथी मिलेगा । उसका मांस खाकर और अंतड़ियों में पानी भरकर आप पार हो जायेंगे' । इस प्रकार दूसरे रास्ते से आगे जाकर उस हाथी ने आत्मोत्सर्ग किया। पानी पीने के बाद जब मनुष्य आगे बढ़े तो उस मृत हाथी को पहचान लिया और यह सोचकर कि इनका मांस खाकर ही हम इनकी वास्तविक

31• सुतसोम जातक-

किसी समय बोधिसत्त्व सुतसोम नामक कौरव युवराज हुए । एक समय उद्यान में विहार करते समय एक ब्राह्मण ने सुभाषित सुनाईं । दक्षिणा भी नहीं दे पाया था कि नरभक्षी "सुदास" पुत्र "कल्माषपाद" के आजाने से भगदड मचगयी । वह सौदास 100 राजकुमारों से भूतबलि करना चाहता था । युवराज उसका कल्याण करने के उद्देश्य से स्वेच्छा से ही इसके साथ उसके दुर्ग गये । वहाँ बोधिसत्त्व को याद आई कि ब्राह्मण दक्षिणा की आशा में झुलस रहा होगा । बोधिसत्त्व ब्राह्मण को दक्षिणा देकर प्रतिज्ञापूर्वक लौट आने का वचन देकर आये और पुनः सुभाषित सुनकर उसे पुरस्कृत किया और सबके द्वारा रोके जाते हुए भी वचन की रक्षा के लिए पुनः सौदास के पास लौट गये । उनको पुनः लौटा हुआ देखकर सौदास को आश्चर्य हुआ । सौदास के आग्रह करने पर युवराज ने सुभाषित सुनाए जिस पर सौदास की प्रकृति बदल गई और युवराज को वरस्वरूप कभी माँस न खाने और बन्दी राजकुमारों को छोड़ने का वचन दिया । इस प्रकार पूरे जातक में सुभाषित की महिमा और यथा कथञ्चित् प्राप्त सत्संग का गुणगान किया गया है ।

आर्यशूर ने पालि जातक[1] की पूर्वार्द्ध की कथा छोड़ दी है जिसके अनुसार सुतसोम और काशिराज का पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार दोनों एकसाथ शिक्षा ग्रहण करते थे । वही काशी राजकुमार राजा बनकर माँस खाया करता था । एक दिन माँस न मिलने पर रसोइये ने सद्यः मृत मनुष्य का माँस पकाया जिसको खाकर राजा

---

1• महासुतसोमजातक, 537 वाँ जा-

मनुष्य मांसभक्षी हो गया । सेनापति कालहत्थी ने राजा का मांसभक्षण रोकना चाहा और उपमास्वरूप नाना कहानियाँ सुनाई । लेकिन राजा उल्टी उपमाएँ देकर किसी भी कीमत पर मांस त्यागने को तैयार नहीं था । अन्त में राजा को देश निकाला दिया जाता है वही राजा वनदेवी से अपना जख्म ठीक करने के बदले 100 राजकुमारों को बलि देने की प्रतिज्ञा करता है । वृक्षदेव की याचना पर इन्द्रादि देवों ने उसको मांस भक्षण से रोक सकने में असामर्थ्य प्रकट की तब पता चला कि सुतसोम ही उसको विरत कर सकते हैं अत: कहने पर सुतसोम ने निरत करने का निश्चय किया । आगे की कथा समान है । हाँ इतना अन्तर और है कि पालि में सौदास को पञ्चशील में प्रतिष्ठित कर पुन: राजा बना दिया जाता है । इस प्रकार कथा का उद्देश्य समान है । कतिपय गाथाएं तो ज्यों की त्यों जातकमाला में दिखाई पड़ती है । यथा[1]

> अवसिस्सो त्वं पोरिसादकासिट्ठट्ठानो भद्दो उदरस्स हेतु ।
> धम्मञ्च इमा अभिवदन्ति गाथा धम्मो अधम्मो च कुहिं समेति ।
> अधम्मिकस्स लुद्दस्स निच्चं लोहितपाणिनो ।
> नत्थि सच्चं कुतो धम्मं किं सुतेन करिस्सति[2] ।।

---

1. गाथा नं० 54 — श्लोक 47

| गाथा | श्लोक |
|---|---|
| 59 | 52 |
| 64-71 | 61-66 |
| 72 | 67 |
| 40,41 = 74-75 | 71-72 |
| 42-43 = 76-77 | 74-75 |
| 78-79 | 76-77 |
| 102 | 93-94 |

2. गाथा नं० 55,56

तथा इमामवस्थामुदस्य हेतोः प्राप्तोऽसि नरावतत्वं: प्रजासु ।
इमाश्च धर्मं प्रवदन्ति गाथाः सैमत्य धर्मेण यतो न धर्मः ।
रक्षोविकृतवृत्तस्य अंत्यक्तार्यपथस्य ते ।
नास्ति सत्यं कुतो धर्मः किं श्रुतेन करिष्यसि ।।[1]

और भी देखिए-

अहञ्च त्वं देहि वरं ति वज्जं त्वं चापि दत्वान अवाकरेय्य ।
नन्दिट्ठिकं कलहं इमं विवादं को पण्डितो जानं उपब्बजेय्य ।।[2]

तथा अहञ्च देहीति वरं वदेयं मनश्च दित्साशिथिलं तव स्यात् ।
तमत्ययं कः सघृणोऽभ्युपेयादेतावदेवालमलं यतो नः ।।[3]

32• अयोगृह जातक-

अयोगृह जातक- एक बार बोधिसत्व एक राजकुल में पैदा हुए । इनसे पहले जो पुत्र पैदा होते थे मर जाते थे । इनके पैदा होने के साथ ही राजा की उत्तरोत्तर समृद्धि हुई । कालक्रमानुसार राजकुमार कौमुदी महोत्सव देखने नगर में में निकला । आनन्दानुभूति होने पर भी प्रव्रज्या से परिचित होने के कारण उसे पूर्व जन्म की याद आ गई और संसार की क्षणभङ्गुरता पर विचार कर राजा से आज्ञा ले विरक्त हो गया । स्नेह-विह्वल पिता ने प्रव्रज्या लेने का कारण पूछा तो मृत्युभय को उसका कारण बताया । चाहे कोई भी हो उसकी मृत्यु ध्रुव है,

---

1• श्लोक नं0 48,49

2• गाथा नं0 80

3• श्लोक नं0 78

और इस तर्क पर आर्यशूर ने स्वच्छन्द लेखनी चलाई है ।

पानि जातक[1] में राजा के पहले के पुत्रों की मृत्यु का कारण भी बताया गया है । पूर्व जन्म की दो सपत्नियों में से एक राजा की रानी और दूसरी यक्षिणी हुई थी वही सौत के पुत्रों को खा जाती थी । इस प्रकार तीसरी बार उसके उपाय के लिये ताड़पत्र को प्रसूतिगृह में रखवाया गया और बड़े कठोर पहरे में बालक का विकाश हुआ । आगे की कथा आर्यशूर ने ज्यों की त्यों वर्णित की है । कतिपय गाथाओं का भाव साम्य देखिए–[2]

यं एकारत्तिं प०, गब्भे वसति मानवो ।
अब्भ उट्ठितो व सयति स गच्छं न निवत्तति ।।
न युज्झमाना न बलेन वस्सिता नरा न जीरन्ति न चापि मीयरे ।
सब्बे हि तं जाति जरायुपद्दुतं तं मे मती होति चरामि धम्मं[3] ।।
यामेव रात्रिं प्रथमामुपैति गर्भे निवासं नरवीर लोक: ।
तत: प्रभृत्यस्खलि प्रयाण: स प्रत्यहं मृत्युसमीपमेति ।।

---

1. अयोधर जातक 510 वाँ जा,

2. तुलनीय गाथा नं0 2 श्लोक– 22

| | |
|---|---|
| 3,4 | 23, 24 |
| 6,7 | 25,26 |
| 17 | 27 एवं 33 |
| 23,24 | 28·29 |
| 19,20 | 30,31 |
| 12,13 | 35 |
| 18 | 32 |
| 21,22 | 38,39 |

नीतो युवक्तोऽपि बले स्थितोऽपि नात्येति कश्चिन्मरणं जरां वा ।
उपद्रुतं सर्वमितीदमाभ्यां धर्मार्थमस्माद्वनमाश्रयिष्ये ।।[1]

एवमेव और भी देखिए-

अपराध के दूसके हेठके च ।
राजानो दण्डेन्ति विदित्वा दोसं
न मच्चुनो दण्डयितुस्सहन्ति ।
तं मे मती होति चरामि धम्मं ।।[2]

और दोषानुरूपं प्रणयन्ति दण्डं कृतापराधेषु नृपाः परेषु ।
महापराधे यदि मृत्युशत्रौ न दण्डनीतिप्रवणा भवन्ति ।।[3]

" चरियापिटक " में भी यही कथा मात्र दस गाथाओं में संक्षिपतः वर्णित है ।[4]

33· महिष जातक-

अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के फलस्वरूप बोधिसत्त्व जंगली भैंसा हुए । कोई दुष्ट वानर इनके साधु स्वभाव से परिचित होने के कारण विभिन्न हिंसक उपयों से इनको सताया करता । एक बार एक यक्ष ने उसको उनकी पीठ पर चढे देखा।

---

1· श्लोक 21-22

2· गाथा नं0 14

3· श्लोक नं0 28

4· अयोधर चरिया-, चरियापटिक

तब बोधिसत्व के मन की बात जानने की इच्छा से पूछा कि आखिर तुम इसके अपमानों को क्यों सहते हो? तब बोधिसत्व ने क्षमा ही अपना कर्तव्य बताकर क्षमालाभ का विस्तृत वर्णन किया और कहा कि मैंने क्षमा के सहारे इसको समझाने की चेष्टा की है अन्यथा जिन असहनशील प्राणियों के पास यह जायेगा वे स्वयं इसको कुपथ से रोक देंगे। इस प्रकार यक्ष के हृदय में खुशी, आश्चर्य व सम्मान के भाव उमड़ आये और उनकी प्रशंसा कर उस दुष्ट को इनकी पीठ से उतारकर अन्तर्धान हो गया।

जातकट्ठकथा[1] में यह कथा थोड़ा और आगे बढ़ती है- कुछ दिन बाद बोधिसत्व अन्यत्र चले गये और उनकी जगह एक प्रचण्ड भैंसा आ गया। दुष्ट वानर उसे भी वही समझकर पीठ पर चढ़ा। तब भैंसे ने उसे गिराकर सींग से छाती चीरकर कुचल डाला पालि में प्राप्त तीनों गाथाओं का साम्य देखिए-

कमत्थमभिसन्धाय लहुचित्तस्स दुब्भिनो।
सब्बकामदुहस्सेव इमं दुक्खं तितिक्खसि ।।
सिङ्गेन निहनाहेतं पदसा च अधिट्ठह।
भीयो बाला पकुज्झेय्युं नो चस्स पटिसेधको[2] ।।

और मथान धृत्वा तदिमं खुरेण वा विषाणकोट्या मदमस्य बोद्धर।
विनीतस्य जाल्मस्य कपेरशक्तवत्प्रबाधनादु:खमिदं तितिक्षसे ।।

---

1. महिस्सजातक 278 वां० जा०
2. गाथा 1,2

असज्जनः कुत्र यथा चिकित्स्येत गुणानुवृत्त्या सुखशीलसौम्यया।
कटूष्ण रुक्षाणि हियत्र सिद्धये कफात्मको रोग इव प्रसर्पति ।।[1]

एवमेव ममैवायं भञ्जमानो अञ्जमैत्र करिस्सति ।
ते तं तत्थ वधिस्सन्ति ।। मे मुत्ति भविस्सति ।।[2]

और असत्क्रिया प्राप्यव तिर्यगात्मजानन्न मादृशेऽप्येवमसौ करष्यति ।
न लब्धदोषो हि पुनस्तथाचरेदतश्च मुक्तिर्मम सा भविष्यति ।[3]

चरियापिटक में भी यह कथा प्राप्त है और उपर्युक्त गाथा नं0 3 इन्हीं शब्दों में वहाँ प्राप्त है ।

34• शतपत्र जातक-

बोधिसत्व एक बार मयूर योनि में जन्म लेते हैं । एक बार उन्होंने जंगल में वेदना से छटपटाते सिंह को देखा । उसकी विह्वलता का कारण पूँछकर उन्होंने उसकी व्याकुलता के कारणभूत गले में फँसी हड्डी को निकाल दिया । एक बार आहार की खोज में घूमते हुए उन्होंने उस सिंह को हिरण खाते हुए देखा । उपकार करने के बावजूद भी वह उससे माँग नहीं सके और सामने ही इधर-उधर घूमने लगे । जब वह कुछ नहीं बोला तो बोधिसत्व ने कहा कि मृगराज ! याचक का भी कुछ सम्मान कर पुण्य व यश प्राप्त करें । तब उस सिंह ने लाल लाल आँखे करके कहा कि मेरे मुँह से तू बचकर निकल गया यही क्या कम है । तब

---

1• श्लोक 8,9

2• गाथा- 3

3• श्लोक • 19

लज्जित बोधिसत्त्व " हम पखेरु हैं " कहते हुए उड़ गये । इस अपमान को न सहकर वनदेवता ने उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिए उनसे पूछा कि शक्ति होते हुए भी तुम उस कृतघ्न की उपेक्षा क्यों सह रहे थे । तब इसके उत्तर में उन्होंने अनेक प्रकार से कहा कि उपकारी दया से प्रेरित होकर ही उपकार करता है, लोभ की इच्छा से नहीं । कोई उपकार को माने या नहीं उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए । उनके द्वारा कथित सुभाषितों पर वनदेवता ने साधुवाद करते हुए भूरि-भूरि प्रशंसा की । इसके बाद उपसंहार के साथ कथा समाप्त हो जाती है ।

ठीक इसी रूप में यह कथा जातकट्ठकथा[1] में वर्णित है । उदाहरणार्थ गाथा नं0 2 और चारतो मात्र भाषान्तर के साथ ही जातकमाला में प्रयुक्त है-

मम लोहितभक्खस्स निच्चं लुद्दानि कुब्बतो ।
दन्तन्तरगतो सन्तो तं बहुं यम्पि जीवसि ॥[2]

तथा दयाक्लैव्यं न यो वेद खादन् विस्फुरतो मृगान् ।
प्रविश्य तस्य मे वक्त्रं यज्जीवसि न तद्बहु ॥[3]

इतरञ्च यस्स सम्मुखचिण्णेन मित्तधम्मो न लब्भति ।
अनुसुय्यमनक्कोसं सणिकं तम्हा अपक्कमे ॥[4]

और यस्मिन् साधूपचीर्णेऽपि मित्रधर्मो न लक्ष्यते ।
अनिष्ठुरमसंरब्धमपयायाच्छनैस्ततः ॥[5]

---

1• जवसकुण जातक 308 वाँ जातक

2• गाथा नं0 2

3• श्लोक नं0 13

4• गाथा नं0 4

# पञ्चम अध्याय

## जातकमाला में प्रयुक्त अलंकार विवेचन

## अलङ्कार विवेचन

कविता मात्र कोरा विचार या चिन्तन नहीं है, मात्र विचार या चिन्तन तो मनोविज्ञान के विषय हैं। कविता यथार्थ का प्रकाशन करती है तर्कपूर्ण वर्णन नहीं।[1] यथार्थवाद अपने-आप में आकर्षण विहीन होता है। वस्तुवाद से हम कभी-कभी व्याकुल हो जाते हैं जबकि कवि इसको इस प्रकार उपस्थित करते हैं जिससे वह आकर्षण हो जाता है। जिस प्रकार सर्प के शिर पर होने पर मणि भयावह होती है किन्तु हस्तगत हो जाने पर आकर्षण होती है-

शास्त्रेषु दुर्गहोऽप्यर्थः स्वदते कविसूक्तिषु ।
हृद्यं करगतं रत्नं दारुणं फणिमूर्धनि ।।[2]

कवि की कल्पना में दर्शन के साथ वर्णन का मञ्जुल सामरस्य रहता है। आदि कवि को वस्तुओं का दर्शन नित्य रूप से था किन्तु जब तक वर्णन का उदय नहीं हुआ तब तक कविता का प्राकट्य नहीं हुआ।[3] डॉ वी०राघवन कहते हैं कि कविता को मात्र यथार्थ या श्रेष्ठ विचार समझना गलत है। कौन नहीं जानता कि बैल भूख लगने पर मुँह से चारा खाता है-

"गोरपत्यं बलीवर्दः तृणान्यत्ति मुखेन सः।" तो फिर क्या यह कविता कही जा सकती है? वह आगे कहते हैं कि क्या वे ब्राह्मण भूखे नहीं हैं जो राजा से कहते हैं, "भोजनं देहि राजेन्द्र घृतसूपसमन्वितं।" और राजा भोजन

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. Poetry is not mere thought- Mere thought and emotion are proper subjects for the science of Psychology, etc. (Dr. V. Raghawan, 'Some Concepts of Alankar Shastra ,Page 53).

देने से इन्कार कर देता है किन्तु जब वे कालिदास द्वारा पूर्ण किया हुआ उत्तरार्द्ध अलंकृत कथन करते हैं- "माहिषं व शरच्चन्द्रचन्द्रिकाधवलं दधि।।"तब राजा उनको उपहृत करता है।[1]

कवि का स्वाभाविक वर्णन भी एक अद्भुत गुण रखता है। बाण कहते हैं कि जाति या स्वाभाविक वर्णन अग्राम्य अर्थात् भद्दा या अशिष्ट नहीं होना चाहिए- नवोऽर्थो जातिरग्राम्या।"इस प्रकार अलंकारहीन कथन उपेक्षित किया गया। भामह भी अपनी कविता के वर्णन में सीधी-सादी उक्ति को अपवर्जित करते हैं-

" अग्राम्यशब्दमर्थ्यं सालङ्कारं सदाश्रयम् ।"[2]

"अलङ्कारवदग्राम्यमर्थ्यं न्याय्यमनाकुलम् ।।"[3]

प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय जी कहते हैं कि " काव्य रचना की दृष्टि से अलंकार रचनाधर्म के वास्तविक प्रस्तोता हैं। यों भी कह सकते है कि काव्य के सौन्दर्य का साक्षात्कार कवि अपनी रचना में अलंकार के माध्यम से करताहै। सौन्दर्य के सामान्यतः दो विभाग किये जा सकते हैं-भाव का सौन्दर्य और वस्तु का सौन्दर्य।भाव सौन्दर्य तो मानसिक व्यापारों की अभिव्यक्ति है जो प्रायः बहुत गूढ़, सुकुमार और इदमर्थं रूप में पकड़ में न आने वाली हैं। अलंकार का

---

1. Studies on some Concepts of Alankarashastra, p. 53-54

2. काव्यालंकार 1/19

3. काव्यालंकार 1/35

वास्तविक पक्ष वस्तु सौन्दर्य का साक्षात्कार है। यह वस्तु सौन्दर्य किसी न किसी प्रकार भाव सौन्दर्य से सम्बद्ध हो जाता है। दण्डी और भामह ने जिन अलंकारो का निरूपण किया है वे प्राय: मूल रूप से वस्तु सौन्दर्य को ही अभिव्यक्त करने वाले अलंकार हैं। उद्भट तथा वामन के अलंकार भी वस्तु सौन्दर्य का पक्ष उजागर करते हैं। वस्तु सौन्दर्य को चित्रित करने की वास्तविक सरणि स्वाभावोक्ति या जाति अलंकार की उद्भावना थी। दण्डी ने जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य इन चारो वर्गो में उसके प्रकरण को सीमित कर दिया।[1] कुन्तक की सहजवस्तु-वक्रता का निरूपण -जिसमें रसों का भी समावेश हुआ है- प्रकारान्तर से स्वभा-वोक्ति अलंकार का ही विस्तार और निरूपण है। दण्डी के बाद भामह इसे अलंकार ही नहीं मानते।[2] वामन नाम भी नहीं लेते और उद्भट ने भामह की सरणि पर क्रियापरक, स्वभावपरक एक सीमित अलंकार मानते हैं।[3] अलंकारों के प्रयोग में वस्तु सौन्दर्य की यह उपेक्षा कवियों की रचना में भावों के प्रति अधिक सम्मान का परिणाम था। भाव का स्वरूप ही कुछ ऐसा था जिसमें सरलता से उक्ति का चमत्कार कवि की रचना को चमत्कृत कर देता था। मध्यकाल में उत्तरवर्ती कविगण वस्तुसौन्दर्य से दूर होते गये और भावों के माध्यम से दूर की उड़ान भरना उनकी उक्तियों का जीवित था जिसका जीवन अत्यन्त सुकुमार होता है।[4]

---

1. जातिक्रियागुणद्रव्यस्वभावाख्यानमीदृशम् ।
   शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीप्सितम्।। काव्यादर्श 2/13
2. " स्वभावोक्तिरलंकार इति केचित् प्रचक्षते।" काव्यालंकारसारसंग्रह 2/93
3. क्रियायां सम्प्रवृत्तस्य हेवाकानां निबन्धनम् ।
   कस्यचिन्मृगडिम्भादेः स्वभावोक्तिरुदाहृता ।। "काव्यालंकारसारसंग्रह 4।

अतः कविता वस्तु और भाव सापेक्ष ही नहीं होती अपितु एक सुन्दर स्वरूप की अपेक्षा रखती है। इसको मात्र उपयोगी हो नहीं अपितु मौलिक रूप से आकर्षक होना चाहिए। सभी काव्यात्मक विवृत्ति असामान्य वर्णनात्मक विधा से युक्त होती हैं। नीलकण्ठदीक्षित कहते हैं-

यानेव शब्दान् वयमालपामः यानेव चार्थान् वयमुल्लिखामः ।
तैरेव विन्यासविशेषभव्यैः सम्मोहयन्ते कवयो जगन्ति ॥[1]

डॉ राघवन् कहते हैं 'अभिव्यक्तिगत यही मार्गव्यत्यय, शब्दों और विचारों का यही अद्भुत गुम्फन ही अलंकार है जो सुन्दर काव्यात्मक स्वरूप का निर्माण करता है' वह आगे कहते हैं कि अलंकार के शारीरिक पहलू के प्रति रुचि न रखना काव्यात्मक अवधारणा को इससे सर्वथा दूर रखने की अपेक्षा सरलतर है।[2]

यदि हम काव्य की स्पष्ट परिभाषा पर पहुँचने का प्रयास करें तो निश्चय ही वह अलंकार की अवधारणा के चारों ओर घूमेगी। अलंकार शब्द यहाँ उस वृहद् आशय में है जिसे भामह, दण्डी, वामन और भोज ने समझा था- "सौन्दर्यमलङ्कारः"। काव्यात्मक क्षेत्र में परिभाषा करते हुए भामह ने अलंकार को सर्वत्र विद्यमान पाया। जब हम अप्पय्यदीक्षित के स्तर पर पहुँचते हैं जिन्होंने 125 अलंकारों का वर्णन किया है - हम काव्यपरिधि को सामान्यतः अलंकारों से व्याप्त पाते हैं। अलंकारों की इस अनन्तता की ओर इंगित करते हुए आनन्दवर्धन कहते हैं-

---

1. "शिवलीलार्णव" 1/13
2. Studies On Some Concepts Of Alamkarashastra P.55

"वाच्यालंकारवर्गश्च रूपकादिर्यावानुक्त: वक्ष्यते च कैश्चित् अलंकाराणामनन्तत्वात्।"[1]

महिमभट्ट कहते हैं- "अलंकाराणाञ्च अभिधात्मत्वं उपगतं तेषां भङ्गिभणितिभेदरूपत्वात्।"[2]

"चारुत्वं हि वैचित्र्यापरपर्यायं प्रकाशमानमलङ्कार: ....। चारुत्वमलङ्कार: ......।[3]" तथा शब्दार्थयोर्विच्छित्तिरलङ्कार:।[4] किं च वैचित्र्यमलङ्कार: इति..।[5]

नेमिसाधु कहते है-ततो यावन्तो हृदयावर्जका अर्थप्रकारा: तावन्तोऽलङ्कारा:।[6]

इस प्रकार यदि अलंकार इतने तात्पर्य को आत्मसात् किये है कि काव्यसौन्दर्य के लिए उसकी महती आवश्यकता होती है तो काव्यशास्त्र को अलंकारशास्त्र कहना अनुचित नहीं है। रूय्यक ने भी भामह,रुद्रट,उद्भटऔर वामन के विचारों का सार प्रस्तुत कर काव्य में अलंकारों कीप्रधानता कही है-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. ध्वन्यालोक, पृ0 88
2. व्यक्तिविवेक, 1,पृ03
3. टीका (व्यक्तिविवेक) त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज,पृ04
4. टीका (व्यक्तिविवेक) त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज,पृ,44
5. काव्यप्रकाश, श्लोक 9. पृ0 238
6. Commentary On Rudrata, P. 149

"तदेवमलङ्कारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्।"[1]

अलंकारों का समुचित ज्ञान और प्रयोग कभी भी निन्दनीय नहीं होता।एक महान् कवि में अलंकारों का अपरिहार्य उद्भव होता है जिसमें उसके विचार साकार रूप धारण करते हैं। आनन्दवर्धन कहते हैं-

"अलङ्कारान्तराणि हि निरूप्यमाणदुर्घटान्यपि रससमाहितचेतसः प्रतिभानवतः कवेः अहंपूर्विकया परपातन्ति।युक्तं चैतत्। यतो रसा वाच्यविशेषैः एव आक्षेप्तव्याः, तत्प्रतिपादकैश्च शब्दैः, तत्प्रतिपादनो वाच्यविशेषा एव रूपकादयोऽलंकाराः।[2]

काव्य में ये अलंकार मुश्किल से ही बहिरङ्ग कहे जा सकते हैं और कटक,केयूर तुल्य भी नहीं कहे जाने चाहिए। इसीलिए आनन्दवर्धन कहते हैं-

"तस्मान्न तेषां बहिरङ्गत्वं रसाभिव्यक्तौ।"[3]

रुय्यक स्पष्ट करते है कि काव्य में अलंकार शरीरगत आभूषणों के समान जो कि पृथक् किये जा सकते हैं-नहीं हैं और उनका अलग अस्तित्व है । पुनरुक्तवदाभास में वह कहते हैं-

"तथापि प्रयोगवैचित्रीविशेषस्याप्यलंङ्कारत्वादेवं व्याचक्षते।"

इसकी तुलना कुमारस्वामी के इस कथन से की जा सकती है-

"जातिगुणादिरूपोऽर्थो वस्तु। तदेवविच्छित्तिविशेषयुक्तमलङ्कारः।"[4]

---

1. अलंकारसर्वस्व, उपोद्घात,पृ09
2. ध्वन्यालोक,पृ087
3. ध्वन्यालोक,पृ087
4. प्रतापरुद्रीय,संस्कृत संस्करण ।।, पृ0 50

समुद्रबन्ध और विद्याचक्रवर्ती अपनी टीका में अलंकारविषयक विचार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-

यथा लौकिका: कटकमुकुटादयोऽलङ्कारा अलङ्कार्येभ्य: करादिभ्य: पृथग्भूय स्वातंन्त्र्येण अप्युपलभ्यन्ते, नैवं काव्यालङ्कारा:,अलङ्कार्यौ शब्दार्थावन्तरेण पृथगनुपलब्धे:। अतश्चैषां तत्पारतन्त्र्यम्[1]।

सोमेश्वर अपने "मनसोल्लास" या "अभिलषितार्थचिन्तामणि"में काव्य व उसके तत्त्वों की मानविक व्यक्तित्व से तुलना करते हैं और अलंकारो की तुलना आभूषणों से नहीं अपितु शरीर के स्वरूप से करते हैं-

शब्दा: शरीरं काव्यस्य प्राणोऽर्थ: परिकीर्तित:।अलङ्कारास्तदाकार:।[2]

"शब्दार्थ का आकर्षक सन्निवेश ही अलंकार है" जयदेव की इस व्याख्या पर टिप्पणी करते हुए वैद्यनाथ लिखते हैं-सन्निवेश: इत्युक्ते: तद्रूप {शब्दार्थरूप} एवायं न तु पुंस: कटकादिवत् पृथग्भूत: .....एवं च हारादिवदिति दृष्टान्तो न सर्वांशे अपितु रमणीयतामात्रे।[3]

अलंकारों की समुचित तुलना अंगना के उन अलंकारों से की जानी चाहिए जिन का भरतमुनि सामान्य अभिनया,भाव,हाव इत्यादि के अन्तर्गत करते है, अर्थात् सौन्दर्य जो रति जैसे भावनात्मक स्थिति और ऐच्छिक शारीरिक

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. समुद्रबन्ध, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज,पृ0 13-14
2. GOS, P.172
3. चन्द्रालोकव्याख्या, 5.1

चेष्टाओं में युवती का आकर्षण बढ़ाते हैं। बाह्य आभूषण कटक, केयूर आदि जो वह ऐच्छिक रूप से पहनती है उससे उसकी तुलना नहीं की जानी चाहिए।[1]

आनन्दवर्धन कहते हैं कि यद्यपि अलंकार शरीर मात्र हैं तथापि शरीरी बनाये जा सकते हैं जबकि वे वर्णित न होकर ध्वनित किये जाते हैं-

शरीरीकरणं येषां वाच्यत्वेन व्यवस्थितम् ।
तेऽलंकाराः परां छायां यान्ति ध्वन्यङ्गतां गताः।।[2]

यहाँ पर आनन्दवर्धन का तात्पर्य है- जैसा कि वस्तुतथ्य है - कि अलंकार शरीर के बाह्य आभूषण हैं, कृत्रिम हैं लेकिन कभी-कभी शरीर में सौन्दर्यार्थ लगाये गये कुंकुम के समान होते हैं अर्थात् रसाक्षिप्त होते हैं, अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य होते हैं या सुश्लिष्ट होते हैं। उनके अनुसार अलंकारों को आत्मा बनाना तो आशातीत है किन्तु जिस प्रकार बच्चों के खेल में राजा को अभिनय करने वाले बच्चे में अनित्य महानता हो जाती है उसी प्रकार जब अलंकार ध्वनित होता है तब वह महान् सौन्दर्य से युक्त होता है और आत्मवत् प्रकृति धारण करता है-

एतदुक्तं भवति- सुकविः विदग्धपुरन्ध्रीवद् भूषणे यद्यपि श्लिष्टं योजयति तथापि शरीरतापत्तिरेवास्य कष्टसम्पाद्याकुङ्कुमपीतिकाया इव। आत्मतायास्तु का सम्भावना। एवं भूता चेयं व्यंग्यता यदप्रधानभूतापि वाच्यमात्रालङ्कारेभ्यः उत्कर्षमलङ्काराणां वितरति। बालक्रीडायामपि राजत्वमिवेत्यमुमर्थं मनसि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. काव्यमाला, निर्णयसागरप्रेस, संस्करण 22

2. ध्वन्यालोक, 2/29

कृत्वाह-तत्रेति।[1]

अवधेय है कि अभिनवगुप्त सुश्लिष्ट अलंकार की तुलना कुंकुमालंकार से करते हैं और बाह्य अलंकार कटक के स्तर से इसको ऊपर उठाते हैं।भोज भी बाह्य अलंकार कटक के स्तर से इसको ऊपर उठाते हैं। भोज भी कटक से अलंकार की तुलनात्मक अपर्याप्तता का एहसास करते हैं|वह अलंकारों का विभाजन तीन प्रकार से करते हैं- बाह्य,आभ्यन्तर तथा बाह्याभ्यन्तर अलंकार-

"अलंकाराश्च त्रिधा बाह्या: आभ्यन्तरा: बाह्याभ्यन्तराश्च। तेषु बाह्या: वस्त्रमाल्यविभूषणादय:। आभ्यान्तरा: दन्तपरिकर्मनखच्छेदअलककल्पनादय:। बाह्याभ्यन्तरा: स्नानधूपविलेपनादय:.....।[2]

यद्यपि बाह्य रूप का अपना महत्त्व है तो भीअलंकारशास्त्र को काव्यवत् महत्त्वपूर्ण नहीं समझ लेना चाहिए। बाह्याकृति के परिवर्तन से काव्य की क्षति सम्भव है क्योंकि औचित्य ही काव्य का चरम सौन्दर्य है वही काव्य व रस की आत्मा है। बिना आत्माके शरीर शव हो जाता है तब शव को आभूषित करने से क्या?

अन्योऽन्यसंसर्गविशेषरम्याप्यलङ्कृति: प्रत्युत शोचनीया ।
निर्व्यंग्यसारे कविसूक्तिबन्धे निष्क्रान्तजीवे वपुषीव दत्ता।।[3]

---

1. लोचन पृ0 117-118
2. श्रृंगारप्रकाश,पृ0399
3. शिवलीलार्णव, 1/36

औचित्यसिद्धान्तस्थापक क्षेमेन्द्र कहते हैं कि रससिद्ध काव्य का औचित्य ही जीवन है, उसके बिना अलंकारों व गुणों से क्या ?

काव्यस्यालमलङ्कारैः किं मिथ्यागणितैर्गुणैः ।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते ।।
अलङ्कारास्त्वलङ्काराः गुणा एव गुणाः सदा ।
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ।।[1]

क्षेमेन्द्र अभिनवगुप्त व आनन्दवर्धन के कथन का ही पोषण करते है जिन्होंने कहा-

तथा हि अचेतनं शवशरीरं कुण्डलाद्युपेतमपि न भाति अलङ्कार्यस्याभावात्। यतिशरीरं कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति अलङ्कार्यस्य अनौचित्यात्।[2]

अनौचित्यादृते नान्यत् रसभङ्गस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ।।[3]

अलंकारों का समुचित सन्निवेश ही औचित्य है-

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।

× × ×

उचितस्थानविन्यासादलङ्कृतिरलंकृतिः ।

अलंकृतिः उचितस्थानविन्यासादलङ्कर्तुंक्षमा भवति। अन्यथा तु अलङ्कृतिव्यपदेशमेव न लभते .....यदाह-

---

1. औचित्यविचारचर्चा, 4-5

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा

················नाथान्ति के हास्यतां

औचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालङ्कृतिर्नो गुणः।।[1]

इस प्रकार अलंकार तभी तक सार्थक हैं जब वे अपने स्थान में होते हैं-

ध्वन्यात्मभूते श्रृंगारे समीक्ष्य विनिवेशित: ।

रूपकादिरलंकारवर्ग एति यथार्थताम् ।।[2]

यथा हार स्थूल वक्षस्थल की शोभा बढ़ाते है तथैव अलंकार औचित्ययुक्त काव्य की शोभा बढ़ाते हैं-

अर्थौचित्यवता सूक्तिरलंकारेण शोभते ।

पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ।।[3]

भोज ने भी यही बात कही -

दीर्घापाङ्गं नयनयुगलं भूषयत्यञ्जनश्री: ।

तुङ्गाभोगौ प्रभवति कुचावर्पितं हारयष्टि:।।[4]

जब कोई महाकवि रससमाहित चित्त हो जाता है अनौचित्य का किन्चिन्मात्र भी अवकाश वहाँ नहीं होता, किन्तु जब ध्यान शब्दों परहो जाता है तभी त्रुटियॉ खूब फलती-फूलती हैं। अलंकार रसभावपर होना चाहिए। अलंकार एक रस का ही तो अलंकरण करते हैं। जिस प्रकार आभूषण पहनना या

---

1. औचित्यविचारचर्चा
2. ध्वन्यालोक ।।,18
3. औचित्यविचारचर्चा
4. सरस्वतीकण्ठाभरण 1/160

उतारना हमारी मानसिक स्थिति का अभिव्यंजक है, उसी प्रकार अलंकार भाव के अभिव्यंजक होते हैं-

रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम् ।
अलंकृतीनां सर्वासामलंकारत्वसाधनम् ।। [1]

उपमया यद्यपि वाच्योऽर्थोऽलंक्रियते, तथापि तस्य तदेवालंकरणम् यद् व्यंग्यार्थाभिव्यञ्जनसामर्थ्याधानमिति। वस्तुतो ध्वन्यात्मैव अलंकार्य: । कटककेयूरादिभिरपि हि शरीरसमवायिभि: आत्मैव तत्तच्चित्तवृत्तिविशेषौचित्यसूचनात्मतया अलंक्रियते। [2]

इस प्रकार जो कुछ भी मुख्यवस्तु का सौन्दर्यवर्द्धन करता है अलंकार है। रस भी कभी-कभी अलंकारवत् वस्तु का शोभाधायक होता है। तब रसवत् अलंकार कहा जाता है। रेमण्ड भी अलंकारों के विषय में इसी प्रकार के विचार अभिव्यक्त करते है-

'The one truth underlying all the rules laid down for the employment of figures is that nothing is gained by any use of those which do not add to the effect of the thought to which they give expression language is to express our thoughts to others and inordinary conversation,we use both plain and figurative language but when a man wants to give another the description of a scene, he has seen, he does not catalogue one and all of the details of that sight but brings only his own idea of the landscape by adding to such of the details as have struck him, many more ideas emotion that have been arouse in him. Thus he transports his mental image to the bearer and if the representation is comparatively plain, we have स्वभावोक्ति ' On the other hand, if he realises that it is hard for the bearer to understand him fully, he gains his end by repeating the statement, or by adding illustrative images to the mere enumeration of facts.'

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

इस परिप्रेक्ष्य में रूद्रट का कथन तुलनीय है-

सम्यक् प्रतिपादयितुं स्वरूपतो वस्तु तत्समानमिति ।

वस्त्वन्तरमभिदध्याद् वक्ता यस्मिस्तदौपम्यम् ॥

रूद्रट कीउपर्युक्त कविता से हम देखते है कि वक्ता की व्याकुलता या अधिक से अधिक प्रभावकारी अभिव्यक्ति की इच्छा अलंकार को जन्म देती है। अलंकारो का तात्पर्य है वस्तु को पर्याप्त रूप में प्रस्तुत करना। आनन्दकुमार स्वामी कहते हैं- By Rhetoric we mean ~~that~~ with Plato and Aristotle, the art of giving effectiveness to truth.[1]

आनन्दवर्धन के समय तक संस्कृत काव्य कृत्रिम रूप प्राप्त कर चुका था। काव्यरचना के बजाय काव्यानुकृति रूप गड्डलिकाप्रवाहन्याय चल रहा था। इसी को ध्यान रखकर वह कहते हैं-"न तन्मुख्यं काव्यं काव्यानुकारो ह्यसौ।[2] अलंकार को सम्यकरूपेण परिभाषित करते हुए आनन्दवर्धन कहते हैं-

रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।

अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारो ध्वनौ मतः ॥[3]

अलंकारशास्त्र पढ़ने से यह मिथ्या धारणा उद्भूत होती है कि कृत्रिम और सुविस्तृत होने के साथ-साथ अलंकार समुचित प्रयोग के लिए मानसिक व्यायाम की अपेक्षा रखते हैं। अलंकारों को परिभाषित करने के प्रयास का उद्देश्य है चमत्कार के वास्तविक तत्त्वों को प्रदर्शित करना। जहाँ तक अलंकारो के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 'Figures of Speech or Figures of thought . Page-10.

2. As if translating Anandavardhana, Tolstoy Calls What Is Art ? Ch. XI.

3. ध्वन्यालोक II,17

वास्तविक प्रदर्शन की बात है और जैसे कि वे कवि की अभिव्यञ्जना के अंश हैं- वे कृत्रिम रूप से प्रयुक्त नहीं किये जाते। प्रतिभासम्पन्न कवि किसी अलंकार के सैद्धान्तिक आवश्यकताओं के प्रति सचेत नहीं होते। उनमें जैसे ही भाव उद्भूत होते हैं, अभिव्यञ्जना उमड़ती है- अलंकार आगे-आगे छिटक उठते हैं।

अलंकारों को ऐसी सामर्थ्य वाल्मीकि,कालिदास आदि कवियों में हम पाते हैं और इस सामर्थ्य के लिए असीमित प्रतिभा के साथ-साथ रस में निमग्न होना पड़ता है। प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डेय जी कहते हैं कि "दण्डी के पश्चात् या यों कहा जाये कि जब औदीच्य आचार्य काव्य लक्षणों में प्रवृत्त हुए तब काव्य रचना में सौन्दर्य की सृष्टि करने के प्रति कविजन मन्दादर हो गये। जिस वस्तु-सौन्दर्य से आदिकवि वाल्मीकि प्रवरसेन,गाथासप्तशती और कालिदास के काव्य विभूषित हैं, जो वस्तु सौन्दर्य उन काव्यों की संजीवनी है, उस वस्तु सौन्दर्य का आस्वाद लेकर यह प्रतीत होता है कि इन काव्यों की रचना इस भारत भूमि में हुई है। वह वस्तु सौन्दर्य कवियों की काव्य रचना से विरक्त होकर एक समय बाणभट्ट के गद्यसाहित्य में विश्राम करता रहा फिर उसने वहीं अन्तिम विश्राम सा कर लिया। परवर्ती कवियों की रचनाओं में उसने पदार्पण नहीं किया।[1]

दण्डी के अनन्तर भामह ने अलंकारों का जो निरूपण किया है उसमें भाव-सृष्टि करने वाले अलंकारों के प्रति ही भामह का व्यामोह है। काव्य रचना में वस्तु सौन्दर्य के प्रति उनकी दृष्टि कितने हलके चमत्कार से प्रेरित है

---

1. कवि और काव्यशास्त्र , पृ0 156

यह तो उनकी स्वभावोक्ति - विषयक आलोचना से पता चलता है।[1] एक स्थान पर प्रो० पाण्डेय जी कहते हैं कि "वस्तु सौन्दर्य के सहज पक्ष की जब उपेक्षा होती है वहाँ काव्य रचना में ध्वनि का प्रयोग होने पर भी काव्य-अर्थ में तन्मयीभवन की स्थिति सहृदय पाठक को प्राप्त नहीं होती।"[2] वह दृष्टान्त देते हैं -

लावण्यकान्तिपरिपूरितदिङ्मुखेऽस्मिन्स्मेरेऽधुना तव मुखे तरलायताक्षि ।
क्षोभं यदेति न मनागपि तेन मन्ये सुव्यक्तमेव जलराशिरियं पयोधिः।।[3]

छन्द का भाव है कि नायिका की मुख कान्ति से समुद्र में जो उल्लास का क्षोभ नहीं हो हो रहा है वह इसलिए कि समुद्र जड़(जल) की राशि है, यह कहने से इस व्यंग्य की प्रतीति हुई कि मुखचन्द्रमा है। परन्तु यहाँ कवि ने प्रत्यक्ष प्रस्तुत सौन्दर्य की उपेक्षा करके दूर की उक्ति की है। अनुराग में डूबे नायक के लिए समुद्र की क्षोभक्रिया का क्या सौन्दर्य है ? सच बात तो यह है कि नारी के मुखचन्द्र से समुद्र में क्षोभ की कल्पना करना सहज प्रवृत्ति और सहज धर्म की उपेक्षा कर काव्य रचना को कृत्रिम बना देना है।

जो कवि अलंकारों का प्रयोग उपर्युक्त प्रकार से एवं उचित रूप में नहीं कर सकते हैं वे भी समीक्षा के द्वारा अलंकारों का प्रभावकारी प्रयोग कर सकते हैं-

ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे समीक्ष्य विनिवेशितः ।
रूपकादिरलङ्कारवर्ग एति यथार्थताम् ।।[4]

---

1• द्रष्टव्य काव्यालंकार, 2/93-94

2• "कवि और काव्यशास्त्र" पृ0167

3• ध्वन्यालोक, 2/27

4• ध्वन्यालोक 2/18

समीक्षा क्या है ? एतदर्थ आनन्दवर्धन कहते हैं-

विवक्षातत्परत्वेन नाङ्गित्वेन कदाचन ।
काले च ग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता ।।
निर्व्यूढावपि चाङ्गत्वे यत्नेन प्रत्यवेक्षणम् ।
रूपकादेरलङ्कारवर्गस्याङ्गत्वसाधनम् ।।[1]

अर्थात् अलङ्कार अंगभूत होने चाहिए। मुख्य वस्तु को सदा ध्यान रखकर अलंकार प्रयोग करना चाहिए। प्रचुर प्रयोग होने पर भी उनकी अङ्गता ही होनी चाहिए, यथा शाकुन्तल में "चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि" इत्यादि में भ्रमर के कृत्यों का स्वभावत: वर्णन है तथापि अंग रूप में प्रयुक्त होकर मुख्य रस श्रृंगार को परिपुष्ट करता है। ऐसे तमाम दृष्टान्त हैं जिनमें कवि कल्पना लोक में ही उड़ता है और प्रकृतवस्तु में लौटता ही नहीं। वह अलंकारों को विस्तृत करते हुए उसकी उचित सीमा को लांघजाता है।[2]

इन्द्रिय सुखद होने के साथ-साथ काव्य को श्रवणसुखद होना भी अपेक्षित होता है। वर्णन का बाह्य रूप भी सुन्दर संगीतमय और प्रवहमान होना चाहिए । कीथ भी स्वीकार करते हैं कि संस्कृत कवि पाश्चात्त्य कवियों की अपेक्षा शाब्दिक संगीत अर्थात भाव और संवेदना को अभिव्यक्त करने वाली ध्वनि के औचित्य की ओर अधिक अवहितमनस् हैं। दृष्टान्त के लिए देखिए-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. ध्वन्यालोक 2/19-20

2. ध्वन्यालोक, पृ0 89,पृ090

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति।।[1]

वस्तुत: बाणभट्ट ध्वनिगत प्रभाव को जिस प्रकार चरम सौकर्य के साथ प्रस्तुत करते हैं यह एक चमत्कार ही है-

अपराह्णप्रचारप्रचलिते चामरिणि चामीकरतटताडनरणितरदने रदति सुरस्रवन्तीरोधांसि स्वैरमैरावते।

क्रमेणाऽधोऽधोधावमानधवलपयोधराम् ।
ग्रहग्रावग्रामस्खलनमुखरितस्रोतसाम् ।।[2]

संक्षेपत: कहा जा सकता है कि कविता न तो एकदम भावप्रवाह व विचार है न हि केवल ढङ्ग है। एक सुन्दर विचार निश्चय ही स्वयं सुन्दर उक्ति के रूप में अवतरित होता है- यही अलंकार की परिभाषा,उसके स्थान और प्रयोग की कसौटी है। इस सन्दर्भ में प्रो0 सुरेशचन्द्रपाण्डेय जी का कथन अतीव महत्त्वपूर्ण है। वह कहते हैं कि " यह बात सत्य है कि जहाँ वस्तु सौन्दर्य है वहाँ भाव सौन्दर्य होगा क्योंकि मन के भाव का वस्तु से सम्पृक्त होना अत्यन्त स्वाभाविक है और जहाँ ऐसा संयोग घटित होता है वहीं काव्य रचना की सहजभूमि प्रतिष्ठित होती है। किन्तु कहीं कहीं भाव की उक्तियाँ भाव के आधार पर सर्जित होती हैं ऐसे स्थल उक्ति मात्र में ही पर्यवसित हो जाते हैं, चाहे वे ध्वनिलक्षण से सम्पन्न हों या चाहे कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. उत्तररामचरित, 2/7

2. हर्षचरित, ।

को उद्भावित कर रहे हों। अतः काव्य में वस्तुसौन्दर्य ही उसे जीवन प्रदान करता है। इस वस्तु सौन्दर्य को उद्भावित करने वाला अलंकार स्वभावोक्ति है। किसी समय उसका साम्राज्य था- यह उल्लेख दण्डी करते हैं।[1] लेकिन जब विदग्धगोष्ठियों में उक्तियों के नोक-झोंक के प्रति अधिक आकर्षण बढ़ गया तब स्वभावोक्ति की उपेक्षा हो गई।"[2] आगे निष्कर्षतः वह कहते हैं कि"अलंकार के उस वस्तु सौन्दर्य को जिसको औदीच्य कश्मीरी आचार्यों ने भाव के अभिनिवेश में कभी स्थान नहीं दिया और अपने अलंकार निरूपण में उसकी उपेक्षा किये रहे, ध्वनि सिद्धान्त और वक्रोक्ति सिद्धान्त में अलंकार का वही वस्तु सौन्दर्य दूसरे रूप और नाम में आकर प्रतिष्ठित हो गया।[3]

अलंकार प्रयोग का तात्पर्य प्रभाव को समुन्नत करना और अधिक से अधिक सूक्ष्म रूप में कहने में कवि की सहायता करना है-भले हो कवि मर्यादा का उल्लंघन करता है या विरूद्ध कथन करता है लेकिन अलंकार उसकी सहायता के लिए ही होते हैं[4]। जैसे कि महिमभट्ट कहते हैं-

विनोत्कर्षापकर्षाभ्यां स्वदन्तेऽर्था न जातुचित् ।
तदर्थमेव काव्योऽलङ्कारान् पर्युवासते ।।[5]

---

1• काव्यादर्श 2/13

2• कवि और काव्यशास्त्र, पृ0 160

3• कवि और काव्यशास्त्र,पृ0161

4• सम कन्सेप्ट्स आफ अलंकारशास्त्र, पृ0100

5• व्यक्तिविवेक,पृ053

साकार रूप ही अलंकार हैं। विचारों को प्रस्तु करने के विभिन्न ढ़ङ्ग जो कि रस को वहन करते हैं- अलंकार कहे जाते है[1] -

रसस्याङ्गं विभावाद्या: साक्षान्निष्पादकत्वत: ।
तद्वैचित्र्योल्लिखवपुषोऽलंकारास्तु तदाश्रया: ।।[2]

अलंकारों का प्रयोजन वैसे ही आवश्यकाव्य है जैसे कि कविता का। एकमात्र उपयोगितावादी दृष्टिकोण से ही कोई अलंकार और काव्य का निर्णय नहीं कर सकता । सुन्दर साधारण कविता और कुछ नहीं अपितु कवि के भाव-व्यक्ति की इच्छा है जो मूर्त्तरूप धारण करती है। यही अलंकार कवि की भाव-नात्मक प्रेरणा से युक्त होते हैं जो कहता है "मैं अपनी रचना में आनन्द पाता हूँ यह अच्छी रचना है"।जब आनन्द के क्षणों में अपने चतुर्दिक् प्रसूत संसार में हम यह अनुभूति करते हैं, हम संसार को मात्र अस्तित्वयुक्त ही नहीं पाते अपितु विविध रूपों,ध्वनियों तथा रंगों में इतना सुसज्जित पाते हैं कि कोई भी चिल्ल उठता है "मैं अपनी रचना से प्रसन्न हूँ।"

These very decorations carry the emotional motive of the poet which says " I find joy in my creations, it is good." When in some moments of exstasy we realize thi in the world around us, we see the world not as merely existing but as decorated in its forms, sounds, colours anc lines, we feel in our hearts that there is one who through all things proclaims " I have joys in my creation."

प्रकृति भगवद् लीला की रचना है और काव्य कवि लीला की कृति है।

आर्यशूर की कविता में स्वाभाविकता का साम्राज्य है। कवि एक विशेष अभिप्राय से तत्त्वज्ञान से हटकर कोमल -काव्य कला का आश्रय लेता है और इस कार्य में वह सर्वथा सफल है। भावों के नैसर्गिक प्रवाह का कारण कवि के आध्यात्मिक जगत् से नितान्त सम्बद्ध है। कवि का अलंकार-विधान रस का पोषक, भावों का उत्तेजक तथा प्रकृतार्थ का उद्बोधक है। चूँकि आर्यशूर कालिदास आदि के समान रससिद्ध कवि नहीं हैं, अतः उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों को सर्वत्र "अपृथग्यत्ननिर्वर्त्य" नहीं कहा जा सकता **और** न हि वह विचित्रमार्गी कवि है जिससे वर्णनीय कथा मानवीय-भावों की चेरी बनकर प्रकट नही हुई। अर्थात् भाषा चित्रात्मक वर्णनीयता का माध्यम नहीं बनी है या किञ्चिद् रूढ़िग्रस्त भावों की अनुकृति मात्र बनकर नहीं रह गई। भावाभिव्यञ्जना के लिए नितान्त अपेक्षित होने पर अलंकारों का सहज विन्यास सर्वत्र प्राप्य है। इस बात की पुष्टि डॉ जे०एस०स्पेयर भी करते हुए कहते हैं[1] कि साहित्यसर्जक अन्य तमाम भारतीय लेखकों की तुलना में उनका संयम प्रशंसनीय है, वह शब्दों को सजाते नहीं या सघन अलंकारों की छटा नहीं प्रस्तुत करते। विषयवस्तु के लिए अपेक्षित या आवश्यक अलंकारों का ही प्रयोग करते हैं। उनका वैविध्ययुक्त वर्णन, दीर्घ

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "Above all I admire his moderation. Unlike so many other Indian masters in the art of literary composition, he does not allow himself the use of embellishing, apparel and the whole luxuriant mise enscence of Sanskrit Alankarabeyond what is necessary for his subject. His flowery description his long and elaborate narrations are always in harmony with scene of the whole or the nature of the contents.

(Speyer's Jatakmala edition Intro. P. XXIV.)

एवं विस्तृत उपदेश लालित्यपूर्ण आख्यान-ढङ्ग - ये सबके सब विषयवस्तु के अनुरूप सामन्जस्यपूर्ण है।

कतिपित् दृष्टान्तों द्वारा जातकमाला कार का अलंकार-प्रयोग देखा जा सकता है-

अनुप्रास अलंकार

जातकमाला में अनुप्रास के प्राय: सभी प्रकारों का प्रयोग हुआ है। छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, अन्त्यानुप्रास और श्रुत्यानुप्रास-इन सभी का रुचिरप्रयोग हुआ है भले ही उनमें दण्डी, माघादि के समान पदलालित्य न उपस्थित हो सका हो किन्तु उपदेश काव्य के प्रणेता कवि की दृष्टि से कथमपि अपकृष्टत्व सिद्ध नहीं होता।

वृत्त्युनप्रास का यह रु-चिर प्रयोग देखिए-

यदुज्जहानभियोगसिद्धया स मेधया जन्मशतानुबद्धया।।[1]

तथा-

"बोधिसत्त्व: किल सालबकुलपियालहिन्तालतमालविदुलनिपुलक्षुबहुले शिंशपातिनिशशमीपलाशशाककुशवंशशरणगहने"-[2]

छेकानुप्रास का उदाहरण लीजिए-

दु:खं सुखं वा यदभूत्प्रजानां तस्यापि राज्ञ: तदभूत्तथैव।
अत: प्रजारक्षणदक्षिणोऽसौ शस्त्रं च शास्त्रं च परामम्र्श ।।[3]

---

1. शतपत्र जातक, श्लोक 6
2. रूरू जातक, प्रथम परिच्छेद
3. मैत्रीबल जातक, श्लोक।

अन्यत्र देखिए-

प्राप्यैवमानृण्यमहं द्विजस्य गन्तास्मि भूयोऽनृणतां तवापि ।
इहागमात्प्रीतिकृतक्षणाभ्यां निरीक्ष्यमाणो भवदीक्षणाभ्याम् ।।[1]

आर्यशूर ने अन्त्यानुप्रास का भी सुन्दर प्रयोग किया है। यथा-

सन्दर्शनं लोकहितोत्सुकानामुत्तेजनं मन्दपराक्रमाणाम् ।
संहर्षणं त्यागविशारदानामाकर्षणं सज्जनमानसानामम् ।।[2]

अपरञ्च-

परोपरोधेषु सदानभिज्ञा व्यवस्थिति: सत्त्ववतां मनोज्ञा ।
गुणाभिनिर्वर्तितवाल्सञ्ज्ञा क्षेमेति लोकार्थकरी कृपाज्ञा ।।[3]

लाटानुप्रास भी लीजिए-

इष्टार्थसम्पत्तिविमर्शनाशात् प्रीतिप्रबोधस्य विशेषहेतु: ।
यथार्थिनां दर्शनमास तस्य तथार्थिनां दर्शनमास तस्य ।।[4]

इतरञ्च-

प्रायेण लोकस्य बभूव यस्मात्तुल्यक्रमोऽसौ सुखदु:खयोगे ।
अतोऽस्य लोकोऽप्यनुशिक्षयेव तुल्यक्रमोऽभूत्सुखदु:खयोगे ।।[5]

---

1. सुतसोम जातक, 18
2. व्याघ्री जातक, 26
3. क्षान्ति जातक, 26
4. अविषह्य श्रेष्ठि जातक,
5. 20 वाँ श्रेष्ठि जातक, 8

## यमक अलङ्कार

जातकमाला में यत्र तत्र यमक का प्रयोग भी मिलता है, जिससे छन्दः प्रिय कवि की छन्द-चारुता बढ़ जाती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आर्यशूर प्रयोग तो सभी अलंकारों का करना चाहते हैं किन्तु जहाँ तक वे रस-भाव के उपकारक हों। स्वयं अलंकार आगे-आगे दिखाई पड़े- इस हद तक नहीं। यमक के कतिपय दृष्टान्त देखिए-

कुरुस्व तस्माद्गुणसाधनं धनं
शिवां च लोके स्वहितोदयां दयाम् ।
स्थिरं च शीलेन्द्रिसंवरं वरं
परत्र हि स्यादशिवं न तेन ते ।।[1]

अनियतस्थानवृत्ति यमक का यह उत्कृष्ट प्रयोग कहा जा सकता है। इसी प्रकार दूसरा रुचिर प्रयोग देखिए-

स्वपुण्यलक्ष्म्या नृपदीप्तयाप्तया
सुकृत्सु शुक्लत्वमनोज्ञयाज्ञया ।
चरात्मनोऽर्थप्रतिसंहितं हितं
जगद्व्यथां कीर्तिमनोहरं हरन् ।।[2]

---

1. ब्रह्मजातक, 53

2. ब्रह्मजातक 54

कहीं कहीं गद्य भाग में कवि ने आलंकारिक लेखनी चलाई है।यथा-

तुलनीय-'प्रजा: प्रजा: स्वा इव तन्त्रायेवा'×

"स्वा इव प्रजा: प्रजा पालयति स्म।"[1]

कवि के यमक प्रयोग में यह तो निश्चित है कि कहीं भी किञ्चिन्मात्र को अर्थावरोध नहीं है। मात्र भाषागत विलास के समान प्रतीत होता है। यथा अधोलिखित पद्य में यमकीय शाब्दीक्रीड़ा अत्यधिक मनोहर ढग से बिना किसी भावात्मक गत्यवरोध के प्रस्तुत की गई है-

त्वमत्रसम्मानससारथी रथो स्व एव देहो गुणसूरथो रथ: ।
अरूक्षताक्षो दमदानचक्रवान् समन्वित: पुण्यमनीषयेषया ।।[2]

और भी देखिए-

मदमानमोहभुजगोपलयं प्रशमाभिरामसुखविप्रलयम् ।
क इवाश्रयेदभिमुखं विलयं बहुतीव्रदु:खनिलयं निलयम् ।।[3]

तथा-

उपयुज्य यन्मदबलादबला विनिबन्धयेदपि तरौ पितरौ ।
गणयेत्त्व स धनपतिं न पतिं तदिदं घटे विनिहितं निहितम्।।[4]

---

1• शिविजातक के श्लोक । के पूर्व का गद्यान्त भाग

2• ब्रह्मजातक, 55

3• अपुत्र जातक 20

4• कुम्भजातक, 17•

× शाकुन्तल IV

## श्लेषालंकार

आर्यशूर भाषा-भाव और शैली के मध्य सामञ्जस्य बनाये रखने में पूर्ण सफल थे। भारवि आदि के समान वह निबन्धनीय चित्रों तथा शैली के बीच भावात्मक व्यवधान नहीं उपस्थित करते हैं। उनके प्राकृतिक वर्णन या कथा-प्रवाह में कहीं भी भावात्मक या शैलीगत संश्लिष्टता नहीं है। अपनी रचना में उन्होंने श्लेषालंकार का अत्यल्प प्रयोग किया है। जो कुछ अपवाद स्वरूप दृष्टान्त मिलते हैं उनके कारण भाव- अवबोध में कथमपि व्यवधान नहीं होता। अभिप्राय-रोचकता ही बढ़ी है। यथा-

मुहुर्मुहुः काञ्चनपिञ्जराभिर्भाभिर्दिगन्ताननुरञ्जयन्ती ।
पयोदतूर्यस्वनलब्धहर्षा विद्युल्लता नृत्तमिवाचचार ।।

अर्थात् मेघरूपी मृदंग की आवाज से प्रसन्न होकर बिजली ने अपनी सोने की तरह पीली आभा से दशों दिशाओं को अनुरञ्जित कर नाचना शुरू किया। भाव यह है कि जिस प्रकार नर्तकी अपने लावण्यादि से दर्शकों को अनुरक्त कर नृत्य करती है तथैव बिजली अपनी हेमवत् आभा से दिशाओं को अनुरञ्जित कर (पीतिमायुक्त कर) नाचना शुरू किया। प्रस्तुत श्लोक में "अनुरञ्जयन्ती" शब्द के उपर्युक्त श्लिष्ट अर्थ के समझने में तनिक भी समय नहीं लगता।

## उपमा अलङ्कार

उपमा अलंकार अलंकारों में शिरोरत्न है।[2] जिस प्रकार नाट्यरंगमंच पर नटी अनेक भूमिका भेद से नृत्य करती हुई प्रेक्षकों का मनोरञ्जन करती है

---

उसी प्रकार उपमा रूपी नटी अनेकविध उक्ति-वैचित्र्य से नृत्य करती हुई काव्य-मर्मज्ञों को मुग्ध करती है।[1] आर्यशूर ने जातकमाला में प्रचुर मात्रा में उपमा का प्रयोग किया है। वाक्यगा श्रौती पूर्णोपमा देखिए-

ततः स तं वह्निमभिज्वलन्तं निधिं धनार्थी सहसैव दृष्ट्वा ।
परेण हर्षेण समारुरोह तोयं हसत्पद्ममिवैकहंसः ॥[2]

शशवेशधारी बोधिसत्त्व के पास एक ब्राह्मण याचक रूप में आता है। अपने पास कुछ देय न होने के कारण बोधिसत्त्व के शरीर समर्पण का वर्णन करते हुए कहा गया कि बोधिसत्त्व जलती आग में - जैसे कोई धनलोलुप अचानक धन पाकर खुश होता है उसी तरह प्रसन्न होकर आरूढ़ हो गये जैसे राजहंस खिलते हुए कमलों से भरे तालाब में प्रविष्ट होता है। लालची आदमी जैसे अचानक धन पाने पर खुश होता है उसी प्रकार बोधिसत्त्व उस ब्राह्मण जैसे अतिथि को पाकर प्रसन्न हैं साथ ही जिस प्रकार प्रफुल्ल मन एवं सहज रूप में राजहंस कमलयुक्त जलाशय में प्रविष्ट होता है वही सहजता एवं प्रफुल्लता बोधिसत्त्व जैसे उदार दानी में दिखाकर एक उत्कृष्ट भापपल्लवन कवि ने किया है।

साधारण धर्म की अभिन्नता मूलक मालोपमा का दृष्टान्त लीजिए- मैत्रीबल राजा (बोधिसत्त्व) ने पाँच यक्षों को अपने रुधिर और मांस खाने को दिया था, फलतः धरती, देव, वृक्षादि सभी ने किसी न किसी रूप में उनकी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. उपमैषा शैलूषी सम्प्राप्ता भूमिका भेदान् ।
रञ्जयति काव्यरङ्गे तद्विदो चेतः ॥ चित्रमीमांसा, उपमाप्रकरण

2. शश जातक, 33

प्रशंसा की। वृक्षों ने फूलों की वर्षा की। वहीं हवा में उड़ते फूल कहीं बादल की तरह, कहीं पक्षियों के झुण्ड की तरह कहीं चँदोवे के समान और कहीं गुँथी हुई माला के समान दिखाई पड़े और एक ही साथ राजा के चारों ओर बिखर गये-

तदम्भवद् व्योमनि मारुतेरितं पतत्रिसेनेव वितानवत्क्वचित् ।
विसृज्य मालेव ग्रथितेव कुत्रचित्समं समन्तान्नृपतेर्व्यकीर्यत: ।।[1]

अन्यत्र आर्यशूर ने कितनी मनोहारिता से इस वाक्यगा श्रौती पूर्णोपमा का प्रयोग किया है-

परीत्य कृत्स्नं मनसा नृलोकमन्यैस्वलब्धप्रणयावकाशा: ।
तमर्थिन: प्रीतमुखा: समीयुर्महाह्रदं वन्यगजा यथैव ।।[2]

अर्थात् अपने मन ही मन सारी दुनिया घूमकर दूसरे के यहाँ माँगने का अवसर न पाकर याचकगण शिबिराज बोधिसत्त्व के पास ठीक उसी तरह पहुँचने लगे जैसे जंगली हाथी महासरोवर के पास पहुँचते हैं। भाव यह है कि जैसे महासरोवर में अथाह जलराशि होती है और बिना किसी नियंत्रण, व्यवधान या आशंका के हाथी उसका यथेच्छ उपभोग करते हैं उसी प्रकार शिविराज के पास अथाह देय सामग्री है कोई व्यवधान या आशंका भी नहीं है। बिना किसी नियंत्रण या रोक-टोक के याचक यथेच्छ धन कभी भी ले सकते हैं। प्रस्तुत उपमा द्वारा आर्यशूर ने एक उत्कृष्ट दानी का अच्छा बिम्ब प्रस्तुत किया है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. मैत्रीबल जा0 62

2. शिविजातक, 4

आर्यशूर को उपमाओं से स्पष्ट होता है कि भले हो वे रसनिस्यन्दिनी न भी हों लेकिन सूक्ष्म औचित्यमयी एवं हृदयभावोदात्त हैं। अन्यत्र समासगा श्रौती पूर्णोपमा देखिए-

कुलद्वयस्यापि हि निन्दिता स्त्री यशो विभूतिञ्च तिरस्करोति ।
निमग्नचन्द्रेव निशा समेघा शोभां विभागञ्च दिवस्पृथिव्योः ।।[1]

अर्थात् "निन्दनीय नारी तो दोनों कुल की सम्पत्ति को विनष्ट कर देती है जैसे चन्द्रमा के छिप जाने पर बदली वाली रात में आकाश और धरती की शोभा नष्ट हो जाती है। उन्मादयन्ती नामक अपूर्व सुन्दरी के प्रति आसक्त राजा के साथ उसका विवाह अमात्य लोग, अपने-अपने अपमानित हो जाने के कारण कराना नहीं चाहते और उन्मादयन्ती को निन्दित नारी बताते हैं। निन्दित स्त्री बादलों से युक्त रात के समान है, क्यों कि उसका चरित्र रूप चन्द्रमा नष्ट हो चुका है। यही नहीं, जिस प्रकार ऐसी रात आकाश और पृथ्वी दोनों की शोभा नष्ट कर देती है वैसे ही चरित्रहीन स्त्री मातृकुल एवं श्वसुरकुल दोनों की कीर्ति का नाश कर देती है। यहाँ पर कवि ने आकाश और पृथ्वी दोनों के माध्यम से क्रमशः श्वसुर एवं माता को अभिव्यञ्जित किया है। साथ ही यह भी अभिव्यक्त होता है कि जैसे सघना रात्रि आकाश की शोभा एवं पृथ्वी की विभागता को नष्ट कर देती है तथैव निन्दित नारी श्वसुर कुल के यश और मातृकुल की विभूति को नष्ट कर देती है। इस प्रकार लिङ्ग, वचन का भी ध्यान रखते हुए कवि ने उत्कृष्ट भाव-पोषण किया है।

---

1. उन्मादयन्ती जातक, 7

कभी-कभी आर्यशूरभूत्ति की भाव से भी तुलना करते हैं फिर भी उनके उपमान सहजगम्य, चिरपरिचित होने से श्रीहर्षादि के समान क्लिष्टता नहीं उत्पन्न करते हैं। यथा-

यथा समेत्य ज्वलितोऽपि पावकस्तटान्तसंसक्तजलं महानदीम् ।
प्रशान्तिमायाति मनोज्वलस्तथा श्रितस्य लोकद्वितयक्षमां क्षमाम्।।[1]

कवि का तात्पर्य है कि जिस तरह जलती हुई आग भी किनारे तक जल से भरी नदी तक पहुँचकर अपने आप बुझ जाती है उसी तरह मनुष्य का मानसिक ताप दोनों लोकों के योग्य क्षमा का आश्रय ग्रहण कर शान्त हो जाता है। मानसिक ताप की प्रज्वलित अग्नि से तथा क्षमा की नदी से तुलना करके नितान्त औचित्यपूर्ण भाव- सन्निवेश किया गया है। इस वाक्यगा श्रौती पूर्णो-पमा में लिङ्ग तक का साम्य है।

इस प्रकार भामह ने जैसा लक्षण उपमालंकार का किया है[2] तदनुसार देश, काल, क्रियादि द्वारा भिन्न उपमान के साथ उपमेय की गुणलेश की समानता जातकमाला में निश्चितरूपेण यत्र तत्र पूर्ण कामनीयक के साथ हुई है और इसीतरह दण्डी का भी लक्षण[3] जातकमाला में प्रयुक्त उपमा अलंकार में पूर्णतया घटित होता है जिससे आर्यशूर के उपमा प्रयोग को कथमपि अपकृष्ट नहीं कहा जा सकता।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. क्षान्ति जातक, 23
2. विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः ।
   उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा ।।
3. यथाकथञ्चित्सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
   उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदर्श्यते।।

लेकिन वस्तुतथ्य तो यह है कि "उपमालंकार की इन परिभाषाओं में उपमा की सीमा और शक्ति का उचित बोध नहीं होता। इस विषय में कुन्तक का दृष्टि-कोण समीचीन लगता है[1]"

विवक्षितपरिस्पन्दमनोहारित्वसिद्धये ।
वस्तुन: केनचित्साम्यं तदुत्कर्षवतोपमा ।।
तां साधारणधर्मोक्तौ वाक्यार्थे वा तदन्वयात् ।
इवादिरपि विच्छित्त्या यत्र वक्ति क्रियापदम् ।।

अर्थात् वर्णनीय वस्तु के सौन्दर्य को भलीभाँति उद्घाटित करने के लिए वस्तु की समानता उसके उत्कर्ष को स्थापित करने वाले किसी अन्य से किया जाना उपमालंकार है। अत: उपमा का प्रयोग वर्णनीय के मनोहारी सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने के लिए किया जाता है तथा उपमा में सौन्दर्य का यह दर्शन साधा-रण धर्म की उक्ति में होता है, उक्ति चाहे जिस प्रकार से हो। यदि प्रस्तुत का सौन्दर्य द्विगुणित नहीं हुआ, उसमें मनोहारित्व नहीं आया तो उपमा का सफल प्रयोग नहीं अपितु वाचोयुक्ति ही है। ऐसी उपमाओं का पूर्ण रामणीयक के साथ प्रयोग कालिदास,वाल्मीकि आदि कवियों की रचनाओं में पदे-पदे मिलता है क्योंकि वे तो रससिद्ध कवि ही हैं। इस प्रकार इन कवियों की नूतन व्यंजकतामयी, हृदयभावोदात्त,लालित्यपूर्ण,रसनिस्यन्दक एवं मधुर उपमाओं की तुलना में तो निश्चित ही आर्यशूर का उपमा प्रयोग नहीं रखा जा सकता । साथ ही उनके उपमा प्रयोग में सर्वत्र सौन्दर्य द्विगुणित हुआ हो या मनोहारित्व आया हो ऐसी भी बात नहीं है। नीरस प्रयोग भी मिलते हैं जिनसे प्रस्तुत का सौन्दर्य-वर्द्धन नहीं हुआ है।

एक ओर जहाँ कालिदास की उपमाएँ प्रथम दृष्टि में हीप पाठक के मानस पटल पर छा जाती हैं, उपमाभिव्यक्ति में उनके अतिशय अभिनिवेश के कारण सादृश्य अर्थ की मनोहारिता ही उनके काव्य-रचना की आत्मा बनकर प्रतिष्ठित हो जाती है। यथा-

मातृवर्णवरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः ।
रेजतुर्गतिवशात् प्रवर्तिनौ भास्करौ मधुमाधवाविव ।।[1]

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।।[2]

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला ।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम् ।।[3]

जबकि आर्यशूर की उपमा प्रायः ऐसा कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाल पाती हैं। कहीं-कहीं नीरसता सी प्रतीत होती है या उपमा प्रयोग अप्रयोग के समान ही है या प्रयास साध्य है। यथा-

तथा ममानेन समानकालं लोकस्य दुःखं च सुखोदयं च ।
हर्तुं च कर्तुं च सदस्तु शक्तिस्तमः प्रकाशं च यथैव भानोः।।[8]

जैसे भगवान् सूर्य एक साथ अन्धकार मिटाकर प्रकाश फैलाते हैं, उसी तरह मुझमें वह शक्ति सर्वदा रहे जिससे एक ही साथ मैं संसार का दुःख दूर कर उन्हें सुख पहुँचा सकूँ। और भी जैसे-

---

1. रघुवंश
2. रघुवंश
3. रघुवंश

विद्युल्लतोद्भासितलोलजिह्वा नीला भुजङ्गा इव नैकशीर्षाः ।
आवव्रुरादित्यपथं पयोदाः प्रसक्तभीमस्तनितानुनादाः ॥[1]

अर्थात् बिजली की तरह चञ्चल और चमकीली जीभ वाले, अनेक फणों से युक्त काले नाग की तरह काले-काले बादल सूर्य की राह रोककर गरजने लगे।

किन्तु ऐसे स्थल बहुत अधिक नहीं हैं। उनकी कुछ उपमाएँ निश्चय ही औचित्यमयी एवं सौन्दर्यवर्द्धक हैं। यथा वाक्यगा श्रौती पूर्णोपमा का यह दृष्टान्त देखिए-

असंशयं त्वद्गुणरक्तसंकथैः प्रकीर्यमाणेषु यशस्सु दिक्षु ते ।
तिरोभविष्यन्त्यपरा यशःश्रियः पतङ्गतेजस्सु यथान्यदीप्तयः॥[2]

निश्चय ही आपके गुणों के प्रति अनुराग रखने वाले कथक जब आपकी यशोगाथा दशों दिशाओं में फैलाएँगे तब दूसरों की उज्ज्वल कीर्ति उसी प्रकार लुप्त हो जायेगी जैसे सूर्य के उगने पर उडगन का प्रकाश मन्द हो जाता है। वाक्यगा श्रौती पूर्णोपमा का इतर उदाहरण देखिए-

प्रमुदितार्थजनस्तुतिसञ्चितं प्रविततान नृपस्य दिशो यशः ।
तनुतंरङ्गविवर्धितविस्तरं सर इवाम्बुजकेशरजं रजः ॥[3]

---

1. सुपारग जा०, 6
2. विश्वन्तर जातक, 97
3. यज्ञ जा०, 26

अर्थात "सन्तुष्ट याचकों द्वारा की गई स्तुतियों से राजा की यशोराशि ठीक उसी तरह चारों ओर फैल गई जैसे छोटी-छोटी तरङ्गों द्वारा पद्मपराग सरोवर में अधिकाधिक व्याप्त हो जाता है।" तरंगों द्वारा सरोवर में चतुर्दिक् पद्मपराग फैलाना याचकों द्वारा ढो-ढोकर फैलाये गई यशोराशि के समान बताई गई है। यह उपमा वास्तव में पूरा भाव बिम्ब प्रस्तुत करती है एवं उत्कृष्ट कोटि की कही जा सकती है।

रूपिरभावाभिव्यञ्जक तद्धितगा आर्थी पूर्णोपमा देखिए-

सुखमत्र कुत: कथं कदा वा परिकल्पप्रणयं न चेदुपैति ।

विषयोपनिवेशनेऽपि मोहाद् व्रणकण्डूयनवत्सुखाभिमान:।।[1]

यदि कोई सुख की कल्पना न करे तो गार्हस्थ्य जीवन में सुख कब और कहाँ से टपक पड़ेगा ? जैसे किसी घाव को खुजलाने में सुख का आभास मिलता है, उसी तरह विषयाशक्ति में सुख का मिथ्या भ्रम ही होता है।

आर्यशूर पार्थिव उपमेय की अपार्थिव वस्तुओं से उपमित करते हैं लेकिन वे उपमान भी जनप्रचालित या चिर-परिचित होते हैं। यथा समासगा श्रौती पूर्णोपमा का यह पद्य लीजिए-

तत्साधु तावत् क्रियतां मृगस्य तस्योपलम्भं प्रति देवयत्न: ।

अन्त:पुरं रत्नमृगेण तेन तारामृगेणेव नभो विराजेत् ।।[2]

---

1• अपुत्र जा0, 18

2• रूरूजातक, 15

एक असाधरण रत्न मृग को पाने के लिए रानी राजा से कहती है कि उसको पाने का प्रयास कीजिए, उससे अन्त:पुर की शोभा मृगशिरा नक्षत्र युक्त आकाश की शोभा के सदृश होगी। उपमा का औचित्य यह है कि राजा का अन्तपुर सुशोभित आकाशवत् है पटरानियाँ-रानियाँ आदि सब चन्द्रादि नक्षत्रों के समान हैं। अत: सम्पूर्ण शोभा से युक्त उस अन्तःपुराकाश में प्रकृत मृग पहुँच जायेगा तो मृगशिरा नामक नक्षत्र को भी कमी पूरी हो जायेगी।

कभी-कभी कवि के उपमान कल्पित भी होते हैं और ऐसे स्थलों में, भले ही वे यत्किञ्चिन्मात्र हों-लगता है कि उपमानों को उचित या अनुचित रूप में ठूँसना चाहते हैं जिससे सर्वत्र प्राप्त सहजता क्लिष्टता में बदल जाती है। यथा पर्वत चोटी से गिरते हाथी को उपमित करते हुए विभिन्न साधारण धर्म से युक्त इस मालोपमन में आर्यशूर कहते हैं-

रेजे तत: स निपतञ्छरदीव मेघ: ।
पर्यस्तबिम्ब इव चास्तगिरे: शशाङ्क:।
तार्क्ष्यस्यपक्षपवनोग्रजवापविद्धं
श्रृङ्गं गिरेरिव च तस्य हिमोत्तरीयम् ।।[1]

"पहाड़ से गिरते समय उनकी देह की शोभा ठीक उसी तरह थी जैसे शरद् ऋतु में कोई मेघखण्ड पहाड़ की चोटी से लुढ़क गया हो अथवा अस्ताचल की चोटी से चन्द्रबिंब ही उलट गया हो। अथवा गरूण के उड़ने से उनके पंख की हवा के भयंकर वेग से उस पहाड़ की हिमाच्छादित कोई चोटी ही नीचे खिसक गई हो।"

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

## रूपक अलंकार

रूपक अलंकार के स्थल भी हमें दिखाई पड़ते हैं तथापि हमें सर्वदा ध्यान रखना चाहिए कि जातकमाला उपदेश काव्य है कवि अपनी बात को सीधे शब्दों में ही कहना चाहता है। अतः हमें उनसे बहुत कलात्मकता की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए। कतिचित् उदाहरण प्रस्तुत है–

ब्रह्मजातक में परम्परित रूपकों की लम्बी परम्परा प्रस्तुत करते हुए आर्यशूर कहते हैं–

त्वमत्र सम्मानससारथी रथी स्व एव गुणसूरथो रथः ।
अक्षताक्षो दमदानचक्रवान् समान्वितः पुण्यमनीषयेषया।।
यतेन्द्रियाश्चः स्मृतिरश्मिसम्पदा मतिप्रमोदः श्रुतिविस्तरायुधः
ह्र्युपस्करः सन्नतिचारुकूबरः क्षमायुगो दाक्ष्यगतिर्धृतिस्थिरः ।।
असद्वचः संयमनादकूजनो मनोज्ञवाङ्मन्दगभीरनिस्वनः ।
अमुक्तसन्धिर्नियमाविखण्डनादसत्क्रियाजिह्मविवर्जनार्जवः ।।[1]

गुणों को पैदा करने वाली तुम्हारी देह ही तो रथ है, तुम उसके रथी हो। तुम्हारा मन सारथी और मैत्री धुरी है। दान और संयम इसके चक्के हैं। पुण्य की इच्छा ही इसका डण्डा है। नियन्त्रित इन्द्रियाँ घोड़े, सतत जागरूकता लगाम, बुद्धि चाबुक तथा शास्त्र इसके शास्त्र हैं। लज्जा इसकी सज्जा है,

---

1. ब्रह्मजातक, 55,56,57

विनम्रता जुआ बाँधने वाली बल्ली तथा क्षमा जुआ है। दक्षता इसकी गति है धैर्य से यह डगमगाता नहीं है। बुरी बातों के नियंत्रण से इस रथ की घड़घड़ाहट बन्द होती है। मीठी बाते ही इसकी मनोहर ध्वनि है, अखण्डित संयम-नियम के कारण यह जोड़ रहित है। कुटिल कुकर्मों के परित्याग से यह कोमल बना है।

इन रूपकों की पूर्वपीठिका कठोपनिषद् का रथ रूपक प्रतीत होता है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्दियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथे ।।[1]

आर्यशूर विषयानुरूप उपमान प्रस्तुत करने का प्रायः प्रयास करते हैं। यथा निरङ्ग रूपक के इस श्लोक में मरुभूमि में तड़पते लोगों का उद्धार करने के लिए बोधिसत्त्व कहते हैं-

यत्त्वस्ति पुण्यं मम किञ्चिदेवं कान्तारमग्नं जनमुज्जिहीर्षोः ।
संसारकान्तारगतस्य तेन लोकस्य निस्तारयिता भवेयम् ।।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. कठोपनिषद् 3/3,4,5,6

अर्थात् "मरुभूमि में फँसे इन निरीहों का केवल मैं उद्धार करना चाहता हूँ। इससे मुझे यदि कुछ पुण्यफल मिल ही जाय तो उससे मैं संसार रूपी मरुभूमि में फँसे लोगों का उद्धारक बनूँ।

समस्तवस्तुविषय नामक साङ्ग रूपक देखिए-

अनेन पुण्येन तु सर्वदर्शितामवाप्य निर्जित्य च दोषविद्विष: ।
जरा-रुजा-मृत्युमहोर्मिसङ्कुलात्समुद्धरेयं भवसागराज्जगत् ।।[1]

अर्थात् " इस पुण्य के द्वारा बुद्धत्व प्राप्त कर और रागद्वेष तथा मोहरूपी शत्रुओं को जीतकर मैं जरा, व्याधि एवं मृत्युरूपी महातरंगों से युक्त भावागर से सन्तप्त प्राणियों का उद्धार करना चाहता हूँ।

परंपरित रूपक और उत्प्रेक्षा का यह संकर द्रष्टव्य है-

स मारुताघूर्णितविप्रकीर्णैर्ज्वालाभुजैर्नृत्तविशेषचित्रै: ।
वल्गन्निव व्याकुलधूमकेशा: सस्वास्न तेषां धृतिमादान:।।[1]

(वह जंगली आग) हवा से सन्चालित होकर ज्वाला रूपी भुजाओं को फैला रही थी, धूम रूपी बिखरे बालों को हिलाकर मानो नाचती उछलती आग बढ़कर वन्य जन्तुओं को अधीर बना रही थी।

इसी प्रकार परम्परित रूपक तथा उपमा का संकर देखिए-

दानोद्भव: कीर्तिमय: सुगन्धस्तस्यार्थिनां वागनिलप्रकीर्ण: ।
मन्दं जहारान्यनराधिपानां गन्धद्विपस्येव परद्विपानाम् ।।[2]

---

1. वर्त्तकापोतक जा0,

2. शिबिजा, 6

अर्थात् "राजा शिबि के दान से उत्पन्न कीर्ति रूपी सुगन्धि को याचकों की वाणी रूपी हवा ने दूर-दूर तक फैला दिया जिसने अन्य राजाओं के गर्व को उसी तरह नष्ट कर दिया जैसे गन्ध-कुन्जर की सुगन्ध गजमद को अपहृत कर लेती है।

आर्यशूर के रूपक प्रयोग की विशेषता यह है कि इसमें प्रस्तुत वस्तु लुकती छिपती सी नहीं दिखाई पड़ने लगती जैसा कि अन्य तमाम कलाकार कवियों ने किया है। प्रस्तुत की प्रधानता एवं सुस्पष्टता सर्वत्र विद्यमान है ।

## उत्प्रेक्षालङ्कार

आर्यशूर ने उत्प्रेक्षा अलंकार को भी प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया है लेकिन उनकी कल्पना -चातुरी ऊँची उड़ान नहीं भरती। श्रीहर्ष, भट्टि आदि कवियों के समान उनको अनावश्यक काल्पनिक पच्चीकारी का व्यसन नहीं था अपितु उनकी कल्पना लौकिक जगत् तक ही सीमित है। फलत: पाठक प्रथम दृष्टि में कवि का भाव बिम्ब समझ जाता है। उसके लिए उसको भावना या आयास नहीं करना पड़ता, अपितु पढ़ने के साथ ही साथ पूरा भाव मानस-पटल पर उतरता चला जाता है। फलत: भाषा और वर्णनीय वस्तु के बीच कहीं भी संश्लेष नहीं उपस्थित होता है। कुछ दृष्टान्तों के द्वारा उनकी कल्पना का विलोकन किया जा सकता है-

> चण्डानिलास्फालनचञ्चलानि भयद्रुतानीव वने तृणानि ।
> सोऽग्नि: ससंरम्भ इवाभिपत्य स्फुरत्स्फुलिङ्गप्रकरो ददाह।।
> भयद्रुतोद्भ्रान्तविहङ्गसार्थं परिभ्रमद्भीतमृगं समन्तात् ।

अर्थात् प्रचण्ड वायु से सञ्चालित होने के कारण घास-फूस हिल झूम रहे थे और धधकती हुई आग उसको मानो आवेगपूर्वक जला रही थी। हवा से झूमते हुए घास-फूस को कवि कल्पित करता है कि मानो वे जल जाने के भय से काँप रहे हों। आगे कहते हैं कि भय से घबड़ाकर पक्षी उड़ रहे थे, भयभीत जानवर चौकड़ी भर रहे थे, धूमराशि में जंगल डूब रहा था तथा आग की तेज आवाज से ऐसा लगता था मानो जंगल आर्तस्वर से कराह रहा हो। इस प्रकार ये कल्पनाएं सामान्यजनसंवेद्य हैं और सहजता के कारण निरे पाठकों को भी पूरा भाव-वैचित्र्य समझ में आ जाता है। और भी-

धाराशरैराच्छुरितोर्मिचक्रे महोदधावुत्पततीव रोषात् ।
भीतेव नौरभ्यधिकं चकम्पे विषादयन्ती हृदयानि तेषाम्।।[1]

भाव यह है - यात्री नाव में चढ़कर बीच समुद्रतक पहुँच गये हैं। दिन ढल चुका था तथा वायुवेग के कारण जलराशि पछाड़ खाने लगी थी। डरा-वने बादल बिजली की चमक के साथ घनघोर वर्षा करने लगे। उसी स्थिति का वर्णन करते हुए आर्यशूर कहते हैं कि जलधाराख्पी तीरों से तरंगों के बिध जाने के कारण समुद्र मानों क्रोधित होकर ऊपर उठने लगा। इस सब से मानो भयभीत होकर जहाज काँपने लगा जिससे यात्री अधिकाधिक शोकाकुल होने लगे। इस हवा वेग के कारण उत्ताल तरंगों का उठना गिरना मानो समुद्र का क्रोध था और लहरों का उठना गिरना मानो समुद्र का क्रोध था और लहरों के कारण जहाज का हिलना-डुलना मानो भयविह्वल होकर काँपना बताकर समुद्री यात्रा

---

1. सुपारग जातक, 8

का सहज वर्णन मनोहारित्व के साथ किया है। अन्यत्र सरोवर का वर्णन करते हुए कहते हैं कि तरंगों के कम्पन के कारण कमल काँप रहे हैं, साथ ही विकसित भी हैं अत: कवि कल्पना करता है कि मानों कमल हंस-हंसकर भँवरों को लुभाया और वे व्याकुल होकर वहाँ मडराने लगे। इसे प्रकार श्रृंगारिके चेष्टा उत्प्रेक्षित करके बड़ी सहजता के साथ कामनीयक का संचार इस पद्य में हुआ है-

विहसद्भिरिवाम्भोजैस्तरङ्गोत्कम्पकम्पिभि: ।
विलोभ्यमानाकुलितभ्रमद्भ्रमरसङ्कुलम् ।।[1]

मत्स्य जातक में प्रचण्ड ग्रीष्म काल में सरोवर के उत्तरोत्तर सूखते जाने का वर्णन करते हुए आर्यशूर कहते हैं-

प्रत्यहं क्षीयते तोयं स्पर्धमानमिवायुषा ।
अद्यापि च चिरेणैव लक्ष्यते जलदागम: ।।[2]

अर्थात् "बादलों के आने में अभी भी देर है, पर इस सरोवर का पानी तो मानों इसकी आयु से होड़ लगाकर रोज-रोज घटता ही जा रहा है।" गर्मी में चूँकि जल थोड़ा ही शेष है और प्रचण्ड ताप के कारण वह भी अत्यधिक क्षिप्र गति से सूखा करता है। इस प्रकार तालाब की थोड़ी ही बची आयु और बचे हुए थोड़े से जल में होड़ की कल्पना करके कवि ने अति सुचारू रूप से सररोवर की स्थिति को अभिव्यक्त किया है। कालिदास ने भी रघुवंश में अग्निवर्ण के

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1• हंस जा0 9

2• मत्स्य जा0 5

क्षयग्रस्त हो जाने पर लगभग इसी प्रकार का भावबिम्ब प्रस्तुत किया था-

व्योमपश्चिमकलास्थितेन्दु वा पङ्कशोषमिव धर्मपल्वलम् ।
राज्ञि तत्कुलमभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिव दीपभाजनम् ॥[1]

अर्थान्तरन्यास अलङ्कार

उपदेश काव्य होने के कारण आर्यशूर को अर्थान्तर न्यास अलंकार प्रयुक्त करने के लिए पगे-पगे अवकाश मिला है अतः बड़े ही सहज ढङ्ग से इसके द्वारा अर्थगौरव प्रस्तुत किया गया है। अर्थगौरव का क्या तात्पर्य है ? प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय जी कहते हैं कि "वास्तव में काव्य-रचना में अर्थगौरव में अनिर्वचनीय अनेक अर्थों को परम्परा लालित्य के साथ प्रस्फुटित हुई हो। जब कवि का छन्द अपने पूर्व और पश्चात् के कथा-प्रबन्ध का सूत्र अपने अर्थ में पिरोये हो। सही मायने में अर्थगौरव की यह परम्परा कालिदास में पायी जाती है। वैसे तो भारवि आदि के काव्यों में भी हम अर्थगुरुता की लीक गतानुगतिक रूप से पीटते चले आ रहे हैं।"[2] इस प्रकार इस कसौटी पर कसने से जातकमाला में अर्थगुरुता की न्यूनता भले ही सिद्ध हो सकती है किन्तु बौद्ध देशना के प्रचार की जिस भव्य-भावना ने उनकी वाणी को काव्यमय विग्रह धारण करने को उत्प्रेरित किया उसके फलस्वरूप कवि ने सर्वसामान्य ढङ्ग से अनेक सूक्तियाँ कही हैं और उनमें अनायास ही अर्थान्तरन्यास अलंकार की उद्भावना हुई है। सूक्तियों

---

1. रघुवंश, 19/51
2. कवि और काव्य शास्त्र, पृ022

का विशद विवेचन आगे सूक्तियों के अध्याय में किया जायेगा। अर्थान्तरन्यास अलंकार के कतिचित् दृष्टान्त यहाँ दिये जा रहे हैं-

तुभ्यमेव प्रयच्छामि भार्यामिमामहम् ।
व्यतीत्य न हि शीतांशुः चन्द्रिका स्थातुमर्हति।।[1]

शक्र ने परीक्षार्थ माँगी हुई विश्वन्तर राजा की पत्नी को लौटाते हुए कहता है कि " मैं आपकी पत्नी मद्री को पुनः लौटा रहा हूँ। चन्द्रमा को छोड़कर चाँदनी और कहाँ रह सकती है ? यहाँ विशेष का सामान्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। सहजता के साथ रसाभिव्यंजकता तो सुस्पष्ट हो है।

कारण का कार्य से समर्थन रूप दूसरा दृष्टान्त देखिए-

महाह्रदेष्वम्भ इवोपशोषं न दानधर्मः समुपैति सत्सु ।
याचे मतस्त्वां सुरसन्निभा या भार्यामिमार्हसि तत्प्रदातुम्।।[2]

शक्र ने विश्वन्तर राजा की परीक्षा होते हुए पत्नी की याचना की और कहता है कि "जिस प्रकार बड़े-बड़े जलाशयों का जल कभी नहीं सूखता उसी तरह सज्जनों का दानधर्म भी कभी नहीं सूखता। अतः देवी सदृश पत्नीको मुझे दे दें।

इसी प्रकार विशेष का सामान्य से समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास का उदाहरण देखिए-

---

1. विश्वन्तर जातक, 99
2. विश्वन्तर जातक, 92

बोधिसत्त्वस्तु तां दृष्ट्वा धीरोऽपि करुणावशात् ।
चकम्पे परदु:खेन महीकम्पादिवाद्रिराट् ।।
महत्स्वपि स्वदु:खेषु व्यक्तधैर्या: कृपात्मका: ।
मृदुनाप्यन्यदु:खेन कम्पन्ते यत्तदद्भुतम् ।।[1]

बच्चे को खाने के लिए उद्यत " बाघिन की इस दशा को देखकर अतिघोर होने पर बोधिसत्त्व करुणा के वशीभूत हो गये और दु:ख से भूकम्प के कारण पर्वत की तरह काँपने लगे।' इस अर्थविशेष का समर्थन करते हुए अग्रिम पद्य में कहते हैं कि "दयालु व्यक्ति अपने भारी दु:ख में भी धीरज नहीं खोते किन्तु दूसरों के सामान्य दु:ख में भी वे विचलित हो जाते हैं।"

## विशेषोक्ति अलङ्कार

जातकमाला में विशेषोक्ति अलंकार का पर्याप्त प्रयोग देखा जा सकता है। सामान्य जन जीवन से बोधिसत्त्व एवं बौद्ध धर्म की दिव्यता अभि-व्यक्त करने के लिए आर्यशूर के लिए यह अलंकार माध्यम सा बन गया प्रतीत होता है। कतिपय पद्य लीजिए-

विपुलधृतिगुणोऽप्यपत्रपिष्णु: परयुवतीक्षणविक्लवेक्षणोऽपि ।
उदितमदनविस्मय: स्त्रियं तां चिरमनिमेषविलोचनो ददर्श ।।[2]

---

1. व्याघ्री जातक, 16-17
2. उन्मादयन्ती जा09

अर्थात् "वे [बोधिसत्त्व] बड़े धीरज वाले तथा लज्जालु थे दूसरे की युवा पत्नियों को देखकर उनकी आँखों में पीड़ा होती थी, किन्तु यह क्या ? उन्मादयन्ती को कामार्त्त हो अपलक निहारते रहे।" इस प्रकार धैर्य-लज्जादि कारणों के होते हुए भी उन्मादयन्ती को भी सब स्त्रियों की तरह नहीं देखे अर्थात् धैर्यादि का जो फल होता है वह न होकर विपरीत दिशा में राजा कामर्त्त हो गया। फलत: वहाँ विशेषोक्ति अलंकार है और इसके द्वारा उन्मादयन्ती के सौंदर्य की रुचिर अभिव्यन्जना हुई है।

इसी प्रकार उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति का यह उदाहरण भी देखिए-

छायातरो: स्वादुफलप्रदस्य च्छेदार्थमागूर्णपरश्वधानाम् ।
धात्री न जल्लां यदुपैति भूमिर्व्यक्तं तदस्या हतचेतनत्वम्।।[1]

"शीतल छाया और स्वादिष्ठ फल देने वाले इस वृक्ष को काटने के लिए जिन्होंने कुठार उठाया है उनके कर्म से लज्जित धरती की छाती यदि नहीं फट गई तो निश्चय ही इससे सिद्ध होता है कि यह सचमुच चेतनाशून्य है, जड़ है।" दानी एवं प्रजाहितैषी राजा विश्वन्तर के देशनिकाला करने पर याचकों ने ऐसा कहा है। तात्पर्य यह है कि ऐसे श्रेष्ठ राजकुमार के देशनिकाल देने पर धरती फट जानी चाहिए थी, किन्तु फटी नहीं। अर्थात् देशनिकाला रूप कारण के होते हुए भी पृथ्वी का फटना रूप कार्य नहीं हुआ अत: उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति है।

---

1. विश्वन्तर जा० 40

इसी प्रकार विश्वन्तर राजा के गुणों का बखान करते हुए अन्यत्र कहा गया-

युवापि वृद्धोपशमाभिरामस्तेजस्व्यपि क्षान्तिसुखस्वभावः ।
विद्वानपि ज्ञानमदानभिज्ञः श्रिया समृद्धोऽप्यवलेपशून्यः ॥[1]

राजा विश्वन्तर युवा होकर भी वृद्धोचित शान्ति से युक्त, तेजस्वी होकर भी क्षमाशील, विद्वान् होकर भी ज्ञानमद से अनभिज्ञ तथा लक्ष्मीपात्र होकर भी अभिमान से रहित थे। इस प्रकार प्रस्तुत पद्य में विशेषोक्ति के माध्यम से राजा की उत्कृष्टता बड़े सरल ढङ्ग से अभिव्यक्त हुई है।

पर्यायोक्त अलङ्कार

आर्यशूर कभी-कभी अपनी बात सीधे-सीधे न कहकर प्रकारान्तर से कहते हैं जिससे अर्थावबोध में चारुता आ जाती है। कहीं-कहीं पर्यायोक्त अलंकार अत्यधिक आकर्षक बन गया है। यथा-

क्रियमाणावकाशं तु दानप्रीत्या पुनः पुनः ।
न प्रसेहे मनस्तस्य च्छेददुःखं विगाहितुम् ॥
आकृष्यमाणं शितशस्त्रपातैः प्रीत्या पुनर्दूरमपास्यमानम् ।
खेदालसत्वादिव तस्य दुःखं मनःसमुत्सर्पणमन्दमासीत् ॥[2]

---

1. विश्वन्तर जा० 3
2. मैत्रीबल जा० 44-45

राजा मैत्रीबल पाँच राक्षसों को अपने शरीर का मांस दान कर रहे हैं। तलवार के प्रहार से काट-काटकर देते जाते हैं किन्तु उनको किञ्चित् मात्र भी कष्ट का एहसास नहीं हो रहा है। उसी को कवि आलंकारिक भाषा में कहता है कि "दान देने की खुशी से उनका मन इस तरह भर गया कि देह से मांस कटने की पीड़ा को उसमें घुसने की जगह ही नहीं रह गई। कष्ट उनके पास फटकने ही नहीं पा रहा था, क्योंकि तलवार की चोट से दूर हटा देते थे। मानों थककर वह चूर हो गया हो और मन्द गति से इनके पास पहुँच पाता था।" इस प्रकार पर्याय द्वारा दानी बोधिसत्त्व और तलवार से मांस कटने की स्वाभाविक स्थिति का हृदयावर्जक भाव उपस्थापित किया गया है। अन्यत्र देखिए-

> दृष्टप्रवाणासु च दिक्षु तस्य व्याप्ते च लोकत्रितये यशोभिः ।
> बभूव नैवान्ययशोलवानां प्रसर्तुमुत्साह इवावकाशः ।।[1]

अर्थात् दिशाओं ने राजा विश्वन्तर की विजय देखी थीं। तीनों लोकों में व्याप्त उनके यश के कारण दूसरे लोगों की छोटी-मोटी कीर्ति को फैलने का न तो कोई उत्साह था और न अवकाश ही। इसी प्रकार और भी-

> परस्य नाम भार्यायां ममाप्येवमधीरता ।
> तदुन्मत्तोऽस्मि सन्त्यक्तो लज्जयेवाद्य निद्रया।।[2]

रजा कहता है कि परनारी के लिए मैं इतना अधीर बन गया हूँ कि नींद और लाज मुझे छोड़कर दूर हो गई हैं और मैं पागल बन गया हूँ।

---

1. विश्वन्तर जा0 4

## व्यतिरेक अलङ्कार

आर्यशूर उपमान को गुणीभूत करके भी यत्र तत्र प्रकृत का भाव-पल्लवन करते हैं। यथा-

मदप्रगल्भान्यपि कोकिलानां रुतानि नृत्यानि च बर्हिणानाम् ।
द्विरेफगीतानि च नाभिरेजुस्तत्राङ्गनाजल्पितनृत्तगीतैः ।।[1]

अर्थात् महिलाओं की मधुर बोली और मोहक गीतों के सामने मत्त कोयल के प्रगल्भ कूंजन, मयूरों के मादक नृत्य और मधुकरों के गीत भी फीके पड़ गये। यहाँ पर महिलाओं की बोली,नृत्य और गीत रूपी उपमेय के सामने कोकिल-कूंजन् मयूर-नृत्य और भ्रमर -गीत रूप उपमान न्यून बताये गये हैं, अतः व्यतिरेक अलंकार है। अन्यत्र देखिए-

सकाननां साद्रिवरा ससागरा गता विनाशं शतशो वसुन्धरा ।
युगान्तकाले सलिलानलानिलैर्न बोधिसत्त्वस्य महाकृपालुता ।।[2]

अर्थात् जंगल,पहाड़ और समुद्रों के साथ यह धरती युगान्तकाल में पता नहीं कितनी बार विनष्ट हुई पर बोधिसत्त्व की दयालुता कभी कम नहीं हुई।

---

1. क्षान्ति जा0,10

2. 24 वाँ महाकपि जा0,1

## समुच्चयालङ्कार

जातकमाला में प्रस्तुत वर्ण्य विषय को अभिपुष्ट करने के लिए अनेकानेक कारणों को बताया है, अत: समुच्चयालंकार प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यथा-

भयेन मृत्यो: परलोकचिन्तया कुलाभिमानेन यशोनुरक्षया ।
सुशुक्लभावाच्च विरूढया ह्रिया जन: स शीलामलभूषणोऽभवत्।।[1]

अर्थात् "मृत्यु के भय से, परलोक की चिन्ता से, कुल के अभिमान से, यशरक्षा के विचार से पवित्र भाव और लज्जा उत्पन्न होने से लोगशील रूपी पवित्र अलंकार से अलंकृत हुए।" यहाँ पर लोगों के शीलवान् होने के लिए मृत्यु-भय रूप कारण होने पर भी अनेकानेक कारणों का उल्लेख है। अत: समुच्चय अलंकार है। इसी प्रकार और भी देखिए-

मदमानमोहभुजगोपलयं प्रशमाभिरामसुखविप्रलयम् ।
क इवाश्रयेदभिमुखं विलयं बहुतीव्रदु:खनिलयं निलयम् ।।[2]

घर दारूण विपत्तियों का स्थान है, मद,अभिमान और मोहरूपी साँपों का निवास स्थान है, शान्ति जन्य सुख का विनाशक है तथा सामने खड़ा साक्षात् सर्वनाश है। अत: घर का आश्रय भला कौन ग्रहण करेगा ? प्रस्तुत पद्य में समुच्चय,यमक और वृत्त्यनुप्रास का संकर अति रूचिर है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. यज्ञ जा0,19

2. अपुत्र जा0.20

और भी-

"अथ स महात्मा कुकार्यव्यासङ्गदोषसम्बाधं प्रमादास्पदभूतं धनार्जन-रक्षणप्रसङ्गव्याकुलमुपशमविरोधिव्यसन शरशतलक्ष्यभूतमपर्यन्तकर्मान्तानुष्ठानपरिग्रहश्रम-तृप्तिजनकं कृशास्वादं गार्हस्थ्यमवेत्य ............. तापसप्रव्रज्याविनियमपरो बभूव।[1]

अर्थात् इसके बाद उस महात्माने गृहस्थी को धनोपार्जन और संरक्षण की आशक्ति से ग्रसित, अनेक कुकर्मों का घर, प्रमाद का स्थान, शान्ति का संहारक शतसहस्र विपदाओं के तीरों का लक्ष्यस्थान, अनन्त अपकर्मों से आक्रान्त, अल्पसुखद एवं अतृप्तिजनक मानकर, प्रव्रज्या के नियम पालन करने में लीन हो गये। इसी प्रकार-

तस्यश्रुतग्रहणधारणपाटवं च
भक्त्यन्वयश्च सततं स्वकुलप्रसिद्धः ।
पूर्वे वयस्यापि शमाभरणा स्थितिश्च
प्रेमप्रसादसुमुखं गुरुमस्य चक्रुः ।।[2]

पठित शास्त्रों को हृदयङ्गम करने वाली उन (बोधिसत्त्व) की योग्यता ने, परम्परागत स्थिर उनकी गुरुभक्ति ने, बचपन में भी उनके शान्त स्वभाव ने उनके गुरु को प्रेम और प्रसन्नता से भर दिया।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. अगस्त्य जा0 द्वितीय गद्य खण्ड

2. ब्राह्मण जा0, 1 श्लोक

इस प्रकार जातकमाला का अनुशीलन करने पर अन्य अनेक अलंकार भी यत्किन्चित पाये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का अभिनिवेश अलंकार के प्रति न होकर भावाभिव्यक्ति के प्रति है, अतः जो भी अलंकार पाये जाते हैं वे सहज रूप से प्रयुक्त हुए हैं, उनके कारण भाषा और रसभाव की अन्विति में कोई व्यवधान नहीं आता है। कतिपय और अलंकार देखिए जो न्यूनाधिक रूप में यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

दीपक अलंकार

अविस्मयः श्रुतवतां समृद्धानाममत्सरः ।
सन्तोषश्च वनस्थानां गुणशोभाविधिः परः ।।[1]

पढ़े लिखे लोगों में अभिमानहीनता, धनवानों में द्वेषहीनता और वनवासियों में सन्तोष इनके गुणों की शोभा में चार चाँद लगाने वाले होते हैं।

अन्योऽन्य अलंकार

सुखानुलोमे गुणबाधिनिक्रमे
गुणानुकूले च सुखोपरोधिनि ।
नरोऽपि तावद्गुणपक्षसंश्रया -
द्विराजते किम्वथ तिर्यगाकृतिः ।।[2]

---

1. अगस्त्य जा०, 6

सुख की राह धर्म के लिए बाधक है और धर्म की यह सुख के लिए बाधक है। धर्म की राह पर चलकर मनुष्य भी शोभा सम्पन्न होता है, फिर पशु पक्षियों का तो कहना ही क्या है।

परिसंख्या अलङ्कार

मैत्री तस्य बलं ध्वजाग्रशबलं त्वाचारमात्रं बलम्
नाऽसौ वेत्ति रुषं न चाऽऽह परुषं सम्यक च गां रक्षति ।
धर्मस्तस्य नयो न नीतिनिकृति: पूजार्थमर्थ:सता -
मित्याश्चर्यमयोऽपि दुर्जनधनं गर्वं च नालम्बते ।।[1]

अर्थात् मैत्री ही उनका बल है, आचार रक्षार्थ उनका सैन्य संगठन है। उनमें न तो क्रोध है न कभी कठोरे वचन बोलते हैं। वे पृथ्वी की रक्षा में सदैव तत्पर हैं। कुटिल राजनीति नहीं धर्म ही उनका नेता है, उनका धन सज्जनों की परिचर्या पर व्यय होता है, फिर भी न तो वे किसी दुष्ट की सम्पत्ति लेते हैं और न अभिमान ही करते हैं। वे अपने-आप में अद्भुत हैं।

ससन्देहालङ्कार

कौमुदी किं न्वियं साक्षाद्भवनस्यास्य देवता ।
स्वर्गस्त्री दैत्ययोषिद्वा न ह्येतन्मानुषं वपु: ।।[2]

क्या यह (उन्मादयन्ती स्त्री) इस घर की देवता है,साक्षात् कौमुदी है, किम्वा अप्सरा या असुराङ्गना है, मनुष्य की आकृति तो है नहीं।

---

1. मैत्रीबल जा0,14
2. उन्मादयन्ती जा010

## व्याजस्तुति अलङ्कार

अस्मद्धितावेक्षणदक्षिणेन विदर्शितोऽयं भवतार्यमार्गः ।
युक्ता विशेषेण च दैवतेषु परानुकम्पानिपुणा प्रवृत्तिः ॥[1]

पापी मार बोधिसत्त्व के पुण्य को न देख सकने के कारण उनको पथभ्रष्ट करना चाहता है और धन देने से रोकना चाहता है तथा विभिन्न तर्क प्रस्तुत करता है। इस पर श्रेष्ठि(बोधिसत्त्व) कहता है कि "आप हमारे परम हितचिन्तक हैं। आपने कृपापूर्वक आर्यों द्वारा आचरित राह दिखाई है। आप देवता हैं और अकारण दूसरों के प्रति दया दिखाना आपके लिए उचित ही है।" अप्रत्यक्ष में यह मार की निन्दा है,अतः व्याजस्तुति अलंकार है।

## परिकर अलंकार

उन्मादविद्यां व्यसनप्रतिष्ठां
साक्षादलक्ष्मीं जननीमघानाम् ।
अद्वैतसिद्धां कलिपद्धतिं तां
क्रीणीत घोरां मनसस्तमिस्राम् ॥[2]

मद्य की निन्दा करते हुए आर्यशूर कहते है कि यह उन्माद पैदा करने वाली विद्या, विपत्ति का घर,साक्षात् दरिद्रा,पाप की जननी और कलि का निश्चित मार्ग है। इस घोर मानसिक अन्धकार को खरीदो।

---

1. चौथा श्रेष्ठि जा0,10
2. कुम्भ जा0,24

## विषम अलंकार

जाति: क्वेयं तद्विरोधि क्व वेदं त्यागौदार्थं वेत स: पाटवं च ।
विस्पष्टोऽयं पुण्यमन्दादराणां प्रत्यादेशो देवतानां नृणां च ।।[1]

"कहाँ इसकी पशु योनि और कहाँ यह विरोधी त्याग की उदारता और मन की दृढ़ता। स्पष्ट ही इसने पुण्य की ओर से उदासीन मनुष्यों और देवों को जीत लिया है। प्रस्तुत स्थल में व्यतिरेक अलंकार भी है और परस्पर निरपेक्ष होने से (संसृष्टि) अलंकार है।

इस प्रकार जातकमाला में पतङगम दृष्टिपात करने पर कहा जा सकता है कि आर्यशूर का अलंकार प्रयोग भाषा-भाव के अनुकूल ही है। भाषामें सहजता है, अत: अलंकारों का स्वभावत: विलास हुआ है। साथ ही यह भी अवधेय है कि काव्य अर्थगुरुता से ओतप्रोत है। आर्यशूर कोमल भावों के प्रकाशन में भी उतने ही समर्थ हैं जितने उग्र भावों के प्रकाशन में। अर्थात् उनकी कृति में शाब्दी सुष्ठुता के साथ-साथ अर्थगाम्भीर्य भी विद्यमान है। आर्यशूर से हम बहुत बड़ी अपेक्षा तो नहीं कर सकते किन्तु जितना उन्होंने लिखा है प्रौढ़ता, अनुभूति तथा भावुकता के साथ लिखा है। आलंकारिक बोझ से आक्रान्त होने के कारण कथावस्तु की स्वाभाविकता नष्ट न होने पाये यही प्रयास कवि का रहा है। उसने वाल्मीकि, अश्वघोष, कालिदास आदि की तरह यथार्थ एवं सादृश्यमूलक सरल भावात्मक शैली का आश्रय लिया है। माघ, भारवि तथा बाण आदि की तरह चमत्कारमूलक संश्लिष्ट शैली का नहीं। उनका काव्य सहृदय पाठकों के लिए शस्य-श्यामल, सुरभित एवं कुसुमित उद्यान है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

षष्ठ अध्याय

जातक माला में प्रयुक्त रस विवेचन

रसविवेचन

प्रतिबद्ध होकर लिखे गये काव्यों में भले ही मान्यता विशेष का प्रचार अथवा उपदेश काव्यकार की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हो, किसी विशेष स्थिति में किसी को अपने बुद्धि का चमत्कार दिखाकर तात्कालिक प्रभाव उत्पन्न करके धनार्जन के लिए लिखे गये काव्यों में भले ही श्लेष, यमक आदि अलंकारों की प्रधानता हो किन्तु सहृदय पाठक को अथवा कवि को भी अपनी उस रचना में अधिक आनन्द का अनुभव होता है जो रससम्पृष्ट हो। वाल्मीकि का आदिकाव्य उनकी चित्त की भाव प्रबलता की स्थिति में ही उत्पन्न हुआ है, इसमें किसी को सन्देह नहीं है। आचार्य आनन्दवर्धन आदि ध्वनिवादियों के अनुसार तो वही काव्यात्मा है।[1] महिमभट्ट, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यों के मत में तो रसादि के अभाव में कोई रचना काव्य हो ही नहीं सकती[2] इसलिए आदि कवि ने अपने वाक्य को स्वयं श्रृंगार आदि रसों से समन्वित किया है।[3] आचार्य भरत के अनुसार तो रसादि योजना के विना कोई काव्य,

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. काव्यस्यात्मा स एवार्थः तथा चादिकवेः पुरा ।
   क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ।।ध्वन्यालोक, 1/5

2. (क) कविव्यापारो हि विभावादिसंयोजनात्मा रसाभिव्यक्त्यव्यभिचारी काव्यमुच्यते। व्यक्तिविवेक, पृ0 16

(ख) तस्य रसात्माभावे मुख्यवृत्त्या काव्यव्यपदेश एव न स्यात् (वहीपृ098

(ग) "रसात्मकं च काव्यम्" । वही पृ0 126

(3) रसैः श्रृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
   वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्।। "रामायण, 1/4/9"

सामान्य व्यवहार एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं में प्रचलित रहा है। वेदों में मधु, दुग्ध, सोम जल आदि के लिए जिस प्रकार रस शब्द का प्रयोग मिलता है उससे स्पष्ट है कि पदार्थ-सार ही रस है। सम्भवतः इसी आधार पर आगे चलकर आयुर्वेद में द्रव्य, गुण, धातुशक्ति, पदार्थस्वाद आदि के लिए रस संज्ञा ग्राह्य हुई। जिसका रूढ़ार्थ पारद या वीर्य के रूप में हुआ। उपनिषदों में जिस प्रकार वेदों की अनेक भौतिक कल्पनाओं को सूक्ष्म आध्यात्मिक रंग दिया गया उसी प्रकार रस का भी आध्यात्मिक रूपान्तर हुआ। वृहदारण्यक उपनिषद् में "प्राणो वा अङ्गानां रसः" कहकर रस को सारभूत तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया तो तैत्तिरीय उपनिषद् में स्वयं ब्रह्म को रसरूप कहा गया।[1] छान्दोग्य उपनिषद् में रस के आठ प्रकारों का उल्लेख करते हुए क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म होने की प्रक्रिया का वर्णन प्रस्तुत किया गया।

एषां भूतानां पृथ्वी रसः। पृथिव्या आपो रसः। अपां ओषधयो रसः। ओषधीनां पुरुषो रसः। पुरुषस्य वाग् रसः। वाच ऋग् रसः। ऋचः साम रसः। साम उद्गीथो रसः।[2]

उपनिषदों के साथ ही "रस" संज्ञा का प्रवेश दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत हुआ और भारतीय दर्शन की प्राचीनतम धाराओं में से एक सांख्य ने अपनी विचार"प्रणाली में स्थान दिया। सांख्य शास्त्र की विषय पद्धति में पञ्च महाभूतों की प्रकृति पर विचार करते हुए [illegible] निरपेक्ष वस्तुमात्र के लिए "रस" संज्ञा

---

1. "रसो वै सः" तैत्तिरीयोपनिषद्, 2/7

2. छान्दोग्योपनिषद् 1/1/2-3

का प्रयोग हुआ है।[1] इस प्रकार काव्यशास्त्रीय प्रमेय के रूप में प्रतिष्ठित होने से पूर्व रस की पदार्थ वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक परम्पराएँ अत्यन्त विकसित रूप में भलीभाँति प्रचलित थीं। कामसूत्र में भी रस शब्द प्रयुक्त हुआ है। वहाँ रस को रीति,प्रीति, राग,वेग,आदि का पर्याय कहा गया है।[2] इस आधार पर कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि कामसूत्रकार वात्स्यायन के समय या उसके आसपास रस के शास्त्रीय अर्थ का आविर्भाव हो गया था।[3] डॉ० निर्मला जैन का विचार है कि "भरत के नाट्यशास्त्र में रस-सिद्धान्त को जिस प्रकार विस्तृत रूप दिया गया है वह विद्वानों के अनुसार तत्कालीन आयुर्वेद के अन्तर्गत विकसित रसचर्या के सर्वथा समानान्तर है।[4] विद्वानों ने तो यहाँ तक लक्ष्य किया है कि भरतमुनि ने रस के अतिरिक्त भाव, भावना आदि शब्द भी सुश्रुत प्रणीत "आयुर्वेदसंहिता" से ग्रहण किय है।[5] अन्य क्षेत्रों से गृहीत होने

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. डॉ० सुरेन्द्र बारलिङ्गे,"सौन्दर्यतत्त्व और काव्यसिद्धान्त;पृ०60
2. "रसो रतिप्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायः।
"कामसूत्र, 2/1/65
3. डॉ नगेन्द्र, "रससिद्धान्त", पृ०8
4. रस सिद्धान्त और सौंदर्यशास्त्र, रसचिन्तन का ऐतिहासिक विवरण-परिच्छेद-2
5. डी०के० बडेकर,"रससिद्धान्त का स्वरूप",आलोचना,अप्रैल 3/1952,पृ०

के कारण ही रस काव्यशास्त्र के अन्तर्गत आरम्भ में कुछ अपरिचित सा था। इसलिए नाट्यशास्त्र में भरतमुनि को यह प्रश्न करना पड़ा कि "रस इति क: पदार्थ:?"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय सौन्दर्यदर्शन का मूल आधार है काव्यशास्त्र। यद्यपि दर्शन में भी विशेषकर आनन्दवादी आगम ग्रन्थों में आत्म-तत्त्व के व्याख्यान के अन्तर्गत सौन्दर्यानुभूति के विषय में प्रचुर उल्लेख मिलते हैं तथापि सौन्दर्य के आस्वाद और स्वरूप का व्यवस्थित विवेचन काव्यशास्त्र में ही मिलता है। डॉ० नगेन्द्र कहते हैं कि "आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि में सौन्दर्य-चेतना एक मिश्र वृत्ति है। इसके योजक तत्त्व हैं﴾1﴿ प्रीति अर्थात् आनन्द ﴾2﴿ विस्मय। भारतीय काव्यशास्त्र इस रहस्य से आरम्भ से ही अवगत था। उसके दो प्रतिनिधि सिद्धान्त रस और अलंकार क्रमश: प्रीति और विस्मय के ही शास्त्रीय विकाश हैं। सौन्दर्य के आस्वाद में निहित प्रीति तत्त्व का प्राधान्य "रस सिद्धान्त" में प्रस्फुटित और विकसित हुआ और उधर विस्मय तत्त्व की प्रमुखता ने वक्रता अतिशय आदि के माध्यम से अलंकारवाद का रूप धारणं किया। इन दोनों में "रस सिद्धान्त के केवल कालक्रम की दृष्टि से ही नहीं अपितु प्रभाव व प्रसार की दृष्टि से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वास्तव में यही भारतीय काव्यशास्त्र की आधारशिला है।"

रस सम्प्रदाय के सर्वप्रमुख आचार्य हैं अभिनवगुप्त। उनकी क्रान्तदर्शी प्रतिभा ने रससिद्धान्त के इतिहास में क्रान्ति कर दी। दनके विषय में यह प्रश्न

---

1. "रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र" पृ02।

2. "रस सिद्धान्त", पृ0 3 ।

किया जाता है कि वे रसवादी थे या ध्वनिवादी? वास्तव में रस व रसध्वनि में कोई मूलत: भेद नहीं है। फिर इन दोनों सम्प्रदायों में व्यावहारिक भेद तो स्पष्ट ही है। वर्तमान आलोचनाशास्त्र की शब्दावली में यह अनुभूति और कल्पना के प्राधान्य का भेद है। दोनों ही सम्प्रदाय अनुभूति और कल्पना को अनिवार्यत: अन्योन्याश्रित मानते हैं। परन्तु बलाबल का भेद दोनों में स्पष्ट है। बलाबल की कसौटी पर कसने से अभिनव गुप्त का रस के प्रति आग्रह स्पष्ट हो जाता है-

" तेन रस एव वस्तुत: आत्मा, वस्त्वलङ्कारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्यभिप्रायेण ध्वनि: काव्यस्यात्मेति सामान्येनोक्तम्।"

इसलिए रस ही वस्तुत: काव्यात्मा है, वस्तु व अलङ्कारध्वनि वहीं काव्य सञ्ज्ञा प्राप्त करते हैं जहाँ रसपर्यवसायी होते हैं। ये दोनों भी वाच्य की अपेक्षा उत्कृष्ट होते हैं, अत: सामान्य रूप से ध्वनि को काव्यात्मा कहा गया है।[1]

यथोक्तम्-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।

करोति कीर्तिं प्रीतिञ्च साधुकाव्यनिषेवणम्।।

तथापि तत्र प्रीतिरेव प्रधानम्। अन्यथा प्रभुसम्मितेभ्यो वेदादिभ्यो मित्रसम्मितेभ्य इतिहासादिभ्यो व्युत्पत्तिहेतुभ्यः कोऽस्य काव्यरूपस्य व्युत्पत्ति-हेतोर्जायासम्मितत्वलक्षणो विशेष इति प्रधान्येनानन्द एवोक्त:। चतुर्वर्गव्युत्पत्तेरपि

---

1. ध्वन्यालोकलोचन, पृ0 85

पानन्द एव पार्यन्तिकं मुख्यं फलम्।[1]

अर्थात् सत्काव्य के सेवन से धर्मार्थकाममोक्ष तथा कलाओं में निपुणता एवं कीर्ति व आनन्द की प्राप्ति होतो है फिर भी वहाँ आनन्द ही प्रधान है। अन्यथा उपदेशार्थ प्रभुसम्मित वाक्यों का अवलम्बन करने वाले वेदादि तथा मित्रसम्मित वाक्यों का अवलम्बन करने वाले इतिहास आदि से कान्ता सम्मित शैली का आश्रय लेने वाले काव्य में क्या वैशिष्ट्य होगा ? आनन्द की प्रधानता से ही इस वैशिष्ट्य का निर्देश किया गया है। चतुर्वग की व्युत्पत्ति में आनन्द ही अन्तिम और मुख्य फल है। अन्यत्र वह कहते हैं -

प्राधान्यादिति। रसपर्यवसानादित्यर्थः। तावन्मात्राविश्रान्तावपि चान्यशाब्दवैलक्षण्यकारित्वेन वस्त्वलङ्कारध्वनेरपि जीवितत्वमौचित्यादुक्तमिति भावः।[2]

अर्थात् रस व भाव प्रधान होते हैं। आशय यह है कि चर्वण का पर्यवसान रस व भाव में ही होता है। यद्यपि केवल वस्तु व अलङ्कार में काव्यास्वादन की विश्रान्ति नहीं होती तथापि दूसरे शब्द-बोध की अपेक्षा इनमें भी कुछ विलक्षणता होती है, इसी औचित्य के कारण इन्हें भी काव्यात्मा कह दिया गया है।

---

1. वहीं० पृ० 41।
2. ध्वन्यालोकलोचन पृ० 90

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जहाँ ध्वनिकार रस के प्रति पक्षपात करते हुए भी वस्तु अलंकार ध्वनि को मुक्त भाव से ग्रहण करते हैं वहाँ अभिनव गुप्त रस के प्रति अपने नितान्त आग्रह के कारण उन दोनों को सायास ही स्वीकार करते हैं। मूल लेखक और काव्यकार के दृष्टिकोण का यह भेद अन्त तक बना रहता है।

जहाँ तक रसों की संख्या का प्रश्न है- आचार्य भरत के अनुसार श्रृंगार,हास्य,करूण,रौद्र,वीर,भयानक,बीभत्स तथा अद्भुत ये आठ रस काव्य या नाट्य में निबद्ध होते हैं। मम्मट ने इनके अतिरिक्त शान्त को भी स्वीकृत किया है। विश्वनाथ ने वात्सल्य रस की भी स्वीकृति दी है। वैष्णव प्रचार के अनन्तर जब विष्णुभक्ति प्रधान काव्यों की रचना होने लगी, उनकी समीक्षा करने वाले आचार्यों ने "भक्ति" नामक ग्यारहवें रस को भी स्वीकार किया। इनके अतिरिक्त भाव,रसाभास,भावाभास,भावोदय,भावसन्धि,भावशान्ति,भावशबलता भी रस के समान ही चारूत्वातिशय के हेतु माने गये हैं।

भारतीय काव्य-चिन्तन का यह वैचित्र्य है कि एक ओर जहाँ रसों की अनन्तता की स्थापना की गई वहीं दूसरी ओर एक रस में सबके समाहार के भी प्रयत्न किये गये। यह अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि विस्तारप्रिय होने पर भी अन्ततः भारतीय दृष्टि अद्वैत पर ही जा टिकती है-अनेकता में एकता का अनुसन्धान ही सदैव उनका अभीष्ट रहा है। इस प्रकार रसों के भेद -प्रभेदों के विस्तार के साथ-साथ अनेक रसों का एक में समाहार का उपक्रम भी निरन्तर होता रहा है। ऐतिहासिक क्रम के अनुसार सर्वप्रथम भवभूति ने यह प्रयास किया। तमसा के माध्यम से वह कहते हैं-

एको रस: करूण एव निमित्तभेदाद्
भिन्न: पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम् ।।[1]

यदि इसे पात्र के माध्यम से स्वयं कवि का ही उद्गार मान लिया जाय तब भी यह उद्गार सम्पूर्ण करूणाप्लवित नाटक का भावार्थ ही है शास्त्रीय स्थापना नहीं। भवभूति कवि की यह सैद्धान्तिक मान्यता है जो उन्होंने नाटकीय शैली में प्रकट किया है। उत्तररामचरित के टीकाकार वीरराघव ने इसकी पुष्टि की है और भोज प्रतिपादित श्रृंगार सिद्धान्त के विरूद्ध करूण पक्ष मे दो तर्क दिया है§1§"प्राचुर्यात्" अर्थात् जोवन मे करूणा का प्राचुर्य है§2§रागिविरागिसाधारणयात्"- रागी विरागी दोनों हो सामान्य रूप से उसका अनुभव करते हैं।[2] §जबकि श्रृंगार काअनुभाव मात्र रागी ही करते हैं§ किन्तु इस व्याख्या के उपरान्त भी अभीष्ट अर्थ की सिद्धि नही हो पाती क्योंकि करूण के स्थायीभाव शोक का आधार होता है, इष्ट का नाश, इष्ट का वियोग मात्र नहीं और शास्त्रीय कसौटी पर उत्तररामचरित का अङ्गी रस विप्रलम्भ सिद्ध होता है करूण नहीं। अर्थविस्तार के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि भवभूति के करूण रस का स्थायी भाव शोक न होकर करूणा है जो दया नही

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. एको ...समागम्।। उत्तररामचरित, 3/47

2. उत्तररामचरित, सम्पादक एम0आर0काले, 1924, पृ097

अपितु व्यापक अर्थ में सहृदयता की हृदयद्रुति की द्योतक है। शंकुक ने करुणा का यही अर्थ माना है-

सदयहृदयता हि करुणेति लोके प्रसिद्धा। सा लिङ्गैरनुकर्त्तरि शोकं प्रतियतां सामाजिकानामिति तत्र करुणव्यपदेश: इति श्रीशङ्कुक:।[1]

भवभूति के लगभग चार शताब्दी बाद अभिनवगुप्त ने शान्त की मूल रस के रूप में प्रतिष्ठापना की। उन्होंने प्रस्तुत प्रसङ्ग में भी नाट्य शास्त्र के किसी प्राचीन संस्करण का हवाला देते हुए भरत को ही प्रमाण माना है।[2] नाट्यशास्त्र के एक संस्करण में जिसमें कि शान्त का पृथक् विवेचन मिलता है- स्पष्ट लिखा है-

भावा विकारा:रत्याद्या: शान्तस्तु प्रकृतिर्मत: ।
विकार: प्रकृतेर्जात: पुनस्तत्रैव लीयते ।।
स्वं-स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भाव: प्रवर्त्तते ।
पुनर्निमित्तापाये च शान्त एवोपलीयते ।।[3]

प्रस्तुत मत निश्चय ही अभिनव से पूर्व का है क्योंकि उन्होंने अपने मत की पुष्टि में इसको उद्धृत किया है। अपनी ओर उन्होंने निम्नलिखित तर्क दिये हैं-(क) शान्तरस का स्थायी भाव है आत्मज्ञान जो परिकल्पित विषयभोग आदि की वासना से मुक्त शुद्ध आनन्दमय है- तेनात्मैव ज्ञानानन्दादिविशुद्धधर्मयोगी परिकल्पितविषयभोगरहितोऽत्र स्थायी।(ख) शान्त का स्थायी भाव

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. हिन्दी अभिनव भारती ,पृ0579
2. हिन्दी अभिनवभारती पृ0 635
3. नाट्यशास्त्र, 6/84

तत्वज्ञान या आत्मज्ञान अन्य समस्त स्थायी भावों का आधार है, स्थायियों का स्थायी है अत: स्थायितम है। अन्य स्थायी यहाँ व्यभिचारित्व को प्राप्त करते हैं-

तत्वज्ञानन्तु सकलभावान्तरभित्तिस्थानीयं सर्वस्थायिभ्य: स्थायितमं सर्वा रत्यादिका: स्थायिचित्तवृत्तीर्व्यभिचारीभावयत् निसर्गत एव सिद्धस्थायिभावमिति।[1]

लगभग इसी समय भोज ने इतने ही प्रबल शब्दों में घोषणा किया कि आस्वादनीयता मात्र श्रृंगार रस में ही है, अत: वेइसी को मूल रस मानते हैं-

श्रृङ्गारवीरकरूणाद्भुतरौद्रहास्यवीभत्सवत्सलभयानकशान्तनामाम:
आम्नासिषुर्दश रसान्सुधियों वयं तु श्रृङ्गारमेव रसनाद्रसमामनाम:।

× × × ×

अप्रातिकूलितया मनसो मुदादेर्य: संविदोऽनुभवहेतुरिहाभिमान: ।
ज्ञेयो रस: स रसनीयतयात्मशक्ते रत्यादिभूमनि पुनर्वितथारसोक्ति:।
रत्यादयोऽर्धशतमेकविवर्जितानि भावा: पृथग्विधविभावभुवो भवन्ति।
श्रृंगारतत्त्वमभित: परिवारयन्त: सप्तार्चिषं द्युतिचया इव वर्धयन्ते ।।[2]

अर्थात् हमारा अहंकार ही प्रतिकूल परिस्थितियों के अभाव में विभावादि के द्वारा आनन्द रूप में संवेद्य होकर रसत्व को प्राप्त होता है। यह अहंकार आत्मा का विशिष्ट गुण है। यही अभिमान श्रृंगार रस है। रति आदि

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. हिन्दी अभि०भारती, पृ०624

2. पाण्डुलिपि (श्रृंगारप्रकाश, खण्ड I, पृ02-3) डॉ नगेन्द्र की पुस्तक से उद्धृत, पृ0251, पाद टिप्पणी

भाव इसी श्रृंगार से उत्पन्न होते हैं, ये भाव ही हैं और स्वयं रसत्व को प्राप्त नहीं होते हैं। यथा प्रकाशकिरणें अग्नि की शोभा बढ़ाती हैं तथैव ये श्रृंगार की शोभा बढ़ाते हैं। अत: स्थायी सन्चारी आदि का प्रवाद मिथ्या है। श्रृंगार ही चतुर्वर्ग का कारण है वही रस है। अग्निपुराण का श्रृंगार सिद्धान्त भी इसका रूपान्तर मात्र है।

अद्भुत ही एकमात्र रस है यह स्थापना विश्वनाथ के प्रपितामह नारायणपण्डित ने की हैं। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण के रसप्रसंग में अपने पूर्ववर्ती विद्वान् धर्मदत्त के आधार पर यह सूचना दी है-

तदाह धर्मदत्त स्वग्रन्थे-

रसे सारश्चमत्कार: सर्वत्राप्यनुभूयते ।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रस:।।
तस्मादद्भुतमेवाह कृती नारायणो रसम् ।[1]

इस सिद्धान्त का आधार है चमत्कार जो भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का मौलिक शब्द है। अभिनवगुप्त के अनुसार चमत्कार का लक्षण है-

सा चाविघ्ना संवित् चमत्कार: × × × स चातृप्ति व्यतिरेकेणाविच्छिन्नो भोगावेश इत्युच्यते।[2]

इस प्रकार चमत्कार का अर्थ है निर्विघ्न आत्मप्रतीति-आत्मस्वाद या आत्मानन्द। और चूँकि काव्य या रस का यह आनन्द विषयगत अन्य आनन्दों से भिन्न होता है। अत: इसके साथ अलौकिक विशेषण का प्रयोग होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. साहित्यपदर्पण -विमला टीका, 1956 पृ0 49

2. हिन्दी अभिनवभारती, पृ0 471-72

केवल रस के प्रसंग में ही नहीं अलंकार वक्रोक्ति आदि के प्रसंग में भी "लोकोत्तर" आदि विशेषणों का प्रयोग काव्य-सौन्दर्य एवं तज्जन्य आह्लाद के लिए शुरू से ही होता आया है। पाश्चात्त्य सौन्दर्य दर्शन में भी सौन्दर्यानुभूति में विस्मय तत्त्व की स्थिति अनिवार्य कही गई है उसमें अनुराग और विस्मय का सामाञ्जस्य रहता है।

भक्ति काव्य का प्रचुर विकास हो जाने पर वैष्णवाचार्यों ने भक्ति रस की प्रतिष्ठा ही नहीं अपितु मूल रस घोषित किया। श्रृंगार आदि उसकी अपेक्षा अत्यन्त क्षुद्र हैं। परिपूर्णरसा भगवद्रति मे और श्रृंगार आदि रसों में वही अन्तर है जो सूर्य व खद्योत में है-

" स च रसो भगवद्भक्तिमय एव "।[1]

परिपूर्णारसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रतिः ।

खद्योतेभ्यः इवादित्यप्रभेव बलवत्तरा।।[2]

वास्तव में काव्यरसों की स्थिति तो भक्ति रस में सञ्चारियों के समान है-

"हासादीनां व्यभिचारिषु पर्यवसानात्"।[3]

---

1. "भक्तिरसामृतसिन्धु"पृ0 74
2. मधुसूदनसरस्वती, भगवद्भक्ति रसायन, 2/78
3. वही पृ0 307

इस तर्क से रूपगोस्वामी ने हासादि को हासरति, विस्मयरति आदि की संज्ञा दी है और उन्हें मूल रति भगवद्रति के गौण भेद माना है। अतः मधुसूदन सरस्वती और रूपगोस्वामी आदि के मत में यही मूल रस है। भक्तिरस के भेदों के भी मधुरा भक्तिरस या उज्ज्वल भक्तिरस ही प्रमुख है।

वास्तव में संख्या का प्रश्न रसशास्त्र का मौलिक प्रश्न नहीं है और इसलिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण भी नहीं है क्योंकि इस सिद्धान्त का आधार केवल परिगणित रस ही नहीं हैं, यहाँ तो आस्वाद का मूल है भाव और इसलिए रस या रसध्वनि में परिगणित रसों के अतिरिक्त भाव, रसाभास भावाभास,भावोदय आदि सभी का यथावत् अन्तर्भाव माना गया है-

रसाभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ ।
सन्धिः शबलता चेति सर्वेऽपि रसनाद्रसः ।।[1]

अतः रस सिद्धान्त का वास्तविक आधार भाव ही है जिसकी भेदगणना न सम्भव है और न आवश्यक। गम्भीरचेता आचार्यों ने भी संख्या को विशेष महत्त्व नहीं दिया है। इसलिए तो एक ओर सभी रसों का एक ही रस में समाहार करने का प्रयत्न किया गया और दूसरी ओर भावों की अनन्तता के आधार पर रसों की अनन्तता सिद्ध की जाती रही। डॉ० नगेन्द्र कहते हैं कि हमारी इस स्थापना का कि -रस संख्या का प्रश्न मौलिक नहीं है- एक प्रबल प्रमाण यह है कि एक ही आचार्य भोज ने दोनों दिशाओं में

---

1. साहित्यदर्पण, 3/259-60

युगपत् प्रयास किया- रस की संख्या एक भी है और अनन्त भी।[1]

जिस "रस" शब्द से श्रृंगार आदि नव रसों का ग्रहण होता है उससे "रस्यते इति रस:" इस व्युत्पत्ति के द्वारा भाव[2] का भी ग्रहण होता है-

"रस्यते इति रस:" इति व्युत्पत्ति योगाद् भाव तदाभासादयोऽपि गृह्यन्ते।"[3]

अभिप्राय: यह है कि रसावस्था को प्राप्त न होने वाला रति आदि स्थायी भाव ही जहाँ सहृदयों के आस्वादन का विषय होता है वहाँ रति आदि को भाव माना जाता है। ऐसा दो अवस्थाओं में हो सकता है। एक तो कान्ताविषयक रति आदि से भिन्न देवविषयक, मुनि विषयक आदि रति भाव की वर्णना भावध्वनि के अन्तर्गत आती है, दूसरे कान्ताविषयक रति जो विभावादि द्वारा सम्यक् परिपुष्ट नहीं होती, केवल उद्बुद्ध होकर रह जाती है, वहाँ भावशब्दवाच्य हो जाती है। जहाँ कान्तविषयक रति विभावादि से सम्यक् पुष्ट होकर रसावस्था को प्राप्त होती है वहाँ श्रृंगार रस होता है। अतएव रसावस्था को प्राप्त न होने वाले हास आदि भी भाव ही माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ व्यभिचारी भाव ही प्रधानतया व्यञ्जित होते हैं, विभावादि वहाँ उनकी पुष्टि करते हैं तो उन व्यभिचारी भावों को भाव कहा जाता है और उस काव्य को भावध्वनि। संक्षेप में भाव दो प्रकार के होते हैं (1) रसावस्था को प्राप्त न होने वाला स्थायी भाव अर्थात् (क) देवादिविषयक रति आदि (ख) उद्बुद्धमात्र कान्ताविषयक रति जो विभावादि से पुष्ट न हुई हो। (2) विभावादि से परिपुष्ट व्यभिचारी भाव।

---

1. रस सिद्धान्त, पृ0255
2. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित भाव: प्रोक्त:। काव्यप्रकाश, 4/35
3. साहित्यदर्पण, 1/3

विश्वनाथ के अनुसार भाव[1] आदि का भी आस्वादन किया जाता है, अत: अनौपचारिक रूप में रस ही हैं-

रसानाद्रसा: रसधर्मयोगित्वाद् भावादिष्वपि रसत्वं उपचारादित्यभिप्राय:।

इसी प्रकार भावभास, रसाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावशान्ति, भावशबलता भी रस के ही समान चारुत्वातिशय के हेतु होते हैं। अनुचित रूप में प्रवृत्त होने वाले रस तथा भाव ही रसाभास एवं भावाभास कहलाते हैं।[2] भरतमुनि प्रभृति नाट्यकोविदों ने रस तथा भाव आदि के अभिव्यन्जना के हेतु कुछ नियम निर्धारित किये है। वे नियम शास्त्र मर्यादा या लोकमर्यादा को ध्यान में रखकर बनाये गये हैं, इसीसे मुनिपत्नी विषयक आदि रति आदि का वर्णन प्रतिषिद्ध माना जाता है। इसी प्रकार अन्य रसों में भी कुछ वर्णन वर्जित माने जाते हैं। यहाँ पर शास्त्र तथा लोक मर्यादा का उल्लंघन करने वाले प्रतिषिद्ध विषयक वर्णन ही अनुचित रूप में प्रवृत्त होने वाले कहे गये हैं। इस अनौचित्य का निश्चय सहृदयों द्वारा ही किया जाता है। जैसे श्रृंगार आदि में उपनायकादिविषयक रति आदि का वर्णन रसाभास ही कहा जाता है। इसी प्रकार गुरु आदि को आलम्बन मानकर हास या क्रोध का वर्णन हास्याभास या रौद्राभास होता है। ब्राह्मणवध आदि के प्रति उत्साह अथवा नीचपात्रस्थ उत्साह वीर रस में उत्तम पात्रगतभय भयानक में तथा नीच पात्र में शम का वर्णन शान्त में रसाभास होता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सन्चारिण: प्रधानानि देवादिविषया रति: ।
उद्बुद्धमात्र: स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ।। "साहित्यदर्पण, 3/26।

2. "तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिता:। तदाभासा रसाभासा भावाभासाश्च।।

वास्तव में भारतीयों के आदर्शवादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप ही रसाभास आदि की विवेचना की गई है। यहाँ "काव्य काव्य के लिए" (Poetry for the sake of poetry) को सिद्धान्त नहीं माना गया है अपितु "काव्य जीवन के लिए है" (Poetry for the sake of life) अथवा "काव्य जीवन के उत्कर्ष के लिए है", यह पुरुषार्थचतुष्टय का साधन है- यह सिद्धान्त माना गया है। इसी हेतु लोक तथा शास्त्र का अतिक्रमण करके प्रवृत्त होने वाले रसादि को अनौचित्यप्रवर्तित कहा जाता है तथा उन्हें रसाभास आदि नाम दिया गया है।

कतिपय साहित्याचार्यों के अनुसार पशु-पक्षिगत रत्यादि का वर्णन आभासस्वरूप ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि काव्यप्रकाश के अनुसार पशुपक्षिगत रत्यादि के वर्णन में भी रस चर्वणा होती है क्योंकि काव्यप्रकाश वृत्ति में "मित्रे क्वापि गते (344) इत्यादि में विप्रलम्भ श्रृंगार में भी तिर्यग्विषयक रति का दृष्टान्त दिया गया है। एक अवधेय तथ्य यह है कि रसास्वादन के पश्चात् ही अनौचित्य का बोध होता है तथा तभी यह प्रतीति होती है कि यह रसाभास है। अतएव यहाँ पर इस प्रकार रसभङ्ग नहीं हो जाता जिसप्रकार वाच्य वाचक के अनौचित्य से हो जाता है। इसी से रसदोषों में इसकी गणना नहीं होती है।

## जातकमाला में प्रयुक्त रस

यह तो हम लोग जानते ही हैं कि वीतराग बुद्ध धीरप्रशान्त नायक हैं। यद्यपि बुद्ध और जीमूतवाहन (नगानन्द का नायक) दोनों में समान रूप से करुणभाव है तथापि जीमूतवाहन में सकाम करुण भाव है और बुद्ध में निष्काम करुण भाव होने से दोनों में भेद है। विनय आदि नायक के सामान्य गुणों

से युक्त[1] नेता धीर प्रशान्त कहा गया है-

"सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः।"[2]

द्विज इत्यादि यह कथन प्रकरण के नायक होने वाले ब्रह्मण, वणिक् और मन्त्री आदि का उपलक्षण है और यह कहना अभीष्ट भी है। इन निश्चिन्तता आदि गुणों के होने पर[3] भी (प्रकरण के नायक) विप्र इत्यादि में शान्तता ही होती है लालित्य नहीं। जैसे "मालतीमाधव" और मृच्छकटिक"आदि में माधव और चारूदत्त आदि धीर प्रशान्त नायक हैं। अवधेय है कि विप्र इत्यादि धीर-प्रशान्त होते हैं- यहाँ इसका यह तात्पर्य नहीं है कि विप्र आदि ही धीरप्रशान्त होते हैं अपितु अन्य क्षत्रिय आदि भी धीरप्रशान्त हो सकते हैं जैसे कि हमारे प्रस्तुत नायक बुद्ध धीर प्रशान्त नायक हैं।

चूँकि, जातकमाला एक अन्वर्थ संज्ञा है अर्थात् इसमें बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियों का काव्यात्मक संग्रह है इसमें वीर, शान्त एवं करूण रस को ही प्राधान्येन अभिव्यन्जना हुई है। श्रृंगार हास्यादि अन्य रसों का अनपेक्षित परि-पोष नहीं हुआ है या ये नहीं के बराबर ही अभिव्यक्त हुए है। वैसे तो न्यूना-धिक रूप में प्रायः सभी रसों की अभिव्यन्जना हुई है।

## वीर रस

जातकमाला में वीर रस ही सर्वाधिक अभिव्यक्त हुआ है। पूर्व जन्म में बुद्ध ने किस प्रकार प्राणियों के प्रति दया की थी, परोपकार में कैसे अपने प्राणों का भी दान किया था- इस दान-दया आदि के प्रति बुद्ध के सतत् उत्साह के स्थायी भाव रूप में परिपुष्ट होकर रसित होने से प्रस्तुत रस को ही सर्वाधिक अभिव्यक्त होने का स्ववसर मिला है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। कार्य करने में आनन्दपूर्ण स्थिर उद्योग का नाम उत्साह है-"कार्यारम्भेषु संरम्भ: स्थेयानुत्साह उच्यते।[1] धनञ्जय कहते हैं-

वीर: प्रतापविनयाध्यवसायसत्त्व -
मोहाविषादनयविस्मयविक्रमाद्यै: ।
उत्साहभू: स च दयारणदानयोगात्
त्रेधा किलात्र मतिगर्वधृतिप्रहर्षा: ।।[2]

अर्थात् प्रताप, विनय, अध्यवसाय, सत्त्व, मोह, अविषाद, नय, विस्मय, पराक्रम, इत्यादि विभावों के द्वारा उत्साह (नामक स्थायी भाव) से वीर रस होता है। वह दया, युद्ध और दान अनुभावों के योग से तीन प्रकार का होता है और उसमें मति, गर्व, धृति प्रहर्ष व्यभिचारी भाव हुआ करते हैं।

यहाँ प्रताप आदि को सामान्य रूप से विभाव कहा गया है। नाट्यशास्त्र तथा नाट्यदर्पण में भी इसी प्रकार कुछ गुणों को विभाव कहा गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि इन ग्रन्थों के समय रसों के आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों के पृथक्श: निरूपण की परम्परा नहीं थी। साहित्यदर्पण के अनुसार विजेतव्य आदि व्यक्ति ही वीर रस का आलम्बन विभाव होता है - "आलम्बनविभावस्तु विजेतव्यादयो मता:।[3] इस प्रकार ये प्रताप आदि वीर रस के उद्दीपन विभाव हैं।

---

1. साहित्य दर्पण, 3/178
2. दशरूपक, 4/72
3. (सा०द०, 3/232-234)

साहित्यदर्पण में वीर के चार भेद माने गये हैं[1] दानवीर, दयावीर युद्धवीर तथा धर्मवीर। हेमचन्द्र ने (काव्यानुशासन में) तीन ही भेद माने हैं तथा भावप्रकाशन में भी तीन ही भेद हैं।[2] नाट्यदर्पण में युद्ध, दान आदि उपाधियों के द्वारा वीर के अनेक भेद माने गये हैं।[3] इसमें धनिक की टीका के साथ बहुत समानता है।

अधिकांश जातककथाओं का अङ्गी रस वीर ही है। कुछ दृष्टान्त देखिए-

येनाभ्युपेतोऽसि मनोरथेन तमेष ते ब्राह्मण पूरयामि ।
आकाङ्क्षमाणाय मदेकमक्षि ददामि चक्षुर्द्वयमप्यहं ते ॥[4]

देवराज इन्द्र द्वारा प्रेषित एक ब्राह्मण राजा शिबि(बोधिसत्त्व) से एक आँख की याचना करता है। इस पर शिबि ने कहा कि ब्राह्मण आप जिस मनोरथ से मेरे पास आये हैं उसे मैं अभी पूरा किये देता हूँ। आप मुझसे केवल एक ही आँख माँग रहे हैं और मैं आपको अपनी दोनों आँखें देता हूँ। यहाँ याचक ब्राह्मण आलम्बन, उसकी नेत्र याचना उद्दीपन विभाव, शिबि का नेत्रदानार्थ उद्यत होना अनुभाव तथा हर्ष व्यभिचारी भाव है। उत्साह स्थायिभाव है।

---

1. (सा०द० 3/234)
2. भावप्रकाशन, पृ०65
3. (नाटकदर्पण, 3/172 वृत्ति)
4. शिबि जातक, 13

इसी तरह दानवीर का दूसरा उदाहरण देखिए-

यच्चाय दाता नरकं प्रयाति प्रतिग्रहोता तु सुरेन्द्रलोकम् ।
विवर्धितस्तेन च मे त्वयाऽयं दानोद्यमः संयमयिष्यतापि ।।
अनन्यथा चास्तु वचस्तवेदं स्वर्गं च मे याचनका व्रजन्तु ।
दानं हि मे लोकहितार्थमिष्टं नेदं स्वसौख्योदयसाधनाय ।।[1]

पाप मान श्रेष्ठि (बोधिसत्त्व) को दान से विरत करना चाहता है और इसके लिए नाना तर्क वितर्क प्रस्तुत करता है उसी के प्रत्युत्तर में श्रेष्ठी कहता है कि आपने जो यह बात कही कि दान देने वाला नरक जाता है और लेने वाला स्वर्ग जायेगा अगर यह सच है तो आपने मुझे रोकने के बजाय और अधिक प्रेरित किया है। मैं यही चाहता भी हूँ कि मेरे याचक स्वर्ग जाय क्योंकि मेरा दान लोक कल्याण के लिए है आत्मसुख के लिए नहीं।

अपरञ्च

अमूनि मांसानि सशोणितानि धृतानि लोकस्यहितार्थमेव ।
यधातिथेयत्वमुपेयुरद्य महोदयः सोऽभ्युदयो मम स्यात् ।।[2]

मैत्रीबल राजा के पास पाँच यक्ष जाते है और खाने के लिए ताजा मांस व गर्म रुधिर माँगते हैं। एतदर्थ राजा किसी दूसरे का मांस न देकर अपने आपको समर्पित करते हुए कहता है कि "मैंने मांस और लहू दूसरे के हित के लिए ही धारण किया है। यदि इसका उपयोग आज अतिथिसत्कार के लिए हो तो इससे बड़ा सौभाग्य मेरे लिए क्या होगा?"

---

1. चौथा श्रेष्ठि जा0, 15-16
2. मैत्रीबल जा025

दयावीर का उदाहरण देखिए-

कच्चिन्महाराज न पीडितोऽसि प्रपातपातात्त्वमिदं प्रपन्नः ।
कच्चिन्न ते विक्षतमत्र मात्रं कच्चिद्रुजस्ते तनुतां गच्छन्ति ।।
नामानुकम्पास्मि मनुष्यवर्य मृगोऽप्यहं त्वद्विषयान्तवासी ।
वृद्धस्त्वदीयेन तृणोदकेन विस्रम्भमित्यर्हसि नस्त्युपेतुम् ।।[1]

शरभ के रूप में अवतरित बोधिसत्त्व का पीछा करते- करते राजा घोड़े के अचानक बिदक जाने से गड्ढे में गिर जाता है। अपना पीछा करते हुए उस शिकारी राजा की हालत देखकर बोधिसत्त्व को बड़ी दया आयी और विपत्ति से छुटकारा दिलाने के लिए उसके पास जाकर कहते हैं-हे राजन् ! पाताल के समान इस गहरे गड्ढे में गिरकर आप बहुत दुःखी तो नहीं हैं ? आपकी देह बहुत घायल तो नहीं है ? पीड़ा तो कम हो रही है ? महाराज ! आपके राज्य में पलकर मैं पशुयोनि में होकर भी मनुष्य से भिन्न नहीं हूँ।आपके तृण जल पर ही पला हूँ। अतः आप मुझ पर विश्वास कीजिए।

इसी प्रकार और देखिए-

अथ ते वानरा भयातुरत्वादपयानमार्गमासाद्य
चपलतरगतयस्तदाक्रमणनिर्विशङ्कास्तया स्वस्त्यवचक्रमुः ।
भयातुरैस्तस्य तु वानरैस्तैराक्रम्यमाणं चरणैः प्रसक्तम् ।
गात्रं ययौ स्वैः विशितैर्वियोगं न त्वेव धैर्यातिशयेन चेतः।।[2]

मधुर वट -फल का उपभोग तुच्छ वानरों द्वारा किया जाता देखकर क्रुद्ध राजा ने सैन्यदल को वृक्ष घेरकर सभी को मार डालने को कठोर आदेश दिया। वानरों की चीख सुनकर बोधिसत्त्व को बड़ी दया आई। उन्होंने

---

1. शरभ जातक, 10-11

वृक्ष की चोटो से पर्वत चोटी तक छलाँग लगाई और पुन: एक लता की छोर लेकर वृक्ष के ऊपर आगये। इस प्रकार उस लता के सहारे सभी वानर बोधिसत्त्व को रौंदते हुए भाग निकले। उसी को कवि कहता है कि निकल भागने का रास्ता पाकर भयातुर वानर उनको चिन्ता किये बिना उन्हें रौंदते हुए उस पुल से भाग निकले। भयातुर वानरों ने भागते हुए उन्हें पैरों से रौंदडाला। उनकी देह से मांस अलग हट गया। फिर भी उनके हृदय से धैर्य का पल्ला नहीं छूटा।

अपरञ्च-

> प्रताप संक्षिप्तपराक्रमोऽहमबान्धवो वेति कथा शुचं मा ।
> यद्बन्धुकृत्यं तव किंञ्चिदत्र कर्तास्मि तत्सर्वमलं भयेन ।। [1]

जंगल में एक व्यक्ति फल खाते-खाते वृक्ष से गहरे गड्ढे में गिर गया था। कई दिन तक वह छटपटाता चिल्लाता रहा। एक दिन उधर जाते हुए महाकपि वेशधारी बोधिसत्त्व उसकी आर्त्त आवाज सुनकर दया द्रवित होकर बोले "इस गड्ढे में गिरे हो, इसलिए बन्धुहीन या पराक्रमहीन हो, ऐसा मत सोचो। इस दुर्गति में पड़े तुम्हारे साथ बन्धुओं का जो भी उचित कर्तव्य होगा उसका, निर्वाह मैं स्वयं तुम्हारे लिए करूँगा। डरो मत।

धर्म वीर का दृष्टान्त देखिए-

हंसों के राजा (बोधिसत्त्व) अपने सेनापति सुमुख के साथ राजा द्वारा निर्मित कराये गये कृत्रिम सरोवर में विहरणार्थ गये। इन अद्भुत हंसद्वय को पकड़वाने के लिए ही राजा ने सरोवर बनवाया था। फलत: एकबार राजा जाल में फंस गये , किन्तु सुमुख मुक्त ही बचा रहा। साथ न छोड़ते, हुए अपने

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 24 वाँ महाकपि जातक, 10

मित्र एवं सेनापति सुमुख को उड़ जाने के लिए राजा ने बहुत आग्रह किया किन्तु वह उन्हें अकेला छोड़कर उड़ा नहीं और कहा—

नैकान्तिको मृत्युरिह स्थितस्य
न गच्छतः स्यादजरामरत्वम ।।
सुखेषु च त्वा समुपास्य नित्य—
मापद्गतं मानद केन जह्याम् ।।
स्वप्राणतन्तुमात्रार्थं त्यजतस्त्वां खगाधिप ।
धिग्वादवृष्ट्यावरणं कतमन्मे भविष्यति ।।[1]
नैष धर्मो महाराज त्यजेयं त्वां यदापति ।
या गतिस्तव सा मह्यं रोचते विहगाधिप ।।[2]

अर्थात् यहाँ टिकने पर जैसे मौत निश्चित नहीं है वैसे ही यहाँ से अलग हट जाने पर अमरता भी तो निश्चित नहीं है। सुख में मैंने सदा आपकी सेवा की है तो हे मानद, इस दुःख में आपको कैसे छोड़दूं। हे खगेश, अपनी जान बचाने के लिए यदि मैं आपको इस स्थिति में छोड़ दूं तो फिर लोग जो मेरी निन्दा करेंगे, उससे बचने का क्या उपाय होगा। हे महाराज, इस विपत्ति में आपको अकेले छोड़ दूं यह कोई धर्म नहीं है। हे खगाधिपति यहाँ आपकी जो स्थिति होगी वही सब मुझे अपने लिए पसन्द है।

---

1. हंस जातक — 28
2. हंस जातक — 29

इसी सन्दर्भ में जब बहेलिया आता है और सुमुख को मुक्त होकर भी उड़-भाग न जाते देखकर आश्चर्यचकित होता है और उनके पारस्परिक प्रेम को देखकर वह सुमुखसेयथेच्छ उड़जाने की अपेक्षा करता है। इस पर सुमुख मैत्री-धर्म का पालन करते हुए बहेलिए से कहता है-

नो चेदिच्छसि मे दु:खं तत्कुरुष्व ममार्थनाम् ।
एकेन यदि तुष्टोऽसि तत्त्यजेनं गृहाणमाम् ।।
तुल्यारोहपरीणाहौ समानौ वयसा च नौ ।
विद्धि निष्क्रय इत्यस्य न तेऽहं लाभहानयो ।।
तदङ्गसमवेक्षस्व गृद्धिर्भवतु ते मयि ।
मां बध्नातु भवान् पूर्वं पश्चान्मुन्चेद् द्विजाधिपम्।।[1]

अर्थात् " ठीक है तुम मेरा अनिष्ट नहीं चाहते हो तो फिर मेरी विनती सुनो। यदि तुम्हें एक हंस से सन्तोष है तो इनकी जगह मुझे पकड़ लो और इन्हें छोड़ दो। आकार-प्रकार और उम्र में हम दोनों बराबर हैं अत: मुझे इनकी कीमत जानो इससे तुम्हारे लाभ में किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। अगर मुझसे तुम्हें प्रेम है तो हे भद्र, पहले मुझे बाँध लो फिर इन्हें छोड़ देना।"

इसी प्रकार वीररस (धर्म) का इतर उदाहरण भी देखिए-

भाग्यापराधजनितोऽप्यपमानयोग:
सन्दृश्यते जगति तेन न मेऽत्र चिन्ता ।
दु:ख तु मे यदुचिताभिगतेषु वृत्ति -
र्वाचाऽपि न त्वयि मया क्रियते यथार्हम्।।[2]

---

1. हंस जातक, 47-48-49 2. क्षान्ति जातक, 38

क्षान्तिवादी नामक एक महात्मा के रूप में एक बार बोधिसत्त्व जंगल में तपस्या कर रहे थे। वन विहारार्थ राजा समस्त अन्त:पुर सहित जंगल गया। विश्रान्त राजा के सो जाने से रानियाँ स्त्री-चापल्य के कारण घूमते-टहलते क्षान्तिवादी के आश्रम में पहुँचकर उपदेश सुनने लगीं। जगने के बाद ढूँढ़ता हुए राजा वहाँ पहुँचते हैं और उस अवस्था में रानियों को देखकर क्षान्तिवादी साधु को मिथ्याचारी समझते हुए क्रोधित होकर उनको मारने को तलवार निकाल लेता है। इस प्रकार अपने अपमान की चिन्ता न करके क्षान्तिवादी ने यह सकरूण बात कही-"भाग्यदोष से ही संसार में लोगों को अपमानित होना पड़ता है ऐसा ही बहुधा देखा जाता है। अत: मुझे अपमान की चिन्ता नहीं है। किन्तु मुझे कष्ट केवल इस बात का है कि द्वार पर आये लोगों का जो समुचित सत्कार किया जाता है, मैं तुम्हारा वह सत्कार वचन से भी नहीं कर पा रहा हूँ।

युद्ध विषयक वीर रस भी जातकमाला में एक स्थान पर पाया जाता है। एक बार बोधिसत्त्व देवों के राज शक्र हुए। देवों की चतुरंगिणी सेना और राक्षसों की विशाल सेना के बीच युद्ध का रोमाञ्चकारी वर्णन करते हुए आर्यशूर कहते है-

अथ प्रवृत्ते तत्र क्षीरूणां धृतितारूण: ।
अन्योऽन्यायुधनिष्पेषजर्जरावर्णो रण: ।।
तिष्ठ नैवमित: पश्य क्वेदानीं मन्न मोक्ष्यते ।
प्रहरायं न भवसी त्येवं तेऽन्योऽन्यमार्दयन् ।।
तत: प्रवृत्ते तुमुले स्फुर्जत्प्रहरणे रणे ।
पटहध्वनिनोत्कृष्टै: स्फुटतीव नभस्तलम् ।।
दानगन्धोद्धतामर्षेष्वापत्सु परस्परम् ।
युगान्तवाताकलितशैलभीमेषु दन्तिषु ।।

विद्युल्लोलपताकेषु प्रसृतेषु समन्ततः ।
रथेषु पटनिर्घोषेषूत्पाताम्बुधरेष्विव ।।
पात्यमानध्वजच्छत्रशस्त्रावरणमौलिषु ।
देवदानववीरेषु मिथैरन्याऽन्यसायकैः ।।

अथ प्रतप्तासुरशस्त्रसायकैर्भयात्प्रदुद्राव सुरेन्द्रवाहिनी ।
रथेन विष्टभ्य बलं तु विद्विषां सुरेन्द्र एकः समरे व्यतिष्ठत।।[1]

अर्थात् कायरों का दिलदहला देने वाला युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध में योद्धाओं के कवच एक दूसरे के हथियारों की चोट से चरमरा उठे। खड़ा रह, ऐसा मत कर, इधर देख, अब तू बचकर मुझसे छूट नहीं सकता, मार, ले अब तू मर- इस तरह कोलाहाल करते हुए वे दूसरे को मार रहे थे। इस तुमुल युद्ध में हथियारों की टङ्कार एवं नगाड़ों की प्रतिध्वनि से मानो आकाश फटने लगा।प्रलयकालीन वायु द्वारा उखाड़कर फेंकगये विशाल पर्वतों की तरह भयंकर दन्तुर हाथी मदजल की गन्ध से क्रुद्ध होकर एक दूसरे पर झपट पड़े।उपद्रव-कारी बादलों और बिजली की तरह काँपती पताका वाले रथ घोर गर्जन करते हुए चारों ओर फैल गये। देवों और दानवों के वीर सैनिक एक दूसरे के झण्डे, छत्र, कवच और मस्तक अपने तीरों से काटकर गिराने लगे।राक्षसों के तीव्र तीर एवं तलवारों से डरकर जब देवसेना भाग चली तब अकेले देवेन्द्र ने उनका डटकर मुकाबला किया।

---

1. शक्रजातक, श्लोक 4...10

## शान्त रस

जातकमाला की कथाओं में वीर रस के बाद शान्त रस ही सर्वाधिक अङ्गी रस के रूप में प्रयुक्त हुआ है। धीरप्रशान्त नायक होने से इसके लिए उचित अवसर भी है। जैसा कि बताया जा चुका है कि शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेद है। इसे शम भी कहते हैं। शम या निर्वेद का अभिप्राय है वैराग्यदशा में आत्मरति से होने वाला आनन्द- "शमो निरीहावस्थायामात्मविश्रामजं सुखम्।[1] मिथ्यात्व रूप में भाव्यमान जगत् ही शान्त रस का आलम्बन होता है, पवित्र आश्रम, तीर्थ, महापुरुषसंग आदि इसके उद्दीपन हैं, रोमाञ्चादि अनुभाव हैं तथा स्मृति, मति, जीवदया आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं।

जातकमाला के कतिपय दृष्टान्त देखिए-

अतिथेरभ्युपेतस्य सम्मानं येन तेन वा ।
विधातुं शक्तिरस्त्येषामत्र शोच्योऽहमेव तु ।।
अस्माद्दन्ताग्रविच्छिन्नाः परितिक्तास्तृणाङ्कुराः ।
शक्या नातिथये दातुं सर्वथा धिगशक्तताम् ।।
इत्यसामर्थ्यदीनेन को न्वर्थो जीवितेन मे ।
आनन्दः शोकतां यायाद्यस्यैवमतिथिर्मम ।।[2]

शशयोनिज- बोधिसत्त्व के एक ऊदविलाव, सियार तथा वानर मित्र थे। कल पूर्णिमा है अतः पोषध-व्रत के नियमानुसार समय पर पहुँचे हुए अतिथि का न्यायपूर्वक उत्तम आहार से सत्कार करने के लिए अपने मित्रों को उपदेश दिया ।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. साहि० दर्पण, 3/180

2. शश जातक (जातकमाला), 13-14-15 श्लोक

मित्रों के अपने- अपने घर चले जाने पर बोधिसत्त्व (शश) ने सोचा-"हमारे इन साथियों में तो आये हुए अतिथि का जैसे-तैसे सम्मान करने की कुछ न कुछ क्षमता तो है ही। पर इनमें सबसे शोचनीय स्थिति तो मेरी हो है। मैं तो अपने दाँतों से केवल घास ही तो कुतर सकता हूँ पर, ये तिक्त तृण तो अतिथि को नहीं दिए जा सकते। धिक्कार है मेरी इस कमजोरी को। यदि किसी अतिथि के आ जाने पर प्रसन्नता की जगह अपनी कमजोरी के कारण शोक ही मिले तो फिर ऐसे असमर्थ, दीन-हीन जीवन से भला क्या लाभ है।"

यहाँ पर अपने - आपको तुच्छ समझना रूप निर्वेद है। लाभ-हीन जीवन तथा आतिथ्य के प्रति असमर्थता उद्दीपन विभाव है, अपने-आपको धिक्कृत करना अनुभाव तथा ग्लानि, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं।

इसी प्रकार और भी देखिए-

एक बार बोधिसत्त्व ब्राह्मणवंश में जन्म लेकर अपने छः छोटे भाइयों तथा एक बहन व दासी सहित जंगल में तपस्या करने चले गये। वहाँ उनके त्याग तपस्या आदि की शक्र ने खूब परीक्षा ली तथा खुश होकर उसने बोधिसत्त्व से इस काम-विरोधी घोर तपस्या का करण पूँछा तब बोधिसत्त्व ने कहा-

कामेषु बन्धमुपयाति वधं च लोकः
शोकं क्लमं भयमनेकविधं च दुःखम् ।
कामार्थमेव च महीपतयः पतन्ति
धर्मोपमर्दरभसा नरकं परत्र ॥[1]

---

1. बिस जातक, 26

यत्सौहृदानि सहसा विरसीभवन्ति
यन्नीतिशाठ्यमलिनेन पथा प्रयान्ति ।
कीर्त्या वियोगमसुखैः परतश्च योगं
यत्प्राप्नुवन्ति ननु कारणमत्र कामाः ।।
इति हीनविमध्यमोत्तमानामिह
चामुत्र च यद्वधाय कामाः ।
कुपितान्भुजगानिवाप्तकामा
मुनयस्तानिति शक्र नाश्रयन्ते ।।[1]

अर्थात् काम सुख के लिए, मनुष्य वध या बन्धन पाता है। इसी के लिए लोग "शोक या अनेक विपत्तियाँ झेलते हैं, अनेक दुःख उठाते है। इसी काम-सुख के लिए राजधर्म का उत्पीड़न करते हैं और नरकगामी बनते हैं। इसी कामसुख के लिए किसी की दोस्ती ढीली पड़ जाती है, नीति कुटिल हो जाती है, गन्दी राह चलना पड़ता है, अपयश मिलता है, परलोक में दुःख पाते हैं। इसी कामोपभोग के लिए उत्तम, मध्यम या अधम कोटि के मानव अपना इह लोक और परलोक दोनों गवाँ देते है। ऐसे विषैले क्रुद्ध साँप की तरह लहराते कामसुख से आत्मकामी मुनिगण दूर ही रहते हैं।

अन्यत्र एक बार बोधिसत्त्व ने राजकुल में जन्म ग्रहण किया। कौमुदी महोत्सव की दिव्य छटा को निरखते हुए पूर्व जन्म की याद आ जाने से वैराग्य उत्पन्न हो हो गया और सोचने लगे-

कृपणा बत लोकस्य चलत्वाविरसा स्थितिः ।
यदियं कौमुदीलक्ष्मीः स्मर्तव्यैव भविष्यति ।।

---

1. बिस जातक, 27, 28

एवंविधायां च जगत्प्रवृत्तावहो यथा निर्भयताजनानाम् ।
यन्मृत्युनाधिष्ठितसर्वमार्गा नि:सम्भ्रमा हर्षमनुभ्रमन्ति ।।
जावार्यवीर्यैर्ष्वरिषु स्थितेषु जिघांसया व्याधिजरान्तकेषु ।
अवश्यगम्ये परलोकदुर्गे हर्षावकाशोऽत्र सचेतस: क: ।।[1]

अर्थात् संसार की स्थिति अस्थिरता के कारण ही दयनीय और दु:खदायी है। कौमुदीमहोत्सव की यह शोभा भी तो कुछ क्षण बाद समाप्त होने वाली है। संसार की प्रवृत्ति ऐसी चन्चल है फिर भी लोग इतने निडर हैं। हर ओर मौत का पहरा है, फिर भी वे घबड़ाहट छोड़कर मौज मस्ती लूट रहे हैं। अत्यधिक ताकतवर और अजेय शत्रु, रोग, बुढ़ापा और मौत मुहबाये खड़ी है। संसार छोड़कर परलोकरूपी दुर्ग में जाना ही है तब फिर ज्ञानी लोगों के लिए मौज मनाने का मौका ही कहाँ है ?

इस प्रकार पुत्र के विरागी हो जाने से तपोवन की ओर प्रस्थान करते समय पिता ने बाँहों में भरकर जाने का कारण पूँछा। राजकुमार (बोधिसत्त्व) ने उत्तर दिया कि मैं स्नेहशील पिता आपके कारण या किसी और के अनिष्ट करने की शंका के कारण नहीं जा रहा हूँ अपितु मात्र मृत्यु के भय से तपोवन जा रहा हूँ, और कहा-

यामेव रात्रिं प्रथमामुपैति गर्भे निवासं नरवीर लोक: ।
तत: प्रभृत्यस्खलितप्रयाण: स प्रत्यहं मृत्युसमीपमेति ।।
नीतौ सुयुक्तोऽपि बले स्थितोऽपि
नात्येति कश्चिन्मरणं जरां वा ।
उपद्रुतं सर्वमितीदमाभ्यां
धर्मार्थमस्माद्वनमाश्रयिष्ये ।।[2]

---

1. अयोगृह जातक, 7-8-9

अर्थात् जिस पहली रात में मनुष्य गर्भ में प्रवेश करता है उसी रात से वह प्रतिदिन बिना रूके मौत कीओर बढ़ता चला जाता है। नीतिवान् हो या बलवान्, वृद्धावस्था व मौत से कोई बच नहीं सकता, सारी दुनिया इन दोनों से पीड़ित है। यही कारण है कि धर्माचरण के लिए मैं तपोवन जाऊँगा। प्रस्तुत जातक में उपर्युक्त पद्यों से लेकर प्राय: अन्त तक शान्त रस की अविच्छिन्न धारा कवि ने बहाई है। संसार से निर्वेद शान्त का स्थायी है।

इसी प्रकार अन्यत्र श्रेष्ठ के रूप में एक बार बोधिसत्त्व तपस्यार्थ समुद्यत हुए। उनके समस्त पारिवारिक जनों के रोकने पर भी वह नहीं रूके अपितु कहा कि यदि आपको मुझसे इतना स्नेह है तो सब लोग मेरे साथ तपोवन ही क्यों नहीं चलते हैं। वह अपने आप में सोचते हैं-

ये वा प्रकाशानपि गेहदोषान् गुणान्न पश्यन्ति तपोवने वा ।
निमीलितज्ञानविलोचनास्तान् किमन्यथाऽहं परितर्कयामि ।।

परत्र चैवेह च दु:खहेतून्कामान्विहातुं न समुत्सहन्ते ।
तपोवनं तद्विपरीतमेते त्यजन्ति मा चाद्य धिगस्तु मोहम्।।
यैर्विप्रलब्धा:सुहृदो ममैते न यान्ति शान्तिं निखिलाश्चलोका:।।
तपोवनोपार्जितसत्प्रभावस्तानेव दोषान्प्रसभं निहन्मि ।। [1]

अर्थात् जो घर के प्रत्यक्ष दोषों और तपोवन के गुणों को नहीं देखते हैं उनके ज्ञान नेत्र बन्द हैं। उनके बारे में अधिक और क्या सोचूँ? ये इहलोक और परलोक के दु:ख हेतु रूप काम को छोड़ नहीं सकते और उसके विपरीत

---

1. श्रेष्ठ जातक, 35-36-37 श्लोक

सुख के हेतुभूत तपोवन को तथा मुझे भी छोड़ रहे हैं। अहो ! धिक्कार है इस मूर्खता को। जिन दोषों के वशीभूत मेरे इन मित्रों तथा समस्त संसार को शान्ति नहीं मिल रही है, तपोवन में रहकर मैं वह उत्कृष्ट शक्ति प्राप्त करूँगा, जिससे उन दोषों का विनाश कर सकूँ ॥

और भी एक बार बोधिसत्त्व ने एक सदाचारी कुल में जन्म ग्रहण किया। गृहस्थी को नाना बन्धनों एवं क्लेश का आगार मानकर वे प्रव्रजित हो गये। एक बार वह घूमते हुए गाँव पहुँचे जहाँ उनके मृत पिता के मित्र आदि ने उनको नाना प्रकार से प्रव्रज्या की ओर से विमुख करना चाहा किन्तु बोधिसत्त्व अपने निश्चय में अटल रहते हुए कहा–

गार्हस्थ्यं महदस्वास्थ्यं सधनस्याधनस्य वा ।
एकस्य रक्षणायासादितरस्यार्जनश्रमात् ॥
यत्र नाम सुखं नैव सधनस्याधनस्य वा ।
तत्राभिरतिसम्मोहः पापस्यैव फलोदयः ॥

यदपि चेष्टं गृहस्थेनापि शक्यमयमाराधयितुं धर्म इति काममेवमेतत् । अति दुष्करं तु मे प्रतिभाति धर्मप्रतिपक्षसम्बाधत्वाच्छ्रमबाहुल्याच्च गृहस्य।पश्यतु भवान्–

गृहा नानीहमानस्य न चैवावदतो मृषा ।
न चानिक्षिप्तदण्डस्य परेषामनिकुर्वतः ॥
यदि धर्ममुपैति नास्ति गेहमथ गेहाभिमुखः कुतोऽस्य धर्मः ।
प्रशमैकरसो हि धर्ममार्गो गृहसिद्धिश्च पराक्रमक्रमेण ॥
इतिधर्मविरोधदूषितत्वाद् गृहवासं क इवात्मक भजेत ।
परिभूय सुखाशया हि धर्मं नियमो नास्ति सुखोदयप्रसिद्धौ ॥

---

1• अपुत्र जातक, श्लोक 11 से ••••श्लोक 15 तक

अर्थात् धनवान् हो या निर्धन गृहस्थ जीवन सबके लिए समान रूप से दु:खदायी है। एक को बचाने का कष्ट है तो दूसरे को अर्जित करने का कष्ट है। जिस गार्हस्थ्य में धनी-गरीब दोनों को समान रूप से कष्ट ही है उसमें भी सुख का आभास मिलना जन्मार्जित पाप का ही तो फल है। घर में रहकर भी यह धर्म किया जा सकता है- यह बात तो सच है फिर भी मेरे लिए तो यह अत्यन्त दुष्कर है। अत: गृहस्थ जीवन धर्म को विरोधी वस्तुओं से भरा है और अशान्ति का घर है। आप देखें-

जो कभी झूठ नहीं बोलाता, किसी को दण्ड नहीं देता, दूसरों को कष्ट नहीं पहुँचाता, किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता-ऐसे लोगों के लिए घर नहीं है। गृहस्थ जीवन की सफलता पराक्रम से मिलती है और धर्म का मार्ग शान्ति रस से पूर्ण है। अत: कोई मनुष्य यदि धर्म पाना चाहता है तो उसे घर का सुख छोड़ना होगा। जिसे घर ही प्यारा है उसे धर्म कहाँ से मिलेगा? धर्म विरोधी होने के कारण गृहस्थ जीवन यदि दूषित है तो भला कौन संयत आत्मा इसे स्वीकार करेगा ? सुख की झूठी आशा में यदि धर्म का अतिक्रमण किया जाये तो सुख का मिलना उसके लिए निश्चय ही दुर्लभ हो जाता है।

इस प्रकार इसमें विषय वैराग्य रूपी निर्वेद नामक स्थायी भाव का रुचिर परिपोष हुआ है।

## करुण रस

करुण रस का स्थायी भाव शोक है, जो इष्ट के नाश तथा अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न होता है। धनंजय कहते हैं कि इसके पश्चात् नि:श्वास, उच्छ्वास, रुदन, स्तम्भ तथा प्रलाप आदि अनुभाव होते हैं। निन्द्रा, अपस्मार, दैन्य

इसके व्यभिचारी भाव हैं-

> इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणोऽनु तम् ।
> निश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलापितादय: ।।
> स्वापापस्मारदैन्याधिमरणालस्य सम्भ्रमा: ।
> विषादजडतोन्मादचिन्ताद्या व्यभिचारिण: ।।[1]

विश्वनाथाचार्य कहते हैं कि प्रियवस्तु के नष्ट हो जाने से जो चित्त की व्याकुलता होती है वही शोक कहलाता है-"इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक्"[2] जिसके लिए शोक किया जाता है वही आलम्बन होता है उसकी दाह आदि अवस्था उद्दीपन हैं दैवनिन्दा,क्रन्दन आदि अनुभाव हैं तथा मोह, व्याधि,ग्लानि विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं।

## करुण तथा विप्रलम्भ श्रृंगार में अन्तर

करुण रस तथा विप्रलम्भ श्रृंगार रस में भेद है। क्योंकि दोनों के स्थायीभाव भिन्न-भिन्न हैं(शोक-रति) तथा विप्रलम्भ में पुनर्मिलन की आशा बनी रहती है-

> शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रस: ।
> विप्रलम्भे रति: स्थायी पुन:सम्भोगहेतुक:।।

लगभग यही बात धनञ्जय कहते है कि नायकनायिका में से एक के मर जाने पर जहाँ दूसरा विलाप करता है वहाँ तो करुण रस ही होता है,

---

1. साहित्य दर्पण, 3/206

श्रृंगार नहीं क्योंकि वहाँ श्रृंगार का आलम्बन ही समाप्त हो चुका होता है और यदि पुनर्जीवित हो जाता है तो करुण नहीं होता अपितु श्रृंगार हो जाता है-

मृते त्वेकत्र यत्रान्य: प्रलपेच्छोक एव स: ।
व्याश्रयत्वान्न श्रृङ्गार: प्रत्यापन्ने तु नेतर:।।[1]

अर्थात् यह कहा जा सकता है कि वियोग दो प्रकार का होता है- स्थायी और अस्थायी। दो प्रेमियों का जो अस्थायी वियोग होता है वह विप्रलम्भ के अन्तर्गत आता है दोनों में से एक की मृत्यु हो जाने पर जो स्थायी वियोग होता है वह करुण के अन्तर्गत आता है, उसमें मिलन की आशा ही नहीं रहती। कुछ आचार्य करुण-विप्रलम्भ नामक पृथक् भेद मानते हैं। भोजराज का कथन है-

भावो यदा रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति ।
नाधिगच्छति चाभीष्ट विप्रलम्भस्तदोच्यते ।।
पूर्वरागो मानश्च प्रवास: करुणश्च स: ।
पुरुषस्त्रीप्रकाण्डेषु चतु:काण्ड: प्रकाशते ।।[2]

रसार्णवसुधाकर में इसे करुण का भ्रम उत्पन्न करने वालावियोग श्रृंगार बतलाया गया है-

द्वयोरेकस्य मरणे पुनरुज्जीवनावधौ ।
विरह: करुणोऽन्यस्य सङ्गमाशानिवर्तन: ।
करुणभ्रमकारित्वात् सोऽयं करुण उच्यते ।।[3]

---

1. दशरूपक, 4/67
2. सरस्वती कण्ठाभरण, परि० 5
3. रसार्णवसुधाकर, उल्लास-2

विश्वनाथ करुण विप्रलम्भ का कुछ अधिक विशद विवेचन करते हैं-

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत्करुणविप्रलम्भाख्यः ।।[1]

नायक और नायिका में से किसी एक के परलोक चले जाने पर किन्तु पुनः (इसी जन्म में) मिलन की आशा होने पर जो दूसरा शोक करता है वहाँ रति भाव का मिश्रण होने से करुण -विप्रलम्भ होता है। यदि परलोक गये व्यक्ति के फिर मिलने की आशा नहीं रहती अथवा दूसरे जन्म में मिलने की आशा होती है तो करुण ही होता है। साहित्य दर्पण के अनुसार कादम्बरीकथा में पुण्डरीक और महाश्वेता के वृत्तान्त में करुणविप्रलम्भ है।

इस सन्दर्भ में दशरूपक का मन्तव्य है कि पुण्डरीक तथा महाश्वेता के वृतान्त में आकाशवाणी से पूर्व करुण ही है क्योंकि वहाँ रतिभाव का आलम्बन ही समाप्त हो जाता है अतः रतिभाव का उद्भव हो नहीं हो सकता। हाँ आकाशवाणी होने पर महाश्वेता के हृदय में पुण्डरीक के पुनर्मिलन की आशा हो जाती है, अतः रतिभाव का उद्भव होता है तथा विप्रयोग नामक श्रृंगार है जिसका शापजन्य प्रवास में अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार दशरूपक के अनुसार करुण विप्रलम्भ नाम का कोई रस नहीं होता।

उपदेष्टा कवि आर्यशूर मात्र वीर और शान्त रस में ही निष्णात नहीं हैं अपितु करुण-रस की जो अजस्र धारा विश्वन्तर जातक में प्रवाहित की है वह अपने आप में बेजोड़ है। यह तो साधिकार नहीं कहा जा सकता है कि इस जातक में उन्होंने अपने विगत क्षणों की याद की है किन्तु सीधे-सादे शब्दों में जितना लालित्यपूर्ण एवं आघातक रसव्यञ्जना इस जातक में हुई है उसकी

---

1. साहित्य दर्पण, 3/209

स्पर्धा बाल्मीकि, कालिदास, भवभूति जैसे कवि ही कर सकते हैं। प्रबल प्रमाण यही है कि पाठक या श्रोता के आँसू जातक समाप्ति के बाद ही सूख सकते हैं।

राजा विश्वन्तर ने अपने अतिशय दानप्रियता के कारण वनवास की आज्ञा पाई, अतः पुत्र जाली एवं पुत्री कृष्णा तथा पत्नी मद्री सहित जंगल चले गये। वहाँ एक ब्राह्मण मद्री की अनुपस्थिति में ही उन दोनों बच्चों को अपने पत्नी की परिचर्यार्थ माँगता है। विश्वन्तर न कैसे कर सकते थे किन्तु पत्नी के फल मूल आदि लेकर लौट आने तक ब्राह्मण से ठहरने को प्रार्थना की। माँ अपनी ममता के कारण कहीं बच्चों के दान में व्यवधान न करें अतः ब्राह्मण नहीं रुका और राजा ने संकल्प जल एवं अश्रुजल के साथ कठोर आदेश पूर्वक बच्चों को उसके साथ चले जाने को कहा। तब बच्चों ने कहा-

अम्बा च तात निष्क्रान्ता त्वञ्च नौ दातुमिच्छसि ।
यावत्तामपि पश्यावस्ततो दास्यति नौ भवान् ।। [1]

पिताजी, माँ तो बाहर गई है और उनकी अनुपस्थिति में आप हमें दान करना चाहते हैं। अच्छा हमें उनके दर्शन तो कर लेने दें। फिर आप चाहें तो दान कर दें।

इस पर ब्राह्मण ने सोचा कहीं माँ आ न जाय अतः उनके कोमल हाथों को लता से बाँधकर डराते धमकाते हुए अपनी तरफ खींचने लगा। पिता की ओर देखते हुए बेचारे बच्चे बुरी तरह छटपटाने लगे। इस बेजोड़ विपत्तिमें कुमारी कृष्णाजिना फूट फूटकर रोती हुई पिता से कहने लगी-

---

1. विश्वन्तर जातक, 65

अयं मां ब्राह्मणस्तात ! लतया हन्ति निर्दय: ।
न चायं ब्राह्मणो व्यक्तं धार्मिका ब्राह्मणा: किल।।[1]
यक्षोऽयं ब्राह्मणच्छद्मा नूनं हरति खादितुम् ।
नीयमानौ पिशाचेन तात किं नावुपेक्षसे ।।[2]

पिताजी, यह निष्ठुर ब्राह्मण मुझे लता से पीट रहा है। निश्चय ही यह ब्राह्मण नहीं है क्योंकि ब्राह्मण तो दयालु होते हैं। ब्राह्मण के कपट वेष में निश्चय ही यह कोई यक्ष है और हमें मारकर खाने के लिए हमारा अपहरण कर रहा है। पिताजी, यह पिशाच हमें लिए जा रहा है आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?

निष्ठुर ब्राह्मण द्वारा पीटने का कथन कितना हृदयद्रावक भाव अभिव्यक्त करता है। इसके बाद कुमार जाली माँ के लिए जिन शब्दों द्वारा शोक प्रकट किया है वह वस्तुत: कवि को वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति की श्रेणी में पहुँचा देता है वह कहता है-

नैवेदं मे तथा दुखं यदयं हन्ति मां द्विज: ।
नापश्यमाम्बां यत्त्वद्य तद्विदारयतीव माम् ।।
रोदिष्यति चिरं नूनमम्बा शून्ये तपोवने ।
पुत्रशोकेन कृपणा हतशावेव चातकी ।।
अस्मदर्थे समाहृत्य वनान्मूलफलं बहु ।
भविष्यति कथं न्वम्बा दृष्ट्वा शून्यं तपोवनम्।।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. विश्वन्तर जातक, 65
2. विश्वन्तर जातक, 66
3. विश्वन्तर जातक, 67,68,69

करुण रस के ऐसे स्थल संस्कृत साहित्य में यत्र तत्र ही उपलब्ध होते हैं। उपर्युक्त श्लोकों में से अन्तिम श्लोक कितना मार्मिक है, जब कुमार जाली कहता है बहन कृष्णे अब मर जाना ही ठीक है। यहाँ "नरेन्द्रेण" शब्द अत्यधिक करुणाभिव्यञ्जक है, क्योंकि जीना तो वहीं ठीक है जहाँ जीवन रक्षक होते हैं। जिस देश का राजा ही हमें ऐसी दुरवस्था में पहुँचा रहा है वहाँ भला जीने से क्या लाभ ? बच्चों के लिए तो विश्वन्तर राजा के ही समान तो हैं अन्यथा एक पिता अपने प्रिय बच्चों को भला धनलोभी ब्राह्मण को कैसे दान कर सकता है। विश्वन्तर को राजा शब्द के द्वारा अभिहित करना निरीह अबोध बालकों के परित्याग के अनौचित्य का मार्मिक अभिव्यञ्जक है। एकदम इसी प्रकार कालिदास ने भी परित्यक्ता सीता द्वारा रामके लिए "राजा" शब्द का प्रयोग कराया है-

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा ।
वह्नौ विशुद्धमपि यत् समक्षम् ।।
मां लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य ।।[1]

इसी प्रकार इस जातक के श्लोक नं० 69 का प्रभाव नैषधीयचरित में देखा जा सकता है। आर्यशूर कहते हैं कि बच्चों के लिए जब माँ (मद्री) फल-फूल बटोरकर लौटेगी और इस कुटिया को खाली देखेगी तब भला उसके ऊपर क्या बीतेगा ? लगभग यही भाव श्रीहर्ष अभिव्यक्त किये हैं-

मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर इति त्वयोदिते ।
विलोकयन्त्या रुदितोऽथ पक्षिणः प्रिये स कीदृग्भविता तव क्षणः ।।[2]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. रघुवंश, 14/21

2. नैषधीयचरित, 1/137

नल द्वारा पकड़ लिए जाने वाला हंस अपनी वियुक्त प्रिया के बारे में सोचता है कि अन्य पक्षियों के लौटकर वापस जाने पर जब हंसी पूछेगी कि मेरा प्रियतम सन्देश तथा मृणाल लेकर कितना पीछे रह गया है तब हंस के पकड़े जाने की बात न कहकर उन पक्षियों के आँसू बह निकलेंगे। तब उस हंसी की क्या दशा हो जायेगी ?

बच्चे उपर्युक्त प्रकार से कहकर चले गये। हृदयविदारक उस विलाप को सुनकर भी यद्यपि बोधिसत्त्व का निश्चय अविचल रहा किन्तु उनका हृदय शोकाग्नि में जलने लगा। अश्रुपूर्ण एवं गद्गद कण्ठ से अपने आप से कहना शुरू किया-

पुत्राभिधाने हृदये समक्षं प्रहरन्मम ।
नाशङ्कत कथं नाम धिग्लज्जो बत द्विजः ।
पत्तिकावनुपानत्कौ सौकुमार्यात्क्लमासहौ ।
यास्यतः कथमध्वानि तस्य च प्रेष्यतां गतौ ।।
मार्गश्रमपरिम्लानौ कोऽद्य विश्रामयिष्यति ।
क्षुत्तर्षदुःखाभिहतौ याचिष्येते कमेत्य वा ।।
मम तावदिदं दुःखं धीरतां कर्तुमिच्छतः ।
का त्ववस्था मम तयोः सुतयोः सुखवृद्धयोः ।।[1]

अर्थात् सन्तति रूपी मेरी छाती पर आमने सामने खड़ा होकर प्रहार करने में उस निर्लज्ज ब्राह्मण को कुछभी संकोच क्यों नहीं हुआ? धिक्कार है उन्हें ! ये बच्चे तो अत्यधिक सुकुमार हैं, राह की थकावट सहने में असमर्थ हैं, पैदल चलने की आदत नहीं है, फिर उनका दास बनकर मुरझाये मुँह वाले

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. विश्वन्तर जातक, 73-74-75-76

उन बच्चों को भला विश्राम कौन करायेगा अथवा भूख प्यास से दुःखी होकर अब वे किसके पास जायेंगे ? किससे कुछ मांगेंगे ? मेरे जैसे धीर व्यक्ति को जब उनकेलिए इतना कष्ट है तो भला उन बच्चों पर क्या बीतता होगा ?

उपर्युक्त श्लोक 74-75 के ही समान भाव पूर्ववर्ती कवि अश्वघोष ने व्यक्त किये हैं-

शुचौ शयित्वा शयने हिरण्मये प्रबोध्यमानो निशि तूर्यनिस्वनैः ।
कथं बत स्वप्स्यति सोऽद्यमे व्रती पटैकदेशान्तरिते महीतले ।।[1]

इसी प्रकार विश्वन्तर का यह कथन कि थकेहारे वे बच्चे भूख-प्यास से विह्वल होकर अब किसके पास मॉंगने के लिए जाएगें" नैषधीयचरित के इस कथन पर स्पष्ट प्रभाव रखता है-

सुताः कमाहूय चिराय चुंकृतैर्विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति ।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमील्य सः सुतस्य सेकाद्बुबुधे नृपाश्रुणः ।।[2]

इसी प्रकार विश्वन्तर का यह कथन कि मेरे जैसे धीर व्यक्ति को जब उनके लिए इतना कष्ट है तो भला वे बच्चे तो सुख में पले बढ़े हैं इस अवस्था में उन्हें स्नेह की आवश्यकता थी, तब उनको कितना कष्ट नहीं होता होगा - अभिज्ञानशाकुन्तल के इस भाव से पर्याप्त साम्य रखता है-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथन्नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।।

---

1. बुद्ध चरित, 8/58 2. नैषधीयचरित, 1/142

3. अभिज्ञानशाकुन्तल, 4/6

इसी तरह एक बार बोधिसत्त्व कुड्ड बोधि नामक ब्राह्मण हुए और पत्नी सहित प्रव्रजित हो गये। उनकी रूपवती भार्या का राजा ने अपहरण करना चाहा लेकिन तपोबल के भय से पहले तप के शक्ति की परीक्षा ही लेना उचित समझा। अत: उसके आदेशानुसार राजपुरुष तत्क्षण पत्नी को घसीटकर चलना शुरू कर दिया। सन्यासिनी ने विलाप करना शुरू किया-

लोकस्य नामप्रतिपरोजितस्य परायणं भूमिपति: पितेव ।
स एव यस्य त्वनयावह: स्यादाक्रन्दनं कस्य नु तेन कार्यम् ।।
भ्रष्टाधिकारा बत लोकपाला न सन्ति वा मृत्युवशं गता वा।
न त्रातुमार्तानिति ये सयत्ना धर्मोऽपि मन्ये श्रुतिमात्रमेव ।।
किं वा सुरैर्मे भगवान् यदेवं मद्भागधेयैर्धृतमौन एव ।
परोऽपि तावन्ननु रक्षणीय: पापात्मभि: विप्रतिलुप्यमाण: ।।
नश्येति शापाशनिनाभिमृष्ट: स्याद्यस्य शैल: स्मरणीयमूर्त्ति: ।
इत्थङ्गतायमपि तस्य मौनं तथापि जीवामि च मन्दभाग्या ।।
पापा कृपापात्रतरा न चाहमेवंविधामापदमभ्युपेता ।
आर्त्तेषु कारुण्यमयी प्रवृत्तिस्तपोधनानां किमयं न मार्ग: ।।
शङ्के तवाद्यापि तदेव चित्ते निवर्त्यमामास्मि न यन्निवृत्ता।
तवाप्रियेणापि मयोप्सितं यदा त्वप्रियं हा तदिदं कथं मे ।।[1]

अर्थात् दुखियों की रक्षा के लिए तो राजा पिता के समान संरक्षक होते हैं अगर वही अन्याय करे तो किसके आगे रोया जाय? लोकपाल भी यदि पीड़ितों की रक्षा करने में प्रयत्नशील नहीं हैं तो फिर वे अपने अधिकार से

---

1. कुड्डबोधिजातक, 12-13...........17

च्युत हैं या हैं ही नहीं अथवा मर गये। मेरी समझ में अब धर्म भी केवल सुनने की वस्तु है। अथवा देवताओं को कोसने से क्या लाभ ? जब ईश्वर तुल्य स्वयं मेरे पति मेरी इस दुर्दशा पर इस प्रकार चुपचाप बैठे हैं। अत्याचारी मुझे घसीट रहे हैं, आखिर शत्रु भी तो रक्षणीय होते हैं। जिनके मुँह से केवल इतना निकल जाये कि "नष्ट हो जाओ" तो पहाड़ भी स्मरणशेषमात्र बन जाये। वे स्वयं मेरी दुर्गति पर चुपचाप बैठे हैं इसके बाद मैं इतनी अभागिन हूँ कि जीवित हूँ। अथवा इस विपत्ति में फँसी मैं पापिन हूँ दया का पात्र नहीं हूँ। अन्यथादया से द्रवित होकर पीड़ितों के प्रति दया करना तपस्वियों की नीति नहीं है क्या ? मैं समझती हूँ आपकी बात काटकर मैंने आपके साथ यहाँ तक आने की धृष्टता की है उसे आप अब तक भूले नहीं हैं। आपके अप्रिय से अपना प्रिय साधनं का ही यह दुष्परिणाम है।

एक निर्दोष अबला की कोमल भावना के साथ-साथ करुण रस का यह अतीव हृदय-वेधक स्थल कहा जा सकता है। उपर्युक्त श्लोक बारहवें के समान-ही संरक्षक राजा के ही भक्षक बन जाने के प्रति करुण उपालम्भ श्री हर्ष भी देते हैं-

न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः खगास्तमाचुक्रुशुरारवैः खलु ।।[1]

इसी प्रसंग में आगे हंस कहता है-

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः ।
त्वयाद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरिणी हृणीयते।।[2]

---

1. नैषधीयचरित, 1/28

2. नैषधीयचरित , 1/133

जिस मेरी मुनि के समान जल में उत्पन्न कमलगट्टा तथा कमलनाल की जड़ इस प्रकार जीविका होती है उसके ऊपर भी दण्ड धारण करने वाले तुम्हारे ऐसे पति से आज पृथ्वी क्यों नहीं लज्जित होती है ? इस प्रकार यहाँ जातक-माला का स्पष्टत: प्रभाव सा दृष्टिगोचर होता है।

भयानक रस

भयानक रस का स्थायी भाव "भय" है। किसी वस्तु के कारण चित्त में जो विकलता आती है वही चित्तवृत्ति भय कहलाती है-"रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम्"।[1] धनञ्जय कहते हैं कि भयानक शब्द को सुनने या भयानक सत्त्व को देखने से उत्पन्न होने वाले भय स्थायी भाव से परिपुष्ट होकर भयानक रस होता है। शरीरकम्प,पसीना छूटना मुख सूख जाना, रंग फीका पड़जाना आदि इसके अनुभाव होते है तथा दीनता, सम्मोह,सम्भ्रम त्रासादि इसके व्यभिचारी भाव हैं-

विकृतस्वरसत्त्वादेर्भयभावो भयानक: ।
सर्वाङ्गवेपथुस्वेदशोषवैवर्ण्यलक्षण: ।।
दैन्यसम्भ्रमसम्मोहत्रासादिस्तत्सहोदर: ।।[2]

व्यापारियों की समुद्रयात्रा का वर्णन करते हुए आर्यशूर ने वर्णन किया है कि किस प्रकार दुर्भाग्यवशात् वायुवेग के कारण जहाज एक के बाद एक समुद्र को पार करता चला गया । जैसे-जैसे जहाज बढ़ता गया,व्यापारियों की मानों मौत सन्निकट आती गई।हम किस समुद्र में आ गये उत्तर में बोधिसत्त्व

---

1• सा० द०,3/178

कहते हैं-

अतिदूरमुपेताः स्थ दुःखमस्मान्निवर्तितुम् ।
पर्यन्त इव लोकस्य नलमाल्येष सागरः ॥[1]

"अब लोग इतनी दूर आगये जहाँ से लौटना असम्भव है। यह "नल-माली" सागर संसार की अन्तिम सीमा है।"-

तच्छ्रुत्वा ते वाणिजका विषादोपरुध्यमानमनसो विस्रस्तगात्रोत्साहा निश्वसितमात्रपरायणास्तत्रैव निषेदुः। व्यतीत्य च तमपि समुद्रं सायाह्नसमये विलम्बमानरश्मिमण्डले सलिलनिधिमिव प्रवेष्टुकामे दिवसकरे समुद्धूतमानस्येव सलिलनिधेरशनीनामिव च सम्पततां वेणुवनानामिव वाग्निपरिगतानां विस्फुटतां तुमुलमतिभीषणं श्रुतिहृदयविदारणं समुद्रध्वनिमश्रौषुः। श्रुत्वा च सन्त्रासवशगाः स्फुरन्मनसः सहसैवोत्थाय समन्ततोऽनुविलोकयन्तो ददृशुः प्रपात इव श्वभ्रे इव च महति तमुदकौघं निपतन्तम्। दृष्ट्वा च परमभयविषादविह्वलाः सुपारगमुपेत्योचुः

निर्भिन्दन्निव नः श्रुतीः प्रतिभयश्चेतांसि मथ्नन्निव
क्रुद्धस्येव सरित्पतेर्ध्वनिरयं दूरादपि श्रूयते ।
भीमे श्वभ्र इवार्णवस्य निपत्येतत् समग्रं जलं
तत्कोऽसावुदधिः किमत्र च परं कृत्यं भवान्मन्यते ॥[2]

यह सुनकर व्यापारियों का मन विषाद से भर गया। उनकी सारी स्फूर्ति समाप्त हो गई। वे केवल उसाँसें छोड़ रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने उस

---

1• सुपारग जातक, 21

2• सुपारग जातक, पूर्व गद्य सहित 22 वाँ श्लोक

समुद्र को भी पार कर लिया। दिन ढल गया अपनी ढलती किरणों के साथ सूर्य समुद्र में प्रवेश करना ही चाह रहा था कि सागर का भीषण गर्जन सुनाई पड़ा। लगता था कि कहीं पास ही वज्रपात हो रहा हो या भीषण आग की चपेट में बाँस के जंगल का हृदयविदारक शब्द हो रहा हो। इस आवाज से वे सभी डर गये। उनका दिल दहल उठा। घबड़ाकर उन्होंने चारों तरफ देखना शुरू किया। उन्होंने देखा कि विशाल जलसमूह पिछाड़ पर पिछाड़ खा रहा है। ये जलराशि विशाल जलराशि की तरह किसी खन्दक में गिरती जैसी लग रही थी। यह देखकर व्यापारियों का मन विषाद से भर गया। वे अधीर हो उठे। भय से विह्वल होकर सुपारग(बोधिसत्त्व) के पास जाकर उन्होंने पूँछा-समुद्र का गर्जन हमारे कानों को फाड़ रहा है हमारी छाती को चीर रहा है। यह घोर गर्जन दूर से ही सुनाई पड़ रहा है। लगता है इस क्षुब्ध सागर का जल किसी गर्त में गिर रहा है। कृपया बताइये यह कौन सागर है ?

इसमें समुद्र यात्रा आलम्बन, बड़वामुखी समुद्री जल का पछाड़ खाना, भयावाह आवाज होना उद्दीपन विभाव हैं। व्यापारियों का दिल दहलना, डरना अनुभाव तथा उनका दैन्य, विषादादि व्यभिचारी भाव हैं। इस प्रकार यहाँ कवि ने भयानक समुद्री यात्रा का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार और भी देखिए-

सौदास नामक राक्षस सुतसोम राजा(बोधिसत्त्व) को बलि देने के लिए ले जाता है। उसके दुर्ग की भयानकता का वर्णन करते हुए आर्यशूर कहते हैं-

हतपुरुष कलेवराकुलं रुधिरसमुक्षितरौद्रभूतलम् ।
परमिव लाभमधिगम्य प्रमुदितमना: स्वमावासदुर्गं प्रविवेश।।

गृध्रध्वाङ्क्षाध्यासनरूक्षाल्पपर्णैः कीर्णं वृक्षैर्नैकचिताधूमविवर्णैः ।
रक्षः प्रेतानर्तनबीभत्समशान्तं दूराद् दृष्टं त्रासजडैः सार्थिकनेत्रैः ।।[1]

"सौदास का दुर्ग मारे गये मनुष्यों की लाशों से पटा था। रक्त से लाल-लाल वह धरती डरावनी लग रही थी। गीदड़ों की अशुभ आवाजें सुनने वालों में अलग ही दहशत फैला रही थीं। वहाँ के पेड़ लगातार जलते चिताओं के धुएँ से विवर्ण हो गये थे। गीधों और कौवों के बैठने से उनके पत्ते पीले पड़ गये थे। राक्षसों और भूतों के नाच से बीभत्स और अशान्त बने उस स्थान को दूर से देखकर ही देखने वालों को आँखें डर के मारे पथरा जाती थीं।" भयानक रस के साथ-साथ यहाँ वर्णन की स्वाभाविकता भी विद्यमान है। अपरञ्च,

जंगल में लगी आग की प्रचण्डता का वर्णन निम्नलिखित श्लोकों में कैसे सहज रूप में हुआ है-

स मारुताघूर्णितविप्रकीर्णैर्ज्वालाभुजैर्नृत्तविशेषचित्रैः ।
वल्गन्निव व्याकुलधूमकेशः सस्वान तेषां धृतिमाददानः ।।
चण्डानिलास्फालनचञ्चलानि भयद्रुतानीव वने तृणानि ।
सोऽग्निः ससंरम्भ इवाभिपत्य स्फुरत्स्फुलिङ्गप्रकरो ददाह ।।
भयद्रुतोद्भ्रान्तविहङ्गसार्थं परिभ्रमद्भीतमृगं समन्तात् ।
धूमौघमग्नं पटुवह्निशब्दं वनं तदार्त्येव भृशं रराश ।।[2]

---

1. सुतसोम जातक, 9-10 श्लोक

2. वर्तकापोतक जातक, 4-5-6 श्लोक

जंगली आग हवा से सञ्चालित होकर ज्वाला रूपी भुजाओं को फैला रही थी। धूम रूपी बिखरे बालों को हिलाकर मानो नाचती उछलती आग वन्य जन्तुओं को अधीर बना रही थी। प्रचण्ड वायु के झोंके से काँपते हुए घास फूसों को क्रोध से पकड़कर वह आग अपनी चमकती हुई चिनगारियों से जला रही थी। डर से घबड़ाकर पक्षी उड़ रहे थे। भयभीत जानवर चौकड़ी भर रहे थे, धूमराशि में जंगल डूब रहा था। आग की तेज आवाज से मालूम पड़ता था मानो जंगल कराह रहा था।

## रौद्र रस

क्रोध नामक स्थायी भाव के परिपोष को रौद्र रस कहते हैं। विश्वनाथाचार्य के अनुसार विरोधियों के प्रति जो हृदय में तीक्ष्णता या प्रतिरोध की भावना है वही क्रोध कहलाता है-

"प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोध: क्रोध इष्यते ।"[1]

धनञ्जय कहते हैं कि "मात्सर्य तथा शत्रु द्वारा किये गये अपकारादि विभावों से होने वाला जो क्रोध है उसकी पुष्टि रौद्र रस कहलाता है। उसके पश्चात् (मानस, अनुभाव) क्षोभ उत्पन्न होता है जो ओंठ चबाना, काँपना, भौंहे टेढ़ी करना, पसीना, मुख लाल होना आदि तथा शस्त्र उठाना, डींग मारना, हाथ से अपने कन्धे पर तथा पैर से भूमि पर चोट करना प्रतिज्ञा करना इत्यादि (आंगिक, वाचिक अनुभावों तथा सात्त्विक भावों) से युक्त होता है। इसमें अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, असूया उग्रता तथा वेग आदि अनुभाव हुआ करते हैं-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. साहित्यदर्पण. 3/177

क्रोधो मत्सरवैरिवैकृतमयै: पोषोऽस्य रौद्रोऽनुज:
क्षोभ: स्वाधरदंशकम्पभ्रुकुटिस्वेदास्यरागैर्युत: ।।
शस्त्रोल्लासविकत्थनांसधरणीघातप्रतिज्ञाग्रहै -
रत्रामर्षमदौ स्मृतिश्चपलतासूयौग्र्यवेगादय: ।।[1]

भावप्रकाशन में क्रोध तीन प्रकार का बताया गया है-क्रोध,कोप और रोष।[2] इसका आलम्बन शत्रु होता है, शत्रु की चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं तथा भयंकर मारकाट आदि संग्राम के वातावरण से इसकी विशेष उद्दीप्ति होती है। भुजाएँ ठोंकना,शस्त्रोक्षेपण मद्,रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव है तथा मोह, अमर्षादि व्यभिचारी भाव हैं।

## युद्धवीर तथा रौद्र रस में अन्तर

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है तथा युद्धवीर का उत्साह है। रौद्र में मुख तथा नेत्रों का लाल हो जाना , इत्यादि का वर्णन होता है,युद्ध - वीर में नहीं।[3] युद्धवीर में मोहरहित तत्त्वनिश्चय की प्रधानता रहती है किन्तु रौद्र में तमोगुण की अधिकता के कारण मोह और विस्मय की प्रधानता रहती है।[4] रौद्र में शत्रु का शिर कटने के बाद भी क्रोधवश उसकी भुजा आदि को काटने का वर्णन होता है, युद्धवीर में नहीं होता, यह अनुभावभेद है।[5] युद्धवीर में उत्साह तथा न्याय की प्रधानता रहती है रौद्र में मोह,अहंकार की।[6]

---

1. दशरूपक, 4/74
2. भावप्रकाशन- पृ0 35,अधिकार 2
3. साहित्यदर्पण तथा धनिक
4. अभिनवभारती 6/68 तथा काव्यानुशासन

अवधेय है कि जातकमाला बोधिसत्त्व के पूर्व जन्म की कहानियों का संग्रह है और चूँकि बोधिसत्त्व शत्रुत्व की परिधि से बहुत दूर है। अतः इस कृति में मात्र मात्सर्य विभाव से होने वाला रौद्र रस ही यत्र तत्र परिलक्षित होता है। यथा-

एक राजा अपने समस्त परिजनों के साथ विहारार्थ वन गया था। उसके सो जाने से रानियाँ क्षान्तिवादी महात्मा(बोधिसत्त्व) के आश्रम तक पहुँच गईं। उनको चारों तरफ से घेरकर उपदेश सुनने लगीं। जागने पर जब राजा वहाँ पहुँचा तो यह देखकर साधु को कपटाचारी समझते हुए कहा-

अस्मत्तेजः खलीकृत्य पश्यन्नन्तःपुराणि नः ।
मुनिवेषप्रतिच्छन्नः कोऽयं वैतंसिकायते ।।[1]

अरे.हमारे प्रभाव की उपेक्षा कर हमारी अन्तःपुर की ललनाओं को देखते हुए मुनि के वेष में छिपा हुआ यह कौन बहेलिए का आचरण कर रहा है?

घबड़ाये हिजड़ों द्वारा बताया जाकर भी अपनी गलत धारणा के कारण उनकी बात न मानते हुए राजा ने कहा-

चिरात्प्रभृति लोकोऽयमेवमेतेन वञ्च्यते ।
कुहनाजिह्मभावेन तापसाकुम्भसात्मना ।।[2]

तदयमस्य तापसनेपथ्याच्छादितं मायाशाठ्यसम्भृतं कुहकस्वभावं प्रकाशयामीत्युक्त्वा प्रतिहारीहस्तादसिमादाय हन्तुमुत्पतितनिश्चयः तमृषिवरं सपत्नवदभिजगाम।

---

1. क्षान्ति जातक, 30

2. क्षान्ति जातक, 31

बहुत दिनों से कुटिल भाव से कपटाचार के द्वारा अपने को श्रेष्ठ तापस प्रतिपादित करता हुआ यह इसी तरह लोगों को ठग रहा है। अतः तपस्वी के वेष में छिपा हुआ, माया और शठता से पोषित इसके वञ्चक स्वभाव को प्रकाशित करता हूँ। यह कहकर प्रतिहारी के हाथ से तलवार लेकर मुनि की हत्या का निश्चय कर उन पर दुश्मन की तरह टूट पड़ा।

प्रस्तुत स्थल में राजा का मात्सर्य (दूसरे के गुणों में दोष देखना) विभाव (आलम्बन) सखियों से घिरकर उपदेश देना उद्दीपन विभाव है। हत्या का निश्चय करना अनुभाव तथा असूया, अमर्षादि व्यभिचारी भाव हैं।

## बीभत्स रस

बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है। किसी घृणास्पद वस्तु के दोषदर्शन से उत्पन्न होने वाला घृणाभाव ही जुगुप्सा कहलाता है–"दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा"।[1] धनञ्जय कहते हैं–

> बीभत्सः कृमिपूतिगन्धिवमथुप्रायैर्जुगुप्सैकभू –
> रुद्वेगी रुधिरान्त्रकीकसवसामांसादिभि क्षोभणः ।
> वैराग्याज्जघनस्तनादिषु घृणाशुद्धोऽनुभावैर्वृतो
> नासावक्त्रविकूणनादिभिरिहावेगार्तिशङ्कादयः ॥[2]

बीभत्स रस जुगुप्सा नामक स्थायी भाव से होता है। यह तीन प्रकार का होता है (क) कीड़े, दुर्गन्ध, वमन, आदि विभावों से होने वाला उद्वेगी बीभत्स होता है, (ख) रुधिर, अँतड़ियाँ, हड्डी, मज्जा मांस, आदि विभावों

---

1. साहित्यदर्पण, 3/179

2. दशरूपक, 4/73

से होने वाला क्षोभण बीभत्स तथा रुधिर, स्तन आदि के प्रति वैराग्य से होने वाला घृणाशुद्ध बीभत्स होता है। यह नाक सिकोड़ना, मुँह फेरना आदि अनुभावों से युक्त होता है तथा इसमें आवेग, व्याधि, शंका आदि व्यभिचारी भाव हुआ करते हैं। इससे स्पष्ट है कि मानसिक अवस्था के आधार पर जुगुप्सा के तीन भेद किये गये हैं। उद्वेग, क्षोभण तथा शुद्ध घृणा तीनों मानस अनुभाव हैं। कभी उद्वेग, ~~क्षोभण तथा शुद्ध घृणा तीनों मानस~~ से मिश्रित घृणा होती है कभी क्षोभ से मिश्रित और कभी शुद्ध घृणा होती है।

मद्य के दोष दिखलाते हुए आर्यशूर ने उद्वेग से होने वाले जुगुप्सा भाव का रुचिर पोषण इन शब्दों में किया है-

यत्पीत्वा वमथुसमुद्गतान्नलिप्ता
निःशङ्कैः श्वभिरवलिह्यमानवक्त्राः।
निःसञ्ज्ञा नृपतिपथिष्वपि स्वपन्ति
प्रक्षिप्तं क्रयसुभगं तदत्र कुम्भे ।।[1]

जिसे पीकर आदमी बेहोश होकर सड़क पर ही सो जाता है। वमन करता है, वमन के कारण मुँह में लगे अन्न को निडर होकर कुत्ते चाटते हैं ऐसी ही सुन्दर वस्तु इस घड़े मे रहती है।

यहाँ मद्यप आलम्बन, वमन करना कुत्ते द्वारा चाटा जाना आदि उद्दीपन विभाव है। दर्शक का थूकना, नाकसिकोड़ना आदि अनुभाव तथा आवेग आदि व्याभिचारी भाव हैं। क्षोभण बीभत्स का प्रयोग करते हुए नरक का कैसा सुन्दर दृश्य इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

समुत्कृत्तसर्वत्वचो वेदनार्ता विमांसीकृता: केचिदप्यस्थिशेषा: ।
न चायान्ति नाशं धृता दुष्कृतै: स्वैस्तथापरे खण्डशश्छिद्यमाना:।।[1]
आवेष्ट्यन्ते लोहपट्टैर्ज्वलद्भिर्निष्क्वाथ्यन्ते लोहकुम्भोष्वथान्ये ।
केपि त्तीक्ष्णै: शस्त्रवर्षै: क्षताङ्गा निस्त्वङ्मांसा व्यालसङ्घै:क्रियन्ते।।[2]
पाट्यन्ते क्रकचैर्ज्वलद्भिरपरे केचिन्निशातै: क्षुरै:
केचिन्मुद्गरवेगपिष्टशिरस: कूजन्ति शोकातुरा: ।
पच्यन्ते पृथुशूलभिन्नवपुष: केपिद्विधूमेऽनले
पाय्यन्ते ज्वलिताग्निवर्णमपरे लौहं रसन्तो रसम्।।[3]
अपरे श्वभिर्भृशबलै शबलैरभिपत्य तीक्ष्णदशनैर्दशनै: ।
परिप्लुतमांसतनवस्तनव: प्रपतन्ति दीनविरुता विरुता:।।[4]

कुछ लोगों की चमड़ियाँ उधेड़ दी जाती हैं। हड्डियों से मांस काटकर अलग कर दिया जाता है। पीड़ा से वे तड़पते रहते हैं और बत उन्हें टुकड़े-टुकड़े काटा जाता है। फिर भी वे मरते नहीं, पाप का फल भोगने के लिए उनको जिन्दा रहना पड़ता है।

कुछ को लोहे की जलती चादरों में लपेटा जाता है। कुछ को लोहे के कड़ाहों में उबाला जाता है। कुछ को देह को तेजधार वाले हथियारों से काटकर अलग कर दिया जाता है। कुछ को हिंसक जन्तु मांस और हड्डियों को काट-काटकर कष्ट पहुँचाते हैं।

---

1• ब्रह्मजातक, 26 2• ब्रह्म जातक, 33

3• ब्रह्मजातक, 37 3• ब्रह्म जातक, 38

कुछ को जलते आरे से चीरा जाता है। तेज चाकू से कुछ को काटा जाता है। कुछ के माथे मुद्गर से चूर किये जाते है। कुछ को पिघले ताम्बे का रस पिलाया जाता है और कुछ को निर्धूम आग में जलाया जाता है।

कुछ को चितकबरे बलिष्ठ कुत्ते दांतों से नोच-नोचकर धराशायी बना डालते हैं। मांसहीन शरीर वाले ऐसे लोग विलाप करते रहते हैं।[1]

## श्रृङ्गार रस

श्रृंगार शब्द की व्युत्पत्ति है "श्रृंगस्य आगमनम् हेतुर्यस्यस श्रृंगारो रस:।" श्रृंग शब्द अलंकार शास्त्र में कामोद्रेक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (श्रृंगं हि मन्मथोद्भेद:)। रतिप्रकृतिक रस ही श्रृंगार रस है। मन के अनुकूल पदार्थों में सुखानुभूति ही रति कहलाती है (रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनस: प्रवणायितम्)। श्रृंगार रस के आलम्बन विभाव नायक तथा नायिका होते हैं, उद्यान, चन्द्रिकादि उद्दीपन विभाव होते हैं, भ्रूविक्षेप कटाक्षादि अनुभाव होते हैं तथा लज्जा हासादि व्यभिचारी भाव होते हैं। श्रृंगार रस की परिभाषा करते हुए धनञ्जय कहते हैं-

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनै: ।।
प्रमोदात्मा रति: सैव यूनोरन्योऽन्यरक्तयो: ।
प्रहृष्यमाणा श्रृंगारो मधुराङ्गविचेष्टितै: ।।[2]

---

1. द्रष्टव्य- नाट्यशास्त्र 6/45 से आगे गद्य, भावप्रकाशन, 4अधि0 नाट्यदर्पण, 3/166, प्रतापरुद्रयशोभूषण, पृ0 163, साहित्य दर्पण-3/176, 183-86, रसगंगाधर-पृ0 136

2. दशरूपक, 4/47-48

रमणोय देश, काल, कला, वेष तथा भोग आदि के सेवन द्वारा परस्पर अनुरक्त युवक-युवति का जो प्रमोद होता है वह रति भाव कहलाता है, वही मधुर अंग-चेष्टाओं से पुष्ट होकर श्रृंगार रस कहलाता है।

श्रृंगार रस के परिपोषण के लिए वे कहते हैं कि जो आठ सात्त्विक भाव तथा आठ स्थायी भाव और तैंतीस व्यभिचारी भाव हैं वे सभी मिलकर 49 होते हैं। उनकी युक्तिपूर्वक योजना श्रृंगार रस का परिपोष करती है। आलस्य उग्रता, मरण और जुगुप्सा इन भावों का श्रृंगार के साथ आलम्बनैक्य विरोध माना गया है[1] -

> ये सत्त्वजा: स्थायिन एव चाष्टौ
> त्रिंशत्त्रयो ये व्यभिचारिणश्च ।
> एकोनपञ्चाशदमी हि भावा
> युक्त्या निबद्धा: परिपोषयन्ति ।(स्थायिनम्)
> आलस्यमौग्र्यं मरणं जुगुप्सा
> तस्याश्रयाद्वैतविरुद्धमिष्टम् ।।[2]

उपर्युक्त उनचास भाव युक्ति के साथ अर्थात् अङ्ग रूप में आकर श्रृंगार रस को भावित करते हैं। आलस्य, उग्रता, जुगुप्सा और मरण इत्यादि भावों को यदि एक रतिभाव के आलम्बन विभाव का ही आश्रय लेकर साक्षात् रूप से या

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. आठ-स्थायी -"रत्युत्साहजुगुप्सा: क्रोधो हास: स्मयो भयं शोक:"। आठसात्त्विकभाव-"स्तम्भप्रलयरोमाञ्चा: स्वेदो वैवर्ण्यवेपथु" ।।
"अश्रुवैस्वर्यमित्यष्टौ(द०रू०4/5-6)

2. दशरूपक, 4/49

अङ्ग रूप से योजना की जाती है तो विरोध हो जाता है। अन्य प्रकार से इनकी योजना करने में तो कोई विरोध नहीं होता है। नाट्यशास्त्र में आलस्यौ-ग्र्यजुगुप्सावर्ज्या:, यह कहा गया है। वहाँ मरण को विप्रलम्भ के व्यभिचारीभावों में गिनाया गया है। किन्तु व्याख्याकारों का विचार है कि वस्तुत: मरण का श्रृंगार रस में वर्णन नहीं किया जाता। हाँ मरणासन्नता का वर्णन किया जा सकता है। सम्भवत: इसी हेतु दशरूपक में मरण नामक व्यभिचारी भाव को श्रृंगार का विरोधी बतलाया गया है। विश्वनाथ इसकी स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहते हैं-

> रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते ।
> जातप्रायं तु तद्वाच्यं चेतसा काङ्क्षितं तथा ।
> वर्ण्यतेऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्याददूरत: ॥[1]

श्रृंगार के भेद

श्रृंगार के भेद प्रभेदों के विषय में कतिपय मत इस प्रकार हैं-

भरतमुनि सम्भोग तथा विप्रलम्भ नामक दो भेद मानते हैं।[2]

ध्वन्यालोक में सम्भोग तथा विप्रलम्भ नामक दो भेद बताये गये हैं तथा विप्रलम्भ के भेद के अन्तर्गत अभिलाष, ईर्ष्या, विरह तथा प्रवास नामक चार भेद बताया गया है।[3]

मम्मट सम्भोग तथा विप्रलम्भ श्रृंगार के भेद करके विप्रलम्भ के प्रभेद अभिलाष, विरह, ईर्ष्या, प्रवास, शाप से होने वाला विप्रलम्भ-इन रूपों में करते हैं।[4]

---

1. साहित्यदर्पण 3/193-194
2. द्रष्टव्य नाट्यशास्त्र तथा अभिनव भारती-अध्याय 6 पृ0 303

विश्वनाथ विप्रलम्भ के पूर्वराग, मान, प्रवास (कार्य, शाप, संभ्रम) तथा करुण विप्रलम्भ रूपात्मक प्रभेद करते है।[1]

धनञ्जय अयोग, विप्रयोग (विप्रलम्भ) तथा सम्भोग नामक भेद करते हैं तथा विप्रयोग श्रृंगार के मान (प्रणय तथा ईर्ष्यामान) प्रवास (कार्य, सम्भ्रम तथा शाप से होने वाला) नामक दो प्रभेद करते हैं–

"अयोगो विप्रयोगश्च सम्भगश्चेति स त्रिधा।"[2]

अयोग श्रृंगार को परिभाषित करते हुए कहते हैं–

"तत्रायोगोनुरागेऽपि नवयोरेकचित्तयो: ।
पारतन्त्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसङ्गम: ।।[3]

नवयौवन से युक्त एक चित्त वाले अर्थात् समान रूप से अनुरक्त नायक नायिका का अनुराग ही अयोग श्रृंगार है किन्तु माता-पिता आदि के अधीन होने के कारण या दैववश एक-दूसरे से दूर रहते हैं अर्थात् मिल नहीं पाते। यथा- पराधीन होने के कारण सागरिका-वत्सराज तथा मालती-माधव का मिलन नहीं हो पाता और दैववश होने वाला अयोग श्रृंगार जैसे पार्वती-शिव के बहुत दिन तक मिलन न होने पर कहा जायेगा। अयोग श्रृंगार की उन्होंने दश अवस्थाएँ बतायी हैं- अभिलाषा, चिन्तन, स्मृति, मरणावस्था तथा इनमें प्रत्येक बाद वाली अवस्था पहली से अधिक दु:खदायिनी होती है–

दशावस्थ: स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम् ।।
स्मृतिर्गुणकथनोद्वेगप्रलापोन्मादसज्वरा: ।
जडता मरणं चेति दु:खस्थं यथोत्तरम् ।।[4]

---

1. साहित्यदर्पण -3/186 2. दशरूपक, 4/50

जिनका गाढ़ अनुराग होता है ऐसे नायक तथा नायिका का पृथक् हो जाना ही विप्रयोग कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है-मान विप्रयोग तथा प्रवास विप्रयोग। मान भी दो प्रकार का होता है। प्रणय में और ईर्ष्या में-

विप्रयोगस्तु विश्लेषो रूढविस्रम्भयोर्द्विधा ।
मानप्रवासभेदेन मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः ॥[1]

पति को अन्य नायिका में आसक्त सुनकर, अनुमान करके तथा देखकर जो स्त्रियों को कोप होता है वह ईर्ष्यामान है। नायक नायिका में किसी एक या दोनों के कोपयुक्त होने पर प्रणयमान होता है।

किसी कार्य से, सम्भ्रम से या शाप से दोनों (नायक-नायिका) का अलग-अलग प्रदेश में रहना ही प्रवास विप्रयोग कहलाता है। उसमें अश्रुपात, निःश्वास दुर्बलता, बालों का बढ़ जाना इत्यादि अनुभाव हुआ करते हैं-

कार्यतः सम्भ्रमाच्छापात्प्रवासो भिन्नदेशता ।
द्वयोस्तत्राश्रुनिश्वासकार्श्यलम्बालकादिता ॥[2]

सम्भोग श्रृंगार वह आनन्दपूर्णावस्था है जब दो विलासी जन अनुकूल होकर परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि का उपभोग करते हैं[3]-

अनुकूलौ निषेवेते यत्रान्योन्यं विलासिनौ ।
दर्शनस्पर्शनादीनि स सम्भोगो मुदान्वितः ॥[3]

---

1. दशरूपक 4/57-58
2. दशरूपक 4/64-65
3. दशरूपक -4/69

इस सम्भोग श्रृंगार में युवतियों को प्रिय के प्रति लीला आदि[1] दश चेष्टाएं हुआ करती हैं जो दाक्षिण्य मृदुता तथा प्रेम के अनुरूप होती हैं-

चेष्टास्तत्र प्रवर्तन्ते लीलाद्या दश योषिताम् ।
दाक्षिण्यमार्दवप्रेम्णामनुरूपाः प्रियं प्रति ।।[2]

चूँकि जातक कहानियाँ बोधिसत्त्व के आस-पास घूमती हैं और उनके विषय में रति भाव को पोष तो भाव ध्वनि कही जायेगी।[3] अतः जातकमाला में श्रृंगार रस के प्रयोग विषयक समीक्षण का औचित्य ही नहीं है। जहाँ किसी राजा के विषय में रति का वर्णन मिलता है वहीं अपवाद स्वरूप कुछ दृष्टान्त पाये जाते हैं। यथा क्षान्ति जातक में एक राजा विषयक रति का वर्णन है अतः श्रृंगार रस का परिपाक हुआ कहा जायेगा। सम्पूर्ण अन्तःपुर के साथ राजा वन-विहार के लिए सुन्दर वन में गया। उसीका वर्णन करते हुए आर्यशूर कहते हैं-

विमानदेशेषु लतागृहेषु पुष्पप्रहासेषु महीरुहेषु ।
तोयेषु चोन्मीलितपङ्कजेषु रेमे स्वभावातिशयैर्वधूनाम् ।।
माल्यासवस्नानविलेपनानां सम्मोदगन्धाकुलितैर्द्विरेफैः ।
ददर्श कासाञ्चिदुपोह्यमानां जातास्मितत्रासविलासशोभाः ।।
प्रत्यग्रशोभैरपि कर्णपूरैः पर्याप्तमाल्यैरपि मूर्धजैश्च ।
तृप्तिर्यथासीत्कुसुमैर्न तासां तथैव नासां ललितैर्नृपस्य ।।
विमानदेशेषु विषज्यमाना विलम्बमानाः कमलाकरेषु ।
ददर्श राजा भ्रमरायमाणा पुष्पद्रुमेषु प्रमदाक्षिमालाः ।।[4]

---

1. लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिंचितम् ।
मोट्टायितम् कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा ।।{द०रू०}

कभी कुञ्ज-कुटीरों में तो कभी खुले आकाश के नीचे, कभी विहंसते फूलों से लदे पेड़ों की छाया में तो कभी विकसित कमलों वाले जलाशयों में वह राजा अपनी बधुओं के प्रसन्न विलासों से आनन्दित हुआ। स्नान से पूर्व वे युवतियाँ जो अपनी देह में सुगन्धित लेप या चूर्ण लगातीं, उससे और उनकी मालाओं तथा आसवों से फूटती सुगन्ध पर मंडराते भौरों से डरकर जब वे घबड़ाती थीं तब राजा उन विलासिनियों की उस विलास-लीला का मुस्कराते हुए आनन्द लेता था। यद्यपि उन विलासिनियों के कर्णाभूषण सुन्दर फूलों के बने थे, उनके केशपाश भी पर्याप्त पुष्पमालाओं से सुशोभित थे फिर भी जैसे उन्हें फूलों से तृप्ति नहीं थी वैसे ही राजा का भी उनकी विलास-लीलाओं से जी नहीं अघाता था। कभी कुञ्जों में भटकतीं तो कभी कमलों में अटकतीं और कभी फूलों से लदे पेड़ों पर भँवरों की तरह मंडराती उन युवतियों की चञ्चल आँखों को देखकर राजा का जी नहीं अघाता था।

प्रस्तुत स्थल में विलासिनियाँ आलम्बन, विलासपूर्वक उनका इधर-उधर गमन आदि उद्दीपन विभाव है। मुस्कराते हुए उनके विलासों का आनन्द लेना अनुभाव तथा प्रतीयमान हर्ष व्यभिचारी भाव है।

प्रधान नागरिक की कन्या का सौन्दर्य वर्णित श्रृंगाराभास का यह दृष्टान्त देखिए-

तस्य राज्ञः (बोधिसत्त्वस्य) पौरमुख्यस्य दुहिता श्रीरिव विग्रहवती साक्षाद्रतिरिवाप्सरसामन्यतमेव परया रूपलावण्यसम्पदोपेता परमदर्शनीया स्त्रीरत्न-सम्मता बभूव।

अवोत्तरागस्य जनस्य यावत्सा लोचनप्राप्यवपुर्बभूव ।

तावत्त तद्रूपगुणावबद्धां न दृष्टिमुत्कम्पयितु शशाक ।।[1]

उस राजा (बोधिसत्त्व) के प्रधान नागरिक की कन्या अपूर्व सुन्दरी थी। वह मूर्तिमती लक्ष्मी थी। साक्षात् रति थी। अप्सरा की तरह रूपवती थी। स्त्रीरत्न एवं दर्शनीय जो जिनकी वासना नहीं क्षीण हुई थी, ऐसे लोगों की नजर जब उस पर टिक जाती थी तो वहाँ से अपनी आँख हटाना उसके वश की बात नहीं होती थी।

अनौचित्य प्रवर्तित रति होने से यहाँ शृंगाराभास कहा जायेगा। एक दिन उस उन्मादयन्ती के पिता के आग्रह करने पर राजा (बोधिसत्त्व) ने ब्राह्मणों को वधूपरीक्षा के लिए उन्मादयन्ती के घर भेजा। जब वह ब्राह्मणों को भोजन परोसने लगी उस समय का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

तदाननोद्वीक्षणनिश्चलाक्षा मनोभुवा संह्रियमाणधैर्याः ।

अनीश्वरा लोचनमानसानामासुर्मदेनेव विलुप्तसञ्ज्ञाः।।[2]

जब उन ब्राह्मणों ने उसकी ओर देखा तो उनकी आँखें उसके मुख पर स्थिर हो गई। काम ने उनका धैर्य हरण किया। उन्हें अपनी आँखों और मन पर ही वश नहीं रहा। नशे में चूर मदमत्त की तरह उसे देखते ही चेतना खो दी।

उन्मादयन्ती को देखकर ब्राह्मणों का इस प्रकार धैर्यस्खलित हो जाना मर्यादा के बाहर है अतः अनौचित्य प्रवर्तित रति का वर्णन होने से यहाँ भी शृंगाराभास ही है।

---

1. पूर्व गद्य सहित श्लोक 4, उन्मादयन्ती जातक

2. उन्मादयन्ती जातक, 5

## हास्य रस

"हास" स्थायी भाव वाला रस हास्य रस होता है।हास्य में वाणी-वेशादि विकृतियों से होने वाला चित्त का विकास होता है - "वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते"।[1] दशरूपककार कहते हैं कि अपने या दूसरे के विकारयुक्त आकार,वचन तथा वेष आदि विभावों से जो हास स्थायी होता है उसका परिपोष हास्य रस कहलाता है। इसे तीन प्रकार के आश्रयों में होने वाला कहा गया है-

विकृताकृतिवाग्वेषैरात्मनोऽथ परस्य वा ।
हासः स्यात्परिपोषोऽस्य हास्यास्त्रिप्रकृतिःस्मृतः।।[2]

इस प्रकार इस हास के आत्मस्थ तथा परस्थ ये दो निमित्त होते हैं और वह उत्तम,मध्यम और अधम प्रकृति के भेद से छः प्रकार का होता है । यथा-1•आत्मस्थ उत्तम प्रकृति 2•आत्मस्थ मध्यमप्रकृति, 3•आत्मस्थ अधम प्रकृति, 4•परस्थ उत्तम प्रकृति, 5•परस्थ मध्यम प्रकृति तथा परस्थ अधम प्रकृति का हास। हास का अर्थ है वाणी आदि की विकृति को देखकर चित्त का विकास।जिसके चित्त में हास नामक भाव(लौकिक रस) होता है यदि उसका कहीं साक्षात् वर्णन नहीं किया जाता है तो भी उसको विभावादि के वर्णन से समझ लिया जाता है।

---

1• साहित्य दर्पण, 3/176

2• दशरूपक, 4/75

3• साहित्यदर्पण, 3/220-221

इसी प्रकार बीभत्स आदि रसों के बारे में भी समझना चाहिए।

जिस हास में मात्र नेत्र विकसित होते है वह स्मित कहलाता है, जिसमें कुछ-कुछ दाँत दिखाई पड़ते हैं वह हसित है, मधुर स्वरों से युक्त विहसित तथा वह जब सिर हिलाने के साथ होता है जो उपहसित कहलाता है। अपहसित वह है जिसमें नेत्र अश्रुयुक्त हो जाते हैं और अतिहसित वह है जिसमें अंगों को इधर-उधर फेंका जाता है। इनमें से क्रमश: दो-दो उत्तम, मध्यम और अधम प्रकृति के हुआ करते हैं।[1] अर्थात् अपने या दूसरे के विकार को देखकर उत्तम जन को स्मित और हसित हुआ करते है, मध्यम जन को विहसित और उपहसित हुआ करते हैं तथा अधम जन को अपहसित और अतिहसित होते हैं। धनञ्जय के अनुसार हास्य रस के निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि तथा मूर्च्छा व्यभिचारी भाव होते हैं-

"निद्रालस्यश्रमग्लानिमूर्च्छाश्च सहचारिण:।"[2]

दशरूपक के उपर्युक्त व्यभिचारियों के अतिरिक्त भारतमुनि शङ्का आदि[3] तथा भरतमुनि एवं विश्वनाथ ने नेत्रसंकोच, मुस्कुराना आदि को भी व्यभिचारी कहते हैं। ' इस प्रकार विकृत चेष्टादि वाला व्यक्ति हास्य रस का आलम्बन, उसकी चेष्टाएं उद्दीपनविभाव होती हैं। नेत्रसंकोच, स्मेरता आदि अनुभाव तथा निद्रा आलस्य आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।

---

1. दशरूपक, 4/76
2. दशरूपक, 4/78
3. नाट्यशास्त्र, 7/110

उपदेशात्मक एवं वास्तववादी काव्य होने के कारण जातकमाला में अपवादस्वरूप ही हास्य रस के स्थान पाये जाते हैं। यथा एक बार कोषाध्यक्ष के जन्म में अवतरित बोधिसत्त्व जब किसी काम से राजकुल गये तो उनकी अनुपस्थिति में उनकी सास अपनी बेटी से मिलने आईं। उन्होंने अपनी बेटी से पूँछा कि तुम्हारे पति अपमान तो नहीं करते, कष्टादि तो नहीं देते। यह सुनकर लज्जावनत होकर बेटी ने कहा-

यादृशोऽयं शीलगुणसमुदाचारेण प्रव्रजितोऽपि दुर्लभः। कः इदानीं तादृशः। अथ सा तस्या माता जरोपहतश्रुतिस्मृतित्वाल्लज्जासंकुचिताक्षरं तनयया तद्वचनमभिधीयमानं न सम्यगुपधारयामास। प्रव्रजितसंकीर्तनात्तु प्रव्रजितो मे जामातेति निश्चयमुपजगाम। सा सस्वरमभिरुदिता स्वां दुहितरमनुशोचन्ती दुःखावेगवशात् परिदेवनपरा बभूव। कीदृशस्तस्य शीलगुणसमुदाचारो य एवमनुरक्तं स्वं जनमपहाय प्रव्रजितः। किं वा तस्य प्रव्रज्यया ?

अर्थात् इनकी तरह सदाचारी और शीलवान् तो कोई प्रव्रजित भी दुर्लभ है। उनके जैसा कोई दूसरा है ही नहीं। बुढ़ापे के कारण सास की सुनने और समझने की शक्ति क्षीण हो गई थी। बेटी ने धीरे-धीरे संक्षेप में जो कुछ कहा उसको ठीक से समझ न सकी। "प्रव्रजित" शब्द को उसने सुना और निश्चय कर लिया कि मेरा जामाता प्रव्रजित हो गया है। अपनी बेटी के लिए शोक करती हुई चिल्ला-चिल्लाकर वह रोने लगी। दुःख के आवेग में विलाप करती हुई कहने लगी- कैसा है उसका शील और सदाचार जिसने अपने इतने अनुरक्त परिवार को छोड़कर इस तरह सन्यास ग्रहण कर लिया है? या उसकी इस प्रव्रज्या से क्या लाभ ?

प्रस्तुत स्थल में कोषाध्यक्ष को सास आलम्बन, उसका रोना उद्दीपन विभाव है। इसी प्रकार आर्यशूर आगे कहते हैं-

सा बोधिसत्त्वस्य पत्नी तेन मातुः करुणेनाकृतकेन परिदेवितेन पतिप्रव्रज्याभिसम्बन्धेन स्त्रीस्वभावात् व्यथितहृदया ससम्भ्रमा विषादविक्लवमुखी, शोकदुःखाभिनिपातसंक्षोभाद्विस्मृतकथाप्रस्तावसम्बन्धा प्रव्रजितो मे भर्तेति मद्व्यवस्थापनार्थमम्बा गृहमिदमभिगता विप्रियश्रवणादिति निश्चयमुपेत्य सपरिदेवितं सस्वरं रुदती मोहमुपजगाम बाला। तदुपश्रुत्य गृहजनः परिजनवर्गश्च शोकदुःखावेगादाक्रन्दनं चकार। तच्छ्रुत्वा प्रातिवेश्यमित्रस्वजनबन्धुवर्गः संश्रितजनो ब्राह्मणगृहपतयश्च तस्य गृहपतेरनुरागवशानुगाः प्रायशश्च पौरास्तद्गृहमभिजग्मुः।[1]

पति ने प्रव्रज्या ले ली है इस सम्बन्ध में अपनी माता के करुण एवं स्वाभाविक विलाप सुनकर नारी-स्वभाव के कारण उसका दिल करुणा से भर गया और उसके मन में बड़ी घबराहट हुई। विषाद से उसका मुख भर गया। शोक और दुःख के आवेग में वह पूर्ववर्णित प्रसंग को ही भूल गई। उसने समझा मेरी माँ मेरे पति के प्रव्रज्या की बात सुनकर ही मुझे सान्त्वना देने के लिए आई हैं। यह निश्चय होते ही वह जोर-जोर से चिल्लाकर रोने लगी। यह सुनकर घर के दूसरे लोग और सभी नौकर-चाकर रोने लगे। बोधिसत्त्व के प्रेम में पागल पड़ोसी, मित्र स्वजन, बन्धु-बान्धव, आश्रित ब्राह्मण और अन्य गृहपति प्रायः सभी नगरनिवासी वहाँ आ गये।

इस प्रकार सहज रूप से इन स्थलों में हास्य रस की चर्वणा होती है।

---

1. 20 वाँ श्रेष्ठि जातक, श्लोक 7 के बाद गद्य

अद्भुत रस

इसका स्थाई भाव विस्मय है। विलक्षण वस्तुओं के श्रवण, दर्शन से जो चित्त का एक विकास होता है वही विस्मय कहलाता है-

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु ।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।।[1]

आचार्य धनञ्जय इसी को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "अलौकिक पदार्थों (के दर्शन, श्रवणादि) से होने वाला विस्मय स्थायी भाव ही जिसका जीवन है वह अद्भुत रस है। साधुवाद, अश्रु, कम्पन, प्रस्वेद तथा गद्गद होना आदि उसके कार्य हैं, हर्ष आवेग और धृति इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं-

अतिलोकैः पदार्थैः स्याद्विस्मयस्यात्मा रसोऽद्भुतः।।[2]
कर्मास्य साधुवादाश्रुवेपथुस्वेदगद्गदाः ।
हर्षावेगधृतिप्राया भवन्ति व्यभिचारिणः।।[3]

भाव यह है कि लोक-सीमा का अतिक्रमण करने वाले पदार्थों के वर्णन आदि से विभावित होकर, साधुवाद आदि अनुभावों से परिपुष्ट होकर तथा हर्ष आवेग आदि व्यभिचारी भावों से भावित होकर विस्मय नामक स्थाई भाव ही अद्भुत रस कहलाता है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. साहित्य दर्पण, 3/180
2. दशरूपक, 4/78
3. दशरूपक, 4/79

एक बार शशा रूप में बोधिसत्त्व उपोषध व्रत के दिन आये हुए अतिथि के भोजन के लिए अपने आपको प्रज्वलित अग्नि में समर्पित कर दिया था। उनके इन दिव्य गुणों से आश्चर्ययुक्त होकर अतिथि रूप में आये हुए देवराज इन्द्र ने देवों को सम्बोधित करते हुए कहा-

त्यक्तं बतानेन यथा शरीरं निःशङ्कमद्यातिथिवत्सलेन ।
निर्माल्यमप्येवमकम्पमाना नालं परित्यक्तुमधीरसत्त्वाः ।।
जातिः क्वेयं द्विरोधि क्व चेदं त्यागौदार्यं चेतसः पाटवं च।
विस्पष्टोऽयं पुण्यमन्दादराणां प्रत्यादेशो देवतानां नृणां च।।[1]

जिस प्रकार निडर होकर इस अतिथिवत्सल ने अपनी देह का परित्याग किया है उस प्रकार अविचल होकर कोई अधीर व्यक्ति निर्माल्य भी नहीं छोड़ सकता। कहाँ इसकी यह पशुयोनि और कहाँ यह विरोधी त्याग की उदारता और मन की दृढ़ता। स्पष्ट ही इसने पुण्य की ओर से उदासीन मनुष्यों और देवों को जीत लिया है।

प्रस्तुत स्थल में शशा आलम्बन, उसका देह परित्याग उद्दीपन विभाव है। स्तुति आदि अनुभाव तथा हर्ष, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं।

अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना आर्यशूर के इन शब्दों में भी देखिए-

स कारुण्याभ्यासादनभिद्रुग्धवित्त सत्त्वेषु तृणपर्णसलिलमात्रवृत्तिः सन्तोषगुणादरण्यवासनिरतमतिः प्रविवेककाम इव योगी तमरण्यप्रदेशमभ्यलञ्चकार

---

1. शशा जातक, 34-35 श्लोक

मृगाकृतिर्मानुषधीरचेतास्तपस्विवत्प्राणिषु सानुकम्पः ।
चचार तस्मिन् स वने विविक्ते योगीव सन्तुष्टमतिस्तृणाग्रैः।।[1]

एक बार बोधिसत्त्व शरभ (सिंह) योनि में जन्म ग्रहण किया। उनके स्वभाव का वर्णन करते हुए हो कहा गया कि अत्यन्त दयावान् होने के कारण किसी प्राणी के प्रति उनका द्वेष नहीं था। वे अति सन्तुष्ट थे। हिंस्र योनि में जन्म लेकर भी उन्होंने घास-पात और पानी को ही अपना आहार बनाया । वे जंगल में ही रहते थे। एकान्त चाहने वाले योगी की तरह जंगल को सुशोभित किया। उनकी आकृति पशु की थी पर हृदय मनुष्य को तरह धीर था। वे तपस्वियों को तरह प्राणियों में दया करते थे। घास के तिनके खाकर सन्तुष्ट रहते थे और योगी की तरह एकान्तवास करते थे।

अपरञ्च, हंस के रूप में अवतरित बोधिसत्त्व को स्वर्णिम कान्ति के लोभी राजा ने कृत्रिम सरोवर बनवाकर सेनापति सुमुख सहित बोधिसत्त्व को धोखे से पकड़वाने के लिए पूरे राज्य में पक्षियों के लिए अभय दान की घोषणा करवा दी। जब वे दोनों हंस उस कृत्रिम सरोवर में आ गये तो एक चतुर बहेलिया पकड़ने के लिए नियुक्त किया गया। अतः उसने जाल डाला।उसी समय का वर्णन है-

अथ तौ हंसवर्यौ निषादमापतन्तमालोक्य तूष्णीं बभूवतुः। स च तद्धंस-यूथं विद्रुतमालोक्य नूनमत्र कश्चिद्बद्ध इति निश्चयमतिः पाशस्थान्यनुविचरंस्तौ हंसवर्यौ ददर्श। स तद्रूपशोभया विस्मितमना बद्धाविति मन्यमानस्तत्समापन्नौ पाशावुद्धट्टयामास। अथैकं बद्धमबद्धेनेतरेण स्वस्थेनोपास्यमानमवेक्ष्य विस्मिततर-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. शरभ जातक, पूर्वगद्य सहित श्लोक प्रथम

हृदय: सुमुखमुपेत्योवाच"..[1]

बहेलिए को अपनी ओर आते हुए देखकर वे दोनों हंस चुप हो गये हंसों को जमात को आकाश में उड़ते देखकर बहेलिए ने सोचा-निश्चय ही कोई फन्दे में फंसा है। अत: जहाँ फन्दा डाला था उस स्थान को खोजते हुए इन दोनों हंसों को देखा। इनको रूपशोभा देखते ही वह अवाक् रह गया। फिर दोनों को फन्दे में फंसा जानकर फन्दे को हिलाया तब उसे पता चला कि एक तो फन्दे में फंसा है दूसरा बन्धनमुक्त है। फिर स्वस्थ होते हुए भी भागने की अपेक्षा दूसरे को सेवा कर रहा है। यह सब देखकर उसको आश्चर्य का ठिकाना न रहा और सुमुख से कहा...।

भावध्वनि

चूँकि बोधिसत्त्व को गणना भगवान के दश अवतारों में की जाती है, अत: तद्विषयक रति का बहुश: वर्णन होने से जातकमाला में भावध्वनि प्रचुर मात्रा में पाई जाती है।[2] कतिपय उदाहरण लीजिए-

स्वार्थोद्यतैरपि परार्थचरस्य यस्य
नैवान्वगम्यत गुणप्रतिपत्तिशोभा ।
सर्वज्ञ इत्यवितथाक्षरदीप्तकीर्ति
मूर्ध्ना नमे तमसमं सद्धर्मसङ्घम् ।।[3]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. हंस जातक,श्लो038 के बाद का गद्य

2. "रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित: भाव: प्रोक्त:"।

3. व्याघ्री जातक,4

जिनके लोकोपकारी सुन्दर सदाचरण का अनुकरण कोई स्वार्थ-लिप्सु व्यक्ति नहीं कर सकता, एवं सर्वज्ञ शब्द की अन्वर्थकता में जिनका यश प्रोद्भासित है, धर्म और सङ्घ के साथ उस भगवान् बुद्ध के सामने नतानन हूँ।

यहाँ बुद्ध विषयक रति का वर्णन होने से भावध्वनि ही है। अन्यत्र इसी जातक में आर्यशूर कहते हैं-

अनेन नाथेन सनाथतां गतं न शोचितव्यं खलु साम्प्रतं जगत् ।
पराज्याशाङ्कितजातसम्भ्रमो ध्रुवं विनिश्वासपरोऽद्य मन्मथः ।।[1]

इस नाथ को पाकर संसार आज सनाथ हो गया है। अब इनके लिए शोक करना उचित नहीं है। अपनी हार के डर से घबड़ाकर मन्मथ आज निश्चय ही लम्बी साँसें ले रहा होगा।

इसी प्रकार भावध्वनि का अतीव मनोहारी वर्णन निम्नलिखित श्लोकों में देखिए-

राजकुमार विश्वन्तर को राजा ने अतिशय दान देने के कारण निर्वासित कर दिया। तब वन,गमनार्थ उद्यत विश्वन्तर ने रानी से कहा-

प्रियं श्वसुरयोः कुर्याः पुत्रयोः परिपालनम् ।
धर्ममेवाप्रमादं च शोकं मद्विरहस्तु मा ।।

सास-ससुर की सेवा, बेटे-बेटी की उचित देखरेख, निरलसभाव से धर्माचरण में लीन रहकर मेरे वियोग में दुःखी मत होना।

लगभग इसी प्रकार की अपेक्षा काश्यप ने भी शकुन्तला को विदा करते समय की थी-

- - - - - - - - - - - - - - - -

1. व्याघ्री जातक, श्लोक 3.

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजं न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥[1]

बोधिसत्त्व के उपर्युक्त वचनों को सुनकर पत्नी मद्री बोली-

नैष धर्मो महाराज यद्याया वनमेकक: ।
तेनाहमपि यास्यामि येन क्षत्रिय यास्यसि॥
त्वदङ्गपरिवर्तिन्या मृत्युरुत्सव एव मे ।
मृत्योर्दु:खतरं तत्स्याज्जीवितं यत्त्वया विना॥[2]

हे महाराज, आप क्षत्रिय हैं, आप अकेले जंगल जायँ,यह धर्म नहीं है अत: आप जहाँ कहीं भी जायेंगे, मैं आपके साथ जाऊँगी। आपकी परिचर्या में आपके सामने यदि मेरी मृत्यु भी हो जाय तो मेरे लिए यह महोत्सव होगा,किन्तु आपके वियोग में तड़पते हुए जीवित रहना भी मृत्यु से अधिक दु:खदाई है।

उपर्युक्त स्थलों में भ्रम से श्रृंगार रस नहीं समझना चाहिए अपितु देव बोधिसत्त्व विषयिनी रति होने से भाव ध्वनि ही कही जायेगी।

## भावाभास

जातकमाला में यत्रतत्र भावाभास के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण देखिए-

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तल- 4/19
2. विश्वन्तर जातक, 31-32 श्लोक

राजा बोधिसत्त्व के मंत्री की कन्या उन्मादयन्ती अति सुन्दर थी। मंत्री द्वारा विवाह करने के आग्रह पर बोधिसत्त्व उसकी बधू परीक्षार्थ कुछ ब्राह्मण भेजे। वे ब्राह्मण उसको देखकर सामने रखा भोजन भी न कर सके। इस पर उन्मादयन्ती द्वारा तिरस्कृत होने पर उन्होंने उसका विवाह राजा से नहीं होने दिया तब उसका विवाह दूसरे से हो गया। एक दिन राजा कौमुदी महोत्सव का निरीक्षण कर रहे थे तभी छत पर उन्मादयन्ती को देखकर कामार्त्त हो गये-

विपुलधृतिगुणोऽप्यपत्रपिष्णुः परयुवतीक्षणविक्लवेक्षणोऽपि
उदितमदनविस्मयः स्त्रियं तां चिरमनिमेषलोचनो ददर्श।।

कौमुदी किंन्वियं साक्षाद्भवनस्यास्य देवता।
स्वर्गस्त्री दैत्ययोषिद्वा न ह्येतन्मानुषं वपुः।।

वे बड़े धीरजवाले और लज्जालु थे। दूसरों की युवा पत्नियों को देखकर उनकी आँखों में पीड़ा होती थी। किन्तु यह क्या? उन्मादयन्ती को कामार्त्त होकर वे अपलक निहारते ही रहे। क्या इस घर की यह देवता है? साक्षात् कौमुदी है, किम्वा अप्सरा या असुरांगना है? मनुष्य की आकृति तो नहीं है। उन्मादयन्ती विषयिणी बुद्धनिष्ठा रति के अनुभयनिष्ठ होने से यह रसाभास का स्थल है, क्योंकि विवाहित बुद्ध निष्ठा रति के अनुनयनिष्ठ होने से रसाभास है, क्योंकि विवाहित स्त्री उन्मादिनी के प्रति राजा बोधिसत्त्व को कामार्त्त दिखाना मर्यादा के बाहर है। अतः अनौचित्यप्रवर्तित रति होने से रसाभास कहा जायेगा।

इसी तरह आगे राजा को तद्विषयक चिन्तन करते हुए दिखाया गया है-

अन्वर्थरम्याक्षरसौकुमार्यमहो कृतं नाम यथेदमस्याः।
उन्मादयन्तीति शुचिस्मितायास्तथा हि सोन्मादमिवाकरोन्माम्।।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

विस्मर्तुमेनमिच्छामि पश्यामीव च चेतसा ।
स्थितं तस्यां हि मे चेतः सा प्रभुत्वेन तत्र वा।।
परस्य नाम भार्यायां ममाप्येवमधीरता ।
तदुन्मत्तोऽस्मि सन्त्यक्तो लज्जयेवाद्य निद्रया ।।
तस्या वपुर्विलसितस्मितवीक्षितेषु संरागनिश्चलमते सहसा स्वनन्ती ।
कार्यान्तरक्रमनिवेदधृष्टशब्दा विद्वेषमुत्तुदति चेतसि नालिका मे ।।

मन्दस्मिता इस महिला का कोमल और मधुराक्षर वाला नाम उन्माद-यन्ती अन्वर्थक है। इसने तो मुझे पागल बना दिया है। मैं इसे जितना भूलना चाहता हूँ उतना ही यह चित्त में उतर रही है। या तो इसमें मेरा मन खो गया है या उसने मेरे मन पर अधिकार जमा लिया है। पर नारी के लिए मैं इतना अधीर बन गया कि नींद और लाज मुझे छोड़कर दूर हो गई और मैं पागल बनगया हूँ। उसी का रूप, उसके हाव-भाव उसकी मन्द मुस्कान, मदभरी आँखें और शरीर-विलास में मानों मैं डूब गया हूँ। मैं हमेशा उसी के ध्यान में डूबा रहता हूँ। अन्य कार्यक्रम की सूचना देने में प्रवीण यह घड़ियाल जब अचानक ही बोल उठता है तब उसकी आवाज सुनकर (इसके ध्यान में व्याघात जानकर) मेरा मन झल्ला उठता है।

यहाँ भी अनौचित्य प्रवर्तितरति होने से भावाभास का स्थल है।

इसी परिप्रेक्ष्य में भाव शान्ति आदि ध्वनियों के कतिपय उदाहरण देखिए-

रजा विश्वन्तर ने अपने अतिदानवीरता के कारण बच्चों और पत्नी सहित निर्वासन प्राप्त किया और इसी दान वीरता के कारण अपनी दो सन्तान-पुत्र जाली और पुत्री कृष्णाजिना को एक ब्राह्मण को उसके पत्नी की सेवा के लिए प्रदान कर दिया। सन्तति-मोह के इसी प्रसङ्ग में भावशान्ति का उदाहरण जैसे-

अहो पुत्रवियोगाग्निर्निर्दहत्येव मे मनः ।

एतां तु धर्मं संस्मृत्य कोऽनुतापं करिष्यति ।।[1]

राजा कह रहे हैं " मैं जानता हूँ कि सन्तति वियोग की आग से मेरा हृदय जल रहा है, फिर भी सज्जनों के धर्म को याद कर इसके लिए क्यों पछताएँ?"

यहाँ पर विरहादि सन्ताप के कारण उठा हुआ "व्याधि" नामक व्यभिचारी भाव की "क्यों पछताएँ" यह कहकर शान्ति हुई है, इसलिए भावशान्ति ध्वनि है।

भावोदय देखिए-

राजा के लिए उन्मादयन्ती की वधू परीक्षा लेने गये ब्राह्मणों की दशा का वर्णन करते हुए आर्यशूर कहते हैं-

तदाननोद्वीक्षणनिश्चलाक्षा मनोभुवा संह्रियमाणधैर्याः ।

अनीश्वरा लोचनमानसानामासुर्मदेनेव विलुप्तसञ्ज्ञाः ।।[2]

जब इन ब्राह्मणों ने उसकी ओर देखा तो उनकी आँखें उसके मुख पर स्थिर होगईं। काम ने उनका धैर्य हरण कर लिया। उनको अपनी आँखों और मन पर ही वश नहीं रहा। नशे में मदमत्त की तरह उन्होंने देखते ही चेतना खो दी।

यहाँ पर भोजन के लिए बैठे ब्राह्मणों को उन्मादयन्ती को देखकर जो मदमत्तता आई अर्थात् जाड्य नामक व्यभिचारी भाव उदित हुआ वही भाव यहाँ चमत्काराधायक है उसकी चर्वणा होती है। अतः रस न होकर यहाँ भावोदय ध्वनि होगी।

---

1. विश्वन्तर जातक, 77

2. उन्मादयन्ती जातक, 5

एक उदाहरण और देखिए-

धनसेठ बोधिसत्त्व ने अपना सब कुछ दान कर दिया। जो कुछ बचा था उसको शक्र ने परीक्षा लेने के लिए गायब कर दिया। अब अकिंचन बोधिसत्त्व सोचते हैं-

चलं सौहृदमर्थानां विदितं पूर्वमेव मे । अर्थिनामेव पीडा तु दहत्यत्र मनो मम[1]

धन की मित्रता स्थायी नहीं होती, यह बात मुझे पहले ही मालुम थी। किन्तु मेरे पास धन न रहने पर माँगने वालों को कतलाफ होगी- यह सोचकर मेरा हृदय जल रहा है।

दानवीर बोधिसत्त्व को अकिंचनता के कारण उठा हुआ मनःक्षोभ नामक व्यभिचारी भाव ही यहाँ रसस्थानीय है उसी की चर्वणा होती है, वही अतिशय चमत्काराधायक है, अतः भावोदय ध्वनि है।

इसी तरह भावसन्धि का एक स्थल देखिए- श्रेष्ठि कुल में अवतरित बोधिसत्त्व प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं, इसके विपरीत बन्धु-बान्धव उनको नानाविध रोकना चाहते हैं। तब बोधिसत्त्व के मनोविचारों को वर्णित करते हुए आर्यशूर कहते हैं-

ये मे हरन्ति स्म पुरःसरत्वं रणेषु मत्तद्विपसङ्कटेषु ।
नानुव्रजन्त्यद्य वनाय ते मां किंस्वित्स एवास्मि त एव चेमे।।[2]

मतवाले हाथियों से भरी हुई रणभूमि में निडर होकर जो मेरे आगे-पीछे चलते थे, वे आज प्रव्रज्यार्थ पीछे क्यों नहीं चल रहे हैं ? क्या मैं वही हूँ और ये वही हैं?

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. अविषह्य श्रेष्ठि जातक, 6

2. 20 वाँ श्रेष्ठि जातक, 32 श्लोक.

13. उन्मादयन्ती वीर (धर्म) रस

14. सुपारग जातक वीर (धर्म) रस

15. मत्स्य जातक वीर (दया) रस

16. वर्त्तकापोतक जातक वीर (धर्म) रस

17. कुम्भ जातक वीर (दया) रस

18. अपुत्र जातक शान्त रस

19. बिस जातक शान्त रस

20. 20वाँ श्रेष्ठि जातक शान्त रस

21. चुड्ढबोधि जातक शान्त रस

22. हंस जातक भाव

23. महाबोधिजातक वीर (दया) रस

24. 24वाँ महाकपि जातक वीर (दया) रस

25. शरभ जातक वीर (दया) रस

26. रूरू जातक वीर (दया) रस

27. 27वाँ महाकपि जातक वीर (दया) रस

28. क्षान्ति जातक वीर (दया) रस

29. ब्रह्मजातक वीर (धर्म) रस

30. हस्ति जातक वीर (दया) रस

31. सुतसोम जातक वीर (दया) रस

32. अयोगृह जातक शान्त रस

33. महिष जातक वीर (दया) रस

34. शतपत्र जातक वीर (धर्म) रस

## सप्तम अध्याय

## जातकमाला में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन

## जातकमाला में प्रयुक्त छन्द

काव्य -योजना में छन्दों का अत्यधिक महत्त्व है। क्षेमेन्द्र कहते है कि "सुवर्ण तुल्य प्रबन्ध में यथास्थान, निविष्ट रत्नतुल्य छन्द अत्याधिक सुशोभित होते हैं-

सुवर्णार्हप्रबन्धेषु यथास्थाननिवेशिनाम् ।
रत्नानामिव वृत्तानां भवत्यभ्यधिका रुचि: ।।[1]

इसी प्रकार वह अन्यत्र कहते हैं कि "जिस प्रकार साधुओं के कथन और चरण चिह्नों का अनुसरण करने वाले सज्जन अवस्थानुकूल सदाचरणों से सुशोभित होते हैं उसी प्रकार उचित शब्द और पद से युक्त प्रबन्ध प्रस्तुत के अनुरूप सुन्दर छन्दों से सुशोभित होते हैं-

तथाप्यवस्थासदृशै: साधुशब्दपदास्थिता: ।
सुवृत्तैरेव शोभन्ते प्रबन्धा: सज्जना इव ।।[2]

क्षेमेन्द्र सज्जनों के चतुर्विध सारस्वत प्रसार मानते हैं-शास्त्र, काव्य, शास्त्रकाव्य तथा काव्यशास्त्र

शास्त्रं काव्यं शास्त्रकाव्यं काव्यशास्त्रं च भेदत: ।
चतुष्प्रकार: प्रसर: सतां सारस्वतो मत: ।।[3]

उनके अनुसार शास्त्र सभी काव्याङ्ग लक्षणों से युक्त होता है तथा सुन्दर अलङ्कारों से युक्त विशिष्ट शब्दार्थसाहित्य ही काव्य कहा जाता है। इसी प्रकार शास्त्रकाव्य सभी प्रकार के उपदेशो से युक्त होता है तथा क्षेमेन्द्र का ही "चतुर्वर्गसंग्रह"

---

1. सुवृत्ततिलक, तृतीय विन्यास, श्लोक37
2. सुवृत्ततिलक, तृतीय विन्यास, श्लोक 12
3. सुवृत्ततिलक, तृतीय विन्यास, श्लोक 02

है तथा भट्टिभौमकृत"रावणार्जुनीय" आदि को उन्होंने काव्यशास्त्र कहा है।[1]

उपर्युक्त काव्यविधाओं में छन्दों का कैसा नियोजन करना चाहिए, एतदर्थ सुवृत्ततिलककार कहते हैं-

शास्त्रं कुर्यात्प्रयत्नेन प्रसन्नार्थमनुष्टुभा ।
येन सर्वोपकाराय याति सुस्पष्टसेतुताम् ।।
काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च ।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित् ।।
शास्त्रकाव्येऽतिदीर्घाणां वृत्तानां न प्रयोजनम्।
काव्यशास्त्रेऽपि वृत्तानि रसायत्तानि कात्यवित्।।
पुराणप्रतिबिम्बेषु प्रसन्नोपायवर्त्मसु ।
उपदेशप्रधानेषु कुर्यात्सर्वेष्वनुष्टुभम् ।।[2]

अर्थात् शास्त्र में प्रसाद गुण सम्पन्न अनुष्टुप् का यत्नपूर्वक प्रयोग करना चाहिए, जिससे वह सबके लिए सेतु का काम करता है। काव्य में रस और वर्ण्य विषय के अनुसार सभी छन्दों का अलग-अलग प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार शास्त्रकाव्य में अत्यधिक लम्बे छन्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए तथा काव्यशास्त्र में भी रसानुसारी छन्दों का प्रयोग करना चाहिए। पौराणिक आख्यानों से युक्त काव्यों में मनोरञ्जनप्रधान काव्यों तथा उपदेशप्रधान काव्यों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग करना चाहिए।

---

1. शास्त्रं काव्यविद: प्राहु: सर्वकाव्याङ्गलक्षणम् ।
काव्यं विशिष्टशब्दार्थसाहित्यसदलङ्कृति ।।
शास्त्रकाव्यं चतुर्वर्गप्रायं सर्वोपदेशकृत् ।
भट्टिभौमकाव्यादि काव्यशास्त्रं प्रचक्षते ।। "सुवृत्ततिलक, 3/3-4"

इस प्रकार स्पष्ट है कि छन्दों का यथास्थान प्रयोग करना चाहिए क्योंकि अनुचित स्थान में प्रयुक्त यह वृत्तरूपी रत्नावली उसी प्रकार अज्ञानता को अभिव्यक्त करती है जिस प्रकार गले में पहनी गई करधनी।[1] इस प्रकार सहज प्रश्न उठता है कि किस छन्द का विनियोग कहाँ होना चाहिए ? एतदर्थ क्षेमेन्द्र कहते है -

आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तरसंग्रहे ।

शमोपदेशवृत्तान्ते सन्त: शंसन्त्यनुष्टुभम् ।।[2]

अर्थात् सर्गबन्ध काव्यके आरम्भ में, सविस्तर कथा के कहने में तथा शमोपदेशयुक्त वृतान्त में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग प्रशस्य माना जाता है। एवमेव वह आगे हैं कि "श्रृंगार के आलम्बन भूत नायिका के रूप-वर्णन आदि में तथा वसन्तादि ऋतुओं एवं अनेके अङ्गों के वर्णन में उपजाति का प्रयोग करना चाहिए। चन्द्रोदय आदि के वर्णन में रथोद्धता तथा नीति वर्णन में वंशस्थ छन्द विराजित होता है-

श्रृङ्गारालम्बनोदारनायिकारूपवर्णनम् ।

वसन्तादि तदङ्गे स सच्छायमुपजातिभि: ।।

रथोद्धता विभावेषु भव्या चन्द्रोदयादिषु ।

षाड्गुण्यप्रगुणा नीतिर्वंशस्थेन विराजते ।।[3]

क्षेमेन्द्र के अनुसार वीर और रौद्र रस के संकर में वसन्ततिलका तथा रौद्र रस के संकर में सर्ग के अन्त में मालिनी छन्द का प्रयोग करना चाहिए।उचित अनुचित के निर्धारण के समय शिखरिणी एंव उदारता,रुचिरता व औचित्य के विचार

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. सुवृत्ततिलक, 3/13

2. सुवृत्ततिलक 3/16

3. सुवृत्ततिलक 3/17-18

के समय हरिणी श्रेयष्कर मानी जाती है-

> वसन्ततिलकं भाति संकरे वीररौद्रयो: ।
> कुर्यात्सर्गस्य पर्यन्ते मालिनी द्रुततालवत् ।।
> उपपन्नपरिच्छेदकाले शिखरिणी मता ।
> औदार्यरुचिरौचित्यविचारे हरिणी वरा ।।[1]

वह आगे कहते हैं कि आक्षेप एवं क्रोधपूर्वक धिक्कारने में पृथ्वी छन्द उपयुक्त होता है तथा वर्षाकालिक प्रवास के समय एवं व्यसन में मन्दाक्रान्ता अच्छा लगता है। इसी प्रकार नृपादि के शौर्य-वर्णन में स्रग्धरा का प्रयोग करना चाहिए-

> साक्षेपक्रोधधिक्कारे परं पृथ्वी भरक्षमा ।
> प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।।
> शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलक्रीडितं मतम् ।
> सावेगपवनादीनां वर्णने स्रग्धरा मता ।।[2]

इस प्रकार सब प्रकार के छन्दों का प्रयोग करने वाले वश्यवचस् आचार्यों का विशेष रूप से सद्वृत्तों के प्रयोग का यह विभाग है।[3] अन्यान्य छन्दों का प्रयोग करना चाहिए, उनके प्रयोग में दरिद्रता नहीं होना चाहिए।[4] फिर भी, क्षेमेन्द्र कहते है, जिसको जिस छन्द में प्रवीण्य प्राप्त हो वह उसी विशेष छन्द में चमत्कार प्रदर्शित

---

1. सुवृत्ततिलक, 3/19-20
2. सुवृत्ततिलक, 3/21-22
3. सुवृत्ततिलक, 3/25
4. सुवृत्ततिलक, 3/26

करने के कारण उस एक ही छन्द के प्रति विशेष आदर पूर्ववर्ती कवियों में भी दिखाई पड़ता है। जैसे अभिनन्द का अनुष्टुप् के प्रति, पाणिनि का उपजाति के प्रति तथा भारवि का वंशस्थ के प्रति विशेष आदर है। इसी प्रकार वाग्वल्ली की वसन्ततिलका, रत्नाकर की उत्कलिका तथा भवभूति की शिखरिणी सुशोभित होती है। अपरञ्च कालिदास मन्दाक्रान्ता के लिए एवं राजशेखर शार्दूलविक्रीडित के लिए प्रसिद्ध हैं।

अपने कथन का उपसंहार करते हुए क्षेमेन्द्र कहते हैं कि यद्यपि यह कोई अवश्यम्प्रयोज्य विधान नहीं है तथापि जैसी छन्दः प्रयोग की विधि बताई गई है यदि कवि वैसा करते हैं तो यह उनकी कृतज्ञता होगी-

तस्माद्यथायं विनियोगमार्गः प्रदर्शितो वृत्तनिवेशनेषु ।
तथैव कार्यः कविभिः कृतज्ञैरवश्यवाचां नियमस्तु नाऽयम् ।।

जहाँ तक जातकमाला का सम्बन्ध है वह सभी प्रकार के उपदेशों से युक्त होने से क्षेमेन्द्र की परिभाषानुसार शास्त्रकाव्य ही सिद्ध होता है। आर्यशूर को छन्दः प्रयोग में विशेष दक्षता प्राप्त थी। उनका छन्दोनैपुण्य इस बात से भी प्रमाणित होता है कि उन्होंने अपनी कृति में 27 प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। आर्यशूर ने यथास्थान छन्दों के प्रयोग में औचित्य का ध्यान रखा है। उदाहरणार्थ जैसे कि शास्त्रकाव्य में अतिदीर्घ छन्दों का प्रयोग अनुचित माना जाता है, अतः आर्यशूर ने भी स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, हरिणी आदि दीर्घ छन्दों का प्रयोग नहीं किया है तथा शिखरिणी, पृथ्वी, शार्दूलविक्रीडित आदि दीर्घ छन्दों का अत्यल्प ही प्रयोग किया है। अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, उपजाति, मालिनी, शालिनी, अपरवक्त्र, वसन्ततिलका, आर्या, पुष्पिताग्रा आदि जैसे लघु छन्दों का ही प्रयोग किया है।

जातकमाला एक उपदेश काव्य है और चूँकि उपदेश काव्य में अनुष्टुप् छन्द अच्छा माना गया है अत: छन्दोनिपुण कवि ने सर्वाधिक मात्रा में अनुष्टुप् का ही प्रयोग किया है। इतना ही नहीं चूँकि विस्तारपूर्वक कथन में इस छन्द का प्रयोग करना चाहिए अत: इस बात का भी ध्यान कवि को था। यथा सविस्तर कथन के ऐसे स्थलों जैसे व्याघ्रीजातक में श्लोक 13 से 20 तक, शक्रजातक में श्लोक 4 से 9 तक तथा विश्वन्तर जातक में अनुष्टुप् का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार चूँकि शमोपदेश में अनुष्टुप् के प्रयोग की प्रशंसा होती है, अत: जातकमाला में भी शमोदपदेश के अनेक स्थल अनुष्टुप् युक्त मिलते हैं, यथा शश जातक में श्लोक 10 से 12 आदि मे अनुष्टुप् छन्दों में शमोपदेश देखा जा सकता है।

• इसी प्रकार जैसा कि क्षेमेन्द्र ने कहा है कि श्रृंगार के आलम्बनभूत नायिका के रूप आदि के वर्णन में, वसन्तादि ऋतुओं के एवं उनके अङ्गों के वर्णन में उपजाति का प्रयोग रूचिर होता है- आर्यशूर ने उन्मादयन्ती जातक के श्लोक-4-5, क्षान्ति-जातक के श्लोक 5 से 12 तक में, सुपारग जातक में श्लोक 3 से 11 में तथा मत्स्य जातक में श्लोक 8 से 13 तक आदि ऐसे ही स्थलों में उपजाति का प्रयोग करके अपनी दक्षता का परिचय दिया है।

इतना ही नहीं नीति कथन में वंशस्थ छन्द के प्रयोग की अभिरामता मानने वाली परम्परा का भी जातकमालाकार ने यथासम्भव ध्यान रखा है। उदाहरण के लिए नीति-कथन के यज्ञ जातक में श्लोक 11 से 14 तक, हंस जातक में 81-82 तथा श्लोक 93 से 98 तक, क्षान्ति जातक में श्लोक 15 से 23 तक यथा 40से 47 इत्यादि तक के स्थलों में वंशस्थ का रूचिर प्रयोग देखा जा सकता है। इसी प्रकार नृपादि के शौर्यादि कथन में शार्दूलविक्रीडित छन्द अच्छा माना जाता है, अत: आर्यशूर ने

यज्ञ जातक के श्लोक 18 एवं 32 में तथा मैत्रीबलजातक के श्लोक 49 आदि ऐसे ही स्थलों में शार्दूलविक्रीडित छन्द का उचित प्रयोग करके काव्य को आकर्षक बनाया है।

स्पेयर ने भी आर्यशूर को छन्द-योजना का शौकीन कहा है। साथ ही यह भी कहते हैं कि वे वर्ण्य-विषय की भाव योजना एवं स्वरों के अनुसार छन्दः प्रयोग करते थे।[1] तारानाथ के हवाले प्रो० मैक्समूलर ने भी आर्यशूर को छन्दःशक्ति को स्वीकार किया है।[2] इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वान् कीथ ने भी कहा है कि "यह सच है कि उनकी भाषा में यत्र तत्र पालि का प्रभाव दिखाई पड़ता है परन्तु इससे आर्यशूर की भाषा की शुद्धता में विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता और उनका छन्दों-नैपुण्य उत्कृष्ट प्रकार का है।"[3]

"मैत्रकन्यकावदान" को आर्यशूर की रचना मानने वाले डॉ पी०एल०वैद्य कहते हैं कि आर्यशूर के छन्दःप्रयोग के विषय में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि उन्होंने स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता अथवा दण्डक छन्दों का प्रयोग जातकमाला में नहीं किया यद्यपि इनका प्रयोग उन्होंने मैत्रकन्यावदान में किया है।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. 'In the choice of his metres, he was guided by stylistic motives in accordance with the tone and sentiment, required at a given point of the narrative.
(Jatakamala, Introduction P. XXIV).

2. He is mentioned a great authority of metres (Taranatha P.I,81) and he certainly handles his metres with great skill.
(Jatakamala Speyer's edition Preface P. XVII).

3. No about in-his language, there are tracer here and there of Palisism but these do not seriously detract from Aryasura's claim to correctness of language and his metrical skill is considerable.
(History of Sanskrit Literature, P.69).

4. It should be noted that Aryasura does not use स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता or दण्डक in this work though he uses them in the मैत्रकन्यकावदान or दिव्यावदान
(3rd Appendix, P.269) of Vaidyas Jatakamala edition.

आर्यशूर द्वारा जातकमाला में प्रयुक्त छन्द इस प्रकार हैं-

1· अनुष्टुप्

1· व्याघ्रीजातक- श्लोक नं० 13,14,15,16,17,18,19,20

2· शिबिजातक -श्लोक नं० 15,16,19,20,21,22,23,24,31,32,33,
44,45,47

3· कुल्माषपिण्डीजातक-श्लोक नं० 1,8,13,16

4· श्रेष्ठिजातक- श्लोक नं०-1

5· अविषह्यश्रेष्ठि जातक श्लोक- 6,25

6· शश जातक श्लोक नं०- 2,3,6,13,14,15,18,22,24,25,31,36,37,

7· अगस्त्य जातक श्लोक नं-3;5,6,8,13,14,16,17,19,21,22,23,
26,27,29,32,33,35

8· मैत्रीबल जातक श्लोक नं०-5,9,10,15,16,17,18,19,26,31,37,
40,44,50,51,52,56,57,58

9· विश्वन्तरजातक श्लोक नं०-6,7,8,9,21,22,24,27,28,29,30,31,
32,34,35,36,37,42,43,46,48,55,56,57,58,59,60,61,62,
63,64,65,66,67,68,69,70,71,72,73,74,75,76,77,82,73,
74,75,76,77,82,83,84,85,86,87,88,91,95,96,98,99

10· यज्ञजातक श्लोक नं०-10,16,31,34,36

11· शक्रजातक श्लोक नं०-4,5,6,7,8,9

12· ब्राह्मणजातक श्लोक नं०-2,3,5,6,7,10,13,14,15,16

13· उन्मादयन्ती जातक श्लोक नं०-10,11,13,14,21,22,24,25,27,
28,31,35,40,43,44

14• सुपारग जातक श्लोक नॅ0-13, 14, 17, 19, 21, 23, 24, 30, 31

15• मत्स्यजातक श्लोक नॅ0-5, 6, 7

16• वर्त्तकापोतक जातक श्लोक नॅ0-1, 2, 3

17• कुम्भजातक श्लोक नॅ0-3, 9, 10, 11

18• अपुत्रजातक श्लोक नॅ0-1, 2, 4, 9, 10, 11, 12, 13, 21

19• विस जातक श्लोक नॅ0-1, 2, 3, 7, 8, 9, 10, 29, 30, 32, 34, 35, 36

20• वाश्रेष्ठि जातक श्लोक नॅ0-1, 9, 10

21• चुड्डबोधिजातक श्लोक नॅ0-1, 4, 5, 22, 23, 24, 33, 34, 35

22• हंसजातक श्लोक नॅ0-2, 3, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 24, 26, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 52, 53, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 83, 84, 88, 89, 90

23• महाबोधिजातक श्लोक नॅ0- 2, 22, 23, 31, 45, 50, 51, 56

24• महाकपि जातक-श्लोक नॅ0-6, 7, 8, 11, 12, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 36, 37, 38, 39

25• शरभजातक श्लोक नॅ0-2, 13, 14, 15, 16, 17

26• रूरूजातक श्लोक नॅ0-1, 8, 9, 10, 12, 13, 18, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 35, 37•38, 39, 40, 41

27• महाकपि जातक श्लोक नॅ0-4, 5, 17, 24

28• क्षान्तिजातक श्लोक नॅ0-4, 30, 31, 32, 33, 37, 49, 50, 51, 52, 54, 57, 61, 62, 63

30. हस्तिणातक श्लोक नं0-1,2,3,4,5,6,7,8,13,14,15,18,20,32,
33,41,42,43,44

31. सुतसोमजातक श्लोक नं0-11,13,14,27,41,42,43,44,45,49,53,
60,68,69,70,71,73,79,82,83,84,85,86,87

32. अयोगृह जातक नं0-5,6,7,15,20,44

33. माहिष जातक नं0-5,10,11,12,16

34. शतपत्रजातक श्लोक नं0 - 12,13,14,16,17,18,19,22

2. उपजातिछन्द[1]

1. व्याघ्रीजातक श्लोक नं0-6,7,8,9,10,11,12,22,23,25,27,28,
29,30,31,33

2. शिविजातक श्लोक नं0- 1,2,3,4,6,8,9,11,13,17,18,25,27,
29,34,36,37,46,48,50

3. कुल्माषपिण्डीजातक श्लोक नं0-3,14

4. श्रेष्ठि जातक श्लोक नं0-2,4,6,7,8,9,10,11,12,14,15,16,17,
19,20

5. अविषह्यश्रेष्ठि जातक श्लोक नं0-1,2,3,4,5,9,10,11,11,13,14

6. शशजातक श्लोक नं0-8,9,10,12,32,33

7. अगस्त्य जातक श्लोक नं0-1,2,9,10,11,12

---

1. अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यस्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातीस्वेदमेव नाम।।

वृत्तरत्नाकर 2/32

8. मैत्रीबल जातक श्लोक नं0-1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 12, 13, 21, 22, 24, 25, 27, 28, 29, 32, 33, 34, 35, 36, 38, 39, 41, 42, 43, 45, 47, 49

9. विश्वन्तर जातक श्लोक नं0-1, 2, 3, 4, 5, 10, 12, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 23, 25, 26, 41, 45, 47, 49, 51, 80, 92, 93, 94

10. यज्ञजातक श्लोक नं0-1, 2, 5, 8

11. शक्रजातक श्लोक नं0-1; 14

12. ब्राह्मण जातक श्लोक नं0-17, 18, 19, 20, 21

13. उन्मादयन्ती जातक-श्लोक नं0-1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 12, 16, 17, 18, 23, 29, 30, 32, 34, 37, 38, 39, 41, 42

14. सुपारगजातक श्लोक नं0-3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 11, 16, 25, 26, 27, 28, 29, 33

15. मत्स्यजातक श्लोक नं0-1, 2, 3, 4, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17

16. वर्त्तकापोतकजातक श्लोक नं0- 4, 5, 6, 8

17. कुम्भ जातक श्लोक नं0-1, 2, 4, 8, 18, 26, 27, 31, 32, 33

18 अपुत्रजातक श्लोक नं0-3, 7, 8

19. बिस जातक श्लोक नं0-4, 5, 6, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 20, 2 23, 24, 25, 31

20. वाँ श्रेष्ठि जातक श्लोक नं0-8, 11, 12, 13, 15, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 29, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37

21. चुड्डबोधिजातक श्लोक नं0-2, 3, 6, 7, 8, 9, 10, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 20, 25, 26, 29, 30, 31, 32

22. हंसजातक श्लोक नं0 - 1, 23, 25, 27, 44, 51, 54, 55, 63, 100,

23. महाबोधि जातक श्लोक नँ0-6, 7, 8, 9, 10, 11, 13, 14, 15, 16, 57, 58, 59

24. महाकपि जातक श्लोक नँ0-2, 9, 10, 13, 14, 15, 16, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 42

25. शरभजातक श्लोक नँ0-1; 3; 4; 5, 6, 8, 9, 10, 11, 12, 19, 20, 21, 23, 24, 25, 26, 28

26. रुरुजातक श्लोक नँ0-4, 5, 6, 14, 19, 20, 21, 29, 31, 36

27 वाँ महाकपि जातक श्लोक नँ0-1, 2, 3, 6, 10, 11, 13, 16, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 25, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34

28. क्षान्तिजातक श्लोक नँ0-1, 2, 3, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 25, 27, 28, 29, 34, 36, 53, 58, 59, 60, 64, 65, 66, 67, 68,

29. ब्रह्मजातक श्लोक नँ0-5, 6, 8, 10, 29, 49

30. हस्तिजातक श्लोक नँ0-9, 10, 16, 19, 21, 38, 45

31. सुतसोम जातक श्लोक नँ0-1, 2, 3, 6, 7, 12, 18, 20, 21, 22, 23, 24, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 47, 48, 52, 54, 55, 57, 75, 76, 77, 78, 81

32. अयोगृह जातक श्लोक नँ0-1, 2, 4, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 17, 18, 19, 21, 22, 28, 29, 36, 37

33. महिषजातक श्लोक नँ0-1, 2, 3, 13, 14, 15

34. शतपत्रजातक श्लोक नँ0-1, 2, 3, 4, 5, 9, 10

## वंशस्थ छन्द

जातक नॅ0-

3 कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक -7

5• अविषह्यश्रेष्ठि जातक श्लोक-7,28,29,30,31,32,33

6• शश जातक श्लोक नॅ0-1,4,5,19,20,21

7 अगस्त्य जातक श्लोक नॅ0-34,36,37,38

10• यज्ञ जातक श्लोक नॅ0-3,9,11,12,13,14,19,20,21,22,23,24

14• सुपारगजातक श्लोक नॅ0-1

15•. बुद्धबोधि जातक श्लोक नॅ0-18

22• हंस जातक श्लोक नॅ0- 80,81,82,91,92,93,94,95,96,97,98,99

23• महाबोधिजातक श्लोक नॅ0- 13,27,30,42,43,44,52,53,54,55,
60,61,66,67,68,69,70,71,72

24• महाकपि जातक श्लोक नॅ0-1,32

26• रूरू जातक श्लोक नॅ0-11

28• क्षान्ति जातक श्लोक नॅ0-15,16,17,18,19,20,21,22,23,39,40,
41,42,43,44,45,46,47,48

---

1• "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।" (3/6 वृत्तरत्नाकर)
"वदन्ति वंशस्थबिलं जतौ जरौ" (2/4 छन्दोमञ्जरी)

29. ब्रह्मजातक श्लोक नं0-2, 3, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 43, 44, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58

30. हस्तिजातक श्लोक नं0-11, 12, 17, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 35, 36, 37, 39, 40

31. सुतसोमजातक श्लोक नं0-4, 28, 29, 72, 74, 94, 95,

32. अयोगृहजातक श्लोक नं0-3, 35, 41, 45, 46, 48

33. महिष जातक श्लोक नं0-7, 8, 9, 17, 18, 19, 20

34. शतपत्र जातक श्लोक नं0-6, 8, 23

4. वसन्ततिलका छन्द[1]

जातक नं0

1. व्याघ्री जातक, श्लोक नं0-1, 2, 3, 4, 38

2. शिबिजातक श्लोक नं0-14, 30

3. कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक नं0-10, 11, 12, 15, 17, 18

4. श्रेष्ठिजातक श्लोक नं0-18

5. अविषह्यश्रेष्ठि जातक श्लोक नं0-26, 27

7. अगस्त्य जातक श्लोक नं0 7, 15, 39

8. मैत्रीबल जातक श्लोक नं0 48

9. विश्वन्तर जातक, श्लोक नं0 11, 33, 52

10. यज्ञ जातक श्लोक नं0-15

11. शक्र जातक श्लोक नं0-2, 3, 13, 18

12. ब्राह्मणजातक श्लोक नं0-1

14• सुपारङ्ग जातक श्लोक नँ0-2,12

16• वर्तकपोतक जातक श्लोक नँ0-7,9,10

17• कुम्भ जातक श्लोक नँ0-7,10,23,29,30

19• बिसजातक श्लोक नँ0-26,27

20• श्रेष्ठि जातक श्लोक नँ0-14,16

22• हंस जातक श्लोक नँ0-87

23• महाबोधिजातक श्लोक नँ0-17,18,19,20,21,24,41,46

24• महाकपि जातक श्लोक नँ0- 49,62,63,65

25• शरभजातक श्लोक नँ0-29

26• रूरू जातक श्लोक नँ0-7,16,17

27• वाँ महाकपि जातक श्लोक नँ0-7

28• क्षान्ति जातक श्लोक नँ0-35,38

29• ब्रह्मजातक श्लोक नँ0-14,15,16,28,30,39,40,41

30• हस्ति जातक श्लोक नँ0-23,24,34

31• सुतसोम जातक श्लोक नँ0-5,15,17,25,26,46,50,51,56,65,66,
67,80,88,89,90,91,93

32• अयोगृह जातक श्लोक नँ0-23,24,25,27,30,31,32,33,34,38,
39,40,43,47

34• शतपत्र जातक श्लोक नँ0-15

5. इन्द्रवज्रा छन्द

जातक नॅ0

1. व्याघ्री जातक श्लोक नॅ0–3, 21, 24, 26, 32
2. शिबि जातक श्लोक नॅ0–5, 7, 10, 12, 49
3. कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक नॅ0–2
4. श्रेष्ठिजातक श्लोक नॅ0–3, 5, 13
5. अविषह्यश्रेष्ठि जातक श्लोक नॅ0–12, 15, 16, 17
6. शश जातक श्लोक नॅ0–11, 26, 27, 28, 34
7. अगस्त्य जातक श्लोक नॅ0–18, 28
8. मैत्रीबल जातक श्लोक नॅ0–20, 30, 46, 60
9. विश्वन्तर जातक श्लोक नॅ0–13, 38, 40, 50
10. यज्ञ जातक, श्लोक नॅ0–4, 6, 7, 35
11. शक्र जातक श्लोक नॅ0 15
12. ब्राह्मण जातक श्लोक नॅ0–9
13. उन्मादयन्ती जातक श्लोक नॅ0–19, 20, 33, 36
14. सुपारग जातक श्लोक नॅ0–10
17. कुम्भ जातक श्लोक नॅ0–19, 24
18. अपुत्रजातक श्लोक नॅ0–5, 19
19. बिस जातक श्लोक नॅ0–19, 22
20. श्रेष्ठि जातक श्लोक नॅ0–28, 30
21. बुद्धबोधि जातक श्लोक नॅ0–11, 19, 21

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

22• हंस जातक श्लोक नँ0- 4,5,22,55,85,86

23• महाबोधि जातक श्लोक नँ0-5,12

24• महाकपि जातक श्लोक नँ0-17,34

25• शरभ जातक श्लोक नँ0-12,18,27

26• रूरु जातक श्लोक नँ0-15,28

27• महाकपि जातक श्लोक नँ0- 12 14,15,26

28• क्षान्ति जातक श्लोक नँ0-13,14

29• ब्रह्मजातक श्लोक नँ0-7,9,11,13,33,34

30• हस्ति जातक श्लोक नँ0-22,31

31• सुतसोम जातक श्लोक नँ0-8,19,30,31,58,59,61,62,63,64

34• शतपत्र जातक श्लोक नँ0-7

6• उपेन्द्रवज्रा छन्द

जातक नँ0

1• व्याघ्री जातक श्लोक नँ0-34,35,36,37

2• शिबि जातक श्लोक नँ0-35,38,39,40,41,42,43

3• कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक नँ0-9

5• अविषह्य श्रेष्ठि जातक श्लोक नँ0-8,18,19,20,21

6• शश जातक श्लोक नँ0-29,30

8• मैत्रीबल जातक श्लोक नँ0-23,53,54,55,61,62,63,64,65,66

9• विश्वन्तर जातक श्लोक नँ0-20,39,44,54,78,79,81,89,90,97

10• यज्ञ जातक श्लोक नँ0-11,12

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

11• शक्र जातक श्लोक नँ0-16,17

12• ब्राह्मण जातक श्लोक नँ0-11,12

13• उन्मादयन्ति जातक श्लोक नँ0-26

14• सुपराग जातक श्लोक नँ0-14

18• अपुत्रजातक श्लोक नँ0- 6,22

19• बिस जातक श्लोक नँ0-33

24• महाकपि जातक श्लोक -7

26• रूरूजातक श्लोक नँ0-30,32,33,34

28• क्षान्ति जातक श्लोक नँ0-26

29• ब्रह्मजातक श्लोक नँ0-12,46,47,48,52

34• शतपत्रजातक श्लोक नँ0-11

7• वैतालीय छन्द॥अपरवक्त्र॥[1]

जातक नँ0

3• कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक सं0-6

6• शश जातक श्लोक नँ0-17

7• अगस्त्य जातक श्लोक नँ0-4,20,24,25,30,31

8• मैत्रीबल जातक श्लोक नँ0-11

12• ब्राह्मण जातक श्लोक नँ0-4

---

1• "अयुजि ननरला गुरूः समे नजमपरवक्त्रमिदं ततो जरौ"।॥4/7वृत्तरत्नाकर

"षड्विषमेऽष्टौ समे कलाःताश्च समे स्युर्नो ।

न समाऽत्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरूः।।वृत्तरत्नाकर 2/13

17• कुम्भ जातक श्लोक नँ0-25

18• अपुत्र जातक श्लोक नँ0-14, 15, 16, 17, 18

19• बिस जातक श्लोक नँ0-28

27• महाकपि जातक श्लोक नँ0-9

28• क्षान्तिजातक श्लोक नँ0-69

31• सुतसोम जातक श्लोक नँ0-9

8• शालिनी छन्द[1]

जातक नँ0

2• शिबिजातक श्लोक नँ0-28

3• कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक नँ0-23

6• शश जातक श्लोक नँ0-23, 35

9• विश्वन्तर जातक श्लोक नँ0-100

12• ब्राह्मण जातक श्लोक नँ0-8

17• कुम्भजातक श्लोक नँ0-22

23• महाबोधि जातक श्लोक नँ0-73

28• क्षान्ति जातक श्लोक नँ0-56

31 सुतसोम जातक श्लोक नँ0-10

33• महिष जातक श्लोक नँ0 -6

---

1• "शालिन्युक्ता म्तौतगौ गो5ब्धिलोकैः:" ﴾3/34 वृत्तरत्नाकर﴿

9• पुष्पिताग्रा छन्द[1]

जातक नॅ0

4• श्रेष्ठिजातक श्लोक नॅ0-21

10• यज्ञ जातक श्लोक नॅ0-17

13• उन्मादयन्ती जातक श्लोक नॅ0-9

14• सुपारग जातक श्लोक नॅ0-18,20,32

17• कुम्भ जातक श्लोक नॅ0-6

20• श्रेष्ठि जातक श्लोक नॅ0-38

22• हंस जातक श्लोक नॅ0-64

21• बुद्धबोधि जातक श्लोक नॅ0-27,28

27• महाकपि जातक श्लोक नॅ0-35

28• क्षान्ति जातक श्लोक नॅ0-55

29• ब्रह्मजातक श्लोक नॅ0-27,35,36

10• प्रमिताक्षरा छन्द[2]

17• कुम्भ जातक,श्लोक नॅ0 17,20

18• अपुत्रजातक श्लोक नॅ0-20

23• महाबोधि जातक श्लोक नॅ0- 25,26

24• ब्रहमजातक श्लोक नॅ0-38

32• आयोगृह जातक श्लोक नॅ0-26

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1• "अयुजि नयुगरेफतोयकारो युजि च नजौजरगाश्च पुष्पिताग्रा" (4/10वृत्तरत्

2• "प्रमिताक्षरा सजससैरुदिता" (3/6। वृत्तरत्नाकर)

11. ## मत्तमयूरी छन्द[1]

जातक नॅ0

5. अविषह्यश्रेष्ठि जातक श्लोक नॅ0-22, 23, 24

28. ब्रह्मजातक श्लोक नॅ0-4, 32

12. ## प्रहर्षिणी छन्द[2]

9. विश्वन्तरजातक श्लोक नॅ0-53

17. कुम्भ जातक श्लोक नॅ0-16

23. महाबोधि जातक श्लोक नॅ0-28

32. अयोगृह जातक श्लोक नॅ0-16

13. ## द्रुतविलम्बित छन्द[3]

10. यज्ञ जातक श्लोक नॅ0-25, 26, 27, 28, 29, 30

17. कुम्भ जातक श्लोक नॅ0-21

29. ब्रह्मजातक श्लोक नॅ0-45

34. शतपत्रजातक श्लोक नॅ0-20

---

1. "वेदैरन्ध्रैम्तौं यसगा मत्तमयूरम्" §3/72 वृत्तरत्नाकर§
2. "म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम्"§3/70 वृत्तरत्नाकर§
3. "द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ" 3/49 वृत्तरत्नाकर, 2/10 छन्दोमंजरी

## 14. शार्दूलविक्रीडित छन्द[1]

जातक नं०

2. शिबिजातक श्लोक नं०-26

3. कुल्माषपिण्डी जातक श्लोक नं०-19, 20, 21

8. मैत्रीबल जातक श्लोक नं०-14, 49

10. यज्ञ जातक श्लोक नं०-18, 32, 35

14. सुपारग जातक श्लोक नं०-22

17. कुम्भजातक श्लोक नं०-12.13

26. रूरू जातक श्लोक नं०-44

27. ब्रह्मजातक श्लोक नं०-37

31. सुतसोमजातक श्लोक नं०-16

## 15. शिखरिणी छन्द[2]

17. कुम्भ जातक श्लोक नं०-14

26. रूरू जातक श्लोक नं०-42, 43

28. क्षान्ति जातक श्लोक नं०-24

## 16. वियोगिनी छन्द[3]

20. श्रेष्ठि जातक श्लोक नं०-2, 3, 4, 5, 6, 7

23. महाबोधि जातक श्लोक नं०- 32, 33, 47, 48

26. रूरू जातक श्लोक नं०-2, 3

17• औपच्छन्दसिक छन्द[1]

जातक नं०

22• हंसजातक श्लोक नं० 66,67,68,69,70

23• महाबोधि जातक श्लोक नं०-4

27• महाकपि जातक श्लोक नं०-8

18• आर्या छन्द[2]

6• शश जातक, श्लोक नं०-16

24• महाकपिजातक श्लोक नं०-3,4

29• ब्रह्मजातक श्लोक नं०-1

19• उष्णिग्जातिछन्द[3]

23• महाबोधि जातक श्लोक नं०- 34,35,36,37,38,39

20• पृथ्वी छन्द[4]

22• हंसजातक श्लोक नं०-65
23 महिष जातक श्लोक नं 4

21• रुचिरा छन्द[5] (प्रभावती)

23• महाबोधि जातक श्लोक नं०-29

34• शतपत्रजातक श्लोक नं०-21

---

1• "पर्यन्ते र्यौ तथैव शेषं त्वौपच्छन्दसिकम सुधीभिरुक्तम्" (2/13वृत्तर

2• यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।(श्रुतबोध)

3• "उद्यता पौ" (छन्दोविचिति 4/17)

# अष्टम अध्याय

## जातकमाला में प्रयुक्त सूक्तियों का विवेचन

## जातकमाला में प्रयुक्त सूक्तियाँ

रमणीयता अमूर्त्त पदार्थ है किन्तु उसके प्रत्यक्ष के माध्यम मूर्त्त पदार्थ होते हैं- जड़ प्रकृति और चेतन जीव दोनोंही। अनिर्वचनीय शिल्पी चतुरानन की सृष्टि में अनगिनत रमणीय पदार्थ हैं। सहृदय को दृष्टि में सृष्टि का कण-कण अपूर्व रमणीयता से सुशोभित होकर प्रोद्भासित होता है। मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है कि वह सर्वत्र रमणीयता का अवलोकन-विलोकन कर सके।

रमणीयता को परिभाषित करते हुए पण्डितराज जगन्नाथ ने "रस-गङ्गाधर" के प्रारम्भ में ही कहा है-

रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता, लोकोत्तरत्वञ्चाह्लादगतश्चमत्कारापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेषः।

सर्वसामान्य की तो नहीं किन्तु सहृदय द्वारा असामान्य आह्लाद भावना की अनुभूति ही रमणीयता का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। माघ ने रमणीयता का रूप बताते हुए कहा है-

"दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान ।
तदेव रूपं रमणीयतायाः क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति " ।।

अर्थात् क्षण-क्षण में परिवर्तित नवीन-नवीन रूप की धारण क्षमता ही रमणीयता का रूप है। सुमित्रानन्दन पंत ने "पल-पल परिवर्तितप्रकृतिवेश" कहकर इसकी अवतारणा की है।

रमणीयता में रम जाना पशु व मनुष्य दोनों के लिए सहज है किन्तु मनुष्य की विशेषता इसमें है कि वह किसी रमणीय दृश्य व प्रसंग को अपनी ललित

पदावली में गुम्फित कर उसे स्थायित्व प्रदान करने में समर्थ होता है। अतः देश-कालादि परिधि से मुक्त किसी भी सहृदय की सरस रचना जन-जन के लिए शाश्वत् सुखदायिनी रही है। सत्य, शिव और सुन्दर के उस सम्मिश्रण में अपूर्व आस्वाद का अनुभव होता है- जहाँ उनका प्रवाह प्रबन्ध-काव्य पयस्विनी का रूप ग्रहण करता है। वहीं उसका वह मधुबिन्दु जो प्रवाह-मुक्त होकर भी हीरक कण की तरह देदीप्यमान और मूल्यवान् बन जाता है- सुभाषित या सूक्ति की श्रेणी में स्थान पाता है। यद्यपि सुभाषित या सूक्ति मुक्त रचना है जिसे क्रमिक प्रसङ्ग की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु उसमें प्रस्फुटित शाश्वत् सत्य और सर्वसाधारण की सुखदुःखमय अनुभूतियाँ उसे अजर और अमर बना देती हैं।

संक्षिप्त रूप में सूक्ति मुक्त पीड़ा, आनन्द और शाश्वत् सत्य का अजस्र-स्रावी-स्रोत है। इसके लिए छन्दविशेष का भी कोई प्रतिबन्ध नहीं है और श्रृंगार, हास्य, करुणा, वीर आदि सभी रसों की अवतारणा भी इसमें हुई है। किन्तु श्रृंगार रस के लिए आर्या छन्द बहुत ही मनोहारी और प्रभावोत्पादक रहा है। आर्या की स्तुति में निम्नांकित बहुत श्लाघ्य उक्ति है-

सरसा सालंकारा सुपदन्यासा सुवर्णमयमूर्तिः ।
आर्या तथैव भार्या न लभ्यते पुण्यहीनेन ।।

रसमयी अलंकारवती, सुन्दरपदन्यास वाली तथा सुन्दर वर्णवाली भार्या यथा पुण्यहीन को प्राप्त नहीं होती उसी प्रकार उक्त गुणों से युक्त आर्या छन्द में रचना कर सकना भी सबके वश की बात नहीं होती। प्रकृत भाषा में गाथा नामान्तर से आर्याछन्द में सातवाहन नरपाल हाल ने एक करोड़ आर्याओं का संकलनकर उनमें

से सात सौ का चयन किया जो "गाथासप्तशती" नाम से प्रसिद्ध है। इससे प्रेरित होकर गोवर्धनाचार्य ने संस्कृत में आर्या छन्द में सुन्दर ग्रन्थ लिखा जो "आर्यासप्तशती" नाम से प्रसिद्ध है। इससे आर्या की लोकप्रियता और महत्ता विदित है।

अनुश्रुत रूप में सुभाषित की सामान्य परिभाषा की गई है-

• पुराणेष्वितिहासेषु तथा रामायणादिषु ।
वचनं सारभूतं यद् तत्सुभाषितमुच्यते ।।

सुभाषित मनुष्य की जीवन-ज्योति को ज्वलन्त रखने के लिए शाश्वत् जीवन-स्रोत के समान है। संसार के प्रपञ्चमय महारण्य में भ्रान्त मानव के मार्ग-दर्शक हैं। सहृदय मित्रों की गोष्ठी में रस और उल्लास की अजस्र धारा बहाने वाले हैं। खिन्नता प्रदान करने वाली स्थिति में बड़े-बड़े विद्वानों, सन्तों और महात्माओं के साथ संलाप और संगति जैसा सरस वातावरण उत्पन्न कर मन आह्लादित करने वाले हैं। ये दरिद्र को सन्तोष और श्रमिक को शान्ति देने वाले हैं। इनका अमित और अतुल सौन्दर्य्य आँखों से नहीं अपितु हृदय से देखा जाता है और इनका मधुमय संगीत श्रवणाञ्जलिपुटों को परितृप्त कर देता है। बहुधा ऐतिहासिक विशृङ्खलाओं को क्रमबद्ध कर देने में भी सुभाषित सहायक होते हैं। कथावाचक व्यास और उद्भट वक्ता भी सुभाषितों का प्रयोग कर अपने उपदेश और वक्तव्य को अधिक प्रभावशाली बनाने में समर्थ होते हैं।

हमारा कवि आर्यशूर भी सूक्ति या सुभाषितप्रिय कवि है-ऐसा कई जातकों से सुस्पष्ट होता है। सुतसोम जातक में सुतसोम नामक नराधिप नित्य सुभाषित सुनता दिखाया गया है। उनके सुभाषित सुनते समय ही नरभक्षी सौदास पहुँच गया

और सहस्रनरमेधयज्ञ में बलिदेने के लिए सुतसोम को पकड़ लाया। किन्तु सुतसोम प्राणों के बजाय इसलिए चिन्तित था कि उसने सुभाषित सुनने के बदले उस सुनाने वाले ब्राह्मण को पारितोषिक नहीं दिया था। अतः सुतसोम के आँसुओं को देखकर सौदास ने कारण पूँछा तो उसने बताया कि मैं अपने बिछुड़े माँ-बाप, भाई-बन्धु आदि के लिए नहीं अपितु उस ब्राह्मण के लिए दुःखी हूँ जो कुछ पाने की आशा से सूक्ति सुनाने आया था और निराश हो रहा होगा[1]। अतः सुतसोम ने सौदास से कहा कि मुझ पर विश्वास करो और तब तक के लिए मुझे छोड़ दो जब तक कि मैं उसका सुभाषित रूप मधु पी न लूँ और नैराश्य की अग्नि में झुलसते उसके दिल को सत्कार रूपी जल से सींच न दूँ।[2]

इस प्रकार नानाविध विश्वास दिलाने पर अन्ततः सौदास असको तब तक के लिए मुक्त कर देता है। वहाँ पहुँचकर सुतसोम ने उस ब्राह्मण से चार सूक्तियाँ सुनी और प्रति सूक्ति एक सहस्र मूल्य तथा अभिलषित धन दिया[3]। इस पर सुतसोम

---

1. न प्राणान् पितरौ न चैव तनयान्बन्धून्न दारान्न च
   नैश्वर्यसुखानि संस्मृतवतो बाष्पोद्गमोऽयं मम ।
   आशावांस्तु सुभाषितैरभिगतः श्रुत्वा हृतं मां द्विजो
   नैराश्येन स दह्यते ध्रुवमिति स्मृत्वास्मि साश्रेक्षणः।। (सुतसोम जा0।6)

2. तस्माद्विसर्जयितुमर्हसि तस्य याव
   दाशाविघातमथितं हृदयं द्विजस्य ।
   सम्माननाम्बुपरिषेकनपीकरोमि
   तस्मात्सुभाषितमधूनि च सम्भ्रमिमि।। (सुतसोम जातक ।7)

के पिता ने अतिव्यय के प्रति विरोध प्रकट किया। पिता के विरोध करने पर सुतसोम ने सूक्ति की महत्ता एवं मूल्य बताते हुए कहा कि सुभाषित का मूल्य तो राज्य देकर भी नहीं चुकाया जा सकता[1]।आर्यशूर सुतसोम के प्रत्युत्तर के व्याज से सुभाषित का महात्म्य प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि सुभाषित अपने शरीर का मांस देकर भी खरीद ली जानी चाहिए[2]।इतना ही नहीं, सुतसोम पिता आदि के द्वारा साक्षात् मृत्युस्वरूप सौदास के पास लौट जाने के लिए रोकने पर सुतसोम कहता है कि सौदास की कृपा के कारण ही मैं यहाँ आकर सुभाषित सुन सका हूँ अतः मैं उसका कृतज्ञ हूँ और यद्यपि वह मेरी बलि चढ़ायेगा-फिर भी मैं उसके पास जाऊँगा[3]।और अन्ततः कवि सौदास जैसे नरभक्षी,पापी को भी सुभाषित का प्रेमी बनाकर तथा सुभाषित के बदले सुतसोम को जीवनदान ही नहीं प्रत्युत अन्यान्य

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. अर्घप्रमाणं यदि नाम कर्तुंशक्यं भवेद्देव सुभाषितानाम् ।
   व्यक्तं न ते वाच्यपथं व्रजेयं तन्निष्क्रयं राज्यमपि प्रयच्छन्।।
   
   §सुतसोम जातक, 30 श्लोक§

2. श्रुत्वैव यन्नाम मनः प्रसादम्
   
   श्रेयोनुरागः स्थिरताञ्च याति।
   
   प्रज्ञा विवृद्ध्या वितमस्कतां च
   
   क्रय्यं ननु स्यादपि तत्स्वमांसैः।§31,सुतसोम,जातक§

3. दुष्करं पुरुषादोऽसावुदारं चाकरोन्मयि ।
   
   मद्वचः प्रत्ययाद्यो मां व्यसृजद्वशमागतम् ।।
   
   लब्धं तत्कारणाच्चेदं मया तात !सुभाषितम्।
   
   उपकारी विशेषेण सोऽनुकम्प्यो मया यतः ।।§सुतसोम जातक,41,42§

वर दिलाकर सुभाषित का प्रभाव एवं महात्म्य प्रदर्शित करते हैं। अगस्त्य जातक में सुभाषित को अमूल्य कहा गया है।[1]

सूक्ति प्रेमी कवि आर्यशूर सूक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं-

सुभाषित कानों से सुना गया वह दीपक है जो अज्ञान रूप अन्धकार को मिटाता है। वह ऐसा धन है जिसे चोर चुरा नहीं पाते। मोह-रूपी शत्रु को मिटाने वाला हथियार है और नीति उपदेशक मन्त्री है[1]। विपत्ति में साथ देने वाला अडिग मित्र है। शोक रूपी रोग की पीड़ाहीन चिकित्सा है। काम क्रोधादि दोषों को पराजित करने वाली महा शक्ति है। कीर्ति और श्री की उत्तम निधि है[2]।

सुभाषित सत्संग का एक उत्तम उपहार है। विद्वद्गोष्ठी में विद्वानों के आनन्द का एक साधन है। वाद-विवाद में एक द्युतिमान सूर्य है। ईर्ष्यालु व्यक्तियों के यश और गर्व को चूर्ण करता है[3]। सुभाषित सुनकर सामान्य स्तर के लोग भी प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। अनायास उनके मुख और आँखों से प्रसन्नता झलकने लगती है

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. "न सुभाषितरत्नानामर्घः क्वचन विद्यते"। (अगस्त्य जातक, 27)

1. दीपः श्रुतं मोहतमः प्रमाथी चौराद्यहार्यं परमं धनञ्च ।
सम्मोहशत्रुव्यथनाय शस्त्रं नयोपदेष्टा परमश्च मन्त्री ।।
(सुतसोम जातक श्लोक 32)

2. आपद्गतस्याप्यविकारि मित्रमपीडनी शोकरुजश्चिकित्सा ।
बलं महद्दोषबलावमर्दि परं निधानं यशसः श्रियश्च ।।
(सुतसोम जातक श्लोक-33)

3. सत्संगमे प्राभृतशीभरस्य सभासु विद्वज्जनरञ्जनस्य ।
परप्रवादद्युतिभास्करस्य स्पर्धावतां कीर्तिमदापहस्य।।
(सुतसोम जातक श्लोक-34)

हाथ हिला-हिलाकर वे सुभाषित की उत्कृष्टता सूचित करते हैं[1]। यह कार्य-कारण के स्पष्ट उदाहरण से युक्त, अनेक शास्त्रों के उद्धरणों से रमणीय तथा मधुर संस्कार एवं अपनी मनोहरता के कारण नई माला की तरह सुन्दर होता है[2]।

सुभाषित अत्यन्त विनत होता है। दीप की दीप्ति की तरह प्रकाशपूर्ण होता है। यशदायक होता है। ~~अर्थच्छवि से भरा सुवचन सुभाषित में होता है।~~ अर्थच्छवि से भरा सुवचन सुभाषित में उत्कर्ष भी उत्पन्न करता है[3]। लोग इसे सुनकर धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में सफलता प्राप्त करते हैं। जो इसे अपने आचरण में उतारने की चेष्टा करते हैं वे अनायास भवसागर पार कर जाते हैं[4]।

कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों की अभिव्यक्ति को हम उत्कृष्ट सूक्ति-प्रयोग की कसौटी मान सकते हैं। आर्यशूर का वैदुष्य व्यापक है। उन्होंने जीवन की ऊँच-नीच सभी अवस्थाओं का वैयक्तिक अनुभव प्राप्त किया था। अतएव उनके सुभाषितों में दर्शन, नीति, राजनीति, कामशास्त्र, वानस्पतिक ज्ञान, पाशविक ज्ञान, सामुद्रिक शास्त्र, काव्यशास्त्रादि का पर्याप्त पाण्डित्य मिलता है।

---

1. प्रसन्ननेत्राननवर्णरागैरसंस्कृतैरप्यतिहर्षलब्धैः ।
   संराधनव्यग्रकराग्रदेशैर्विख्याप्यमानातिशयक्रमस्य ।। "सुतसोम जातक -35"
2. विस्पष्टहेत्वर्थनिदर्शनस्य विचित्रशास्त्रागमपेशलस्य ।
   माधुर्यसंस्कारमनोहरत्वादक्लिष्टमाल्यप्रकरोपमस्य।। "सुतसोम जातक-36"
3. विनीतदीप्तप्रतिभोज्ज्वलस्य प्रसह्यकीर्तिप्रतिबोधनस्य ।
   वाक्सौष्ठवस्यापि विशेषहेतुर्योगात्प्रसन्नार्थगतिःश्रुतश्रीः।। "सुतसो0जा037"
4. श्रुत्वा च वैरोधिकदोषमुक्तं त्रिवर्गमार्गं समुपाश्रयन्ते ।
   श्रुतानुसारप्रतिपत्तिसारास्तरन्त्यकृच्छ्रेण च जन्मदुर्गम् ।।

अपने अभिव्यञ्जनीय भावों के प्रकटीकरण के लिए कवि उतने ही शब्दों को चुनता है जितने उसके लिए आवश्यक होते हैं। आर्यशूर का सूक्तिगौरव उनकी गम्भीर अभिव्यञ्जना शैली का फल है और इसी शैली में शब्द और अर्थ दोनों के सुडौलपन की स्निग्धता है। आर्यशूर गम्भीर व्यक्तित्व से मण्डित कवि हैं। उनकी कविता में भावों की उदात्तता है। कालिदासादि कवियों की तुलना में मानवहृदय के भीतर प्रवेश कर उनके अन्तराल में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा प्रकटीकरण की महनीय शक्ति की न्यूनता आर्यशूर के काव्य में भले ही हो किन्तु लोक-सम्बद्ध तथ्यों के विवरण देने में वे सर्वथा कृतकार्य हैं।जातकमाला में प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण सूक्तियाँ अधोवत् हैं-

• मित्रता कैसे स्थायित्व प्राप्त करती है आर्यशूर इस तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं। वह कहते हैं "उपेक्षा से, या अति अपेक्षा से और बारम्बार याचना करने से मित्रता नष्ट हो जाती है"-

"असेवना चात्युपसेवना च याच्ञाभियोगाश्च दहन्ति मैत्रीम्"।[1]

एक अत्यधिक स्वाभाविक एवं सम्यक् अनुभूत सूक्ति कहते हुए आर्यशूर कहते हैं कि "दुःख के अभ्यस्त होने के कारण छोटे लोगों को सहसा दुःख आने पर उतनी पीड़ा नहीं होती जितनी पीड़ा सुख के अभ्यस्त लोगों को अचानक आये दुःख से होती है-

किणाङ्किकतानीव मनांसि दुःखै-
र्न हीनवर्गस्य तथा व्यथन्ते ।
अदृष्टदुःखान्यतिसौकुमार्या-
द्यथोत्तमानां व्यसनागमेषु ॥[2]

---

1. महाबोधि जातक श्लोक 16

इसी प्रकार वस्तुवादी एवं आकर्षक भाव व्यक्त करते हुए कवि ने कहा कि "कृतज्ञ होना तो भले आदमी का स्वभाव ही है इसमें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु संसार में फैले अनेक दोषों को देखते हुए आज कृतज्ञता भी गुणों के अन्तर्गत परिगणित होती है"-

न विस्मयो ~~वा~~ सुजने कृतज्ञता
निसर्गसिद्धैव हि तस्य सा स्थिति:।
जगत्तु दृष्ट्वा समुदीर्णविक्रियं
कृतज्ञताप्यद्य गुणेषु गण्यते ॥[1]

आर्यशूर दार्शनिक हैं अत: दार्शनिक पृष्ठभूमि में सांसारिक निस्सारता एवं लौकिक अज्ञानता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए आर्यशूर यथार्थवादी दृष्टिकोण से अपनी बात कहते हैं कि "ऐसा कोई भी मिलन नहीं है जिसका अन्त वियोग नहीं होता हो तथा ऐसी कोई सम्पति भी नहीं है जिसको कोई विपत्ति न घेरती हो। इस प्रकार संसार की इस चन्चल स्थिति से परिचित होते हुए भी पूरा लोक वास्तविकता से आँख मूँदकर मौज-मस्ती लूटता है"-

क: सम्प्रयोगो न वियोगनिष्ठ:
का सम्पदो या न विपत्परैति ।
जगत्प्रवृत्तावितिं चन्चलाया-
मप्रत्यवेक्ष्यैव जनस्य हर्ष: ॥[2]

---

1. ~~स्~~जातक श्लोक-11
2. अयोगृह जातक, 14

इसी प्रकार बौद्ध दार्शनिक पृष्ठभूमि में कवि को पूर्ण विश्वास है कि किसी की पूजा अर्चना सुगन्धित पदार्थों और मालाओं से कदापि नहीं होती अपितु उसका अभिप्राय पूरा करने पर ही उसके प्रति पूजा है। वह कहते हैं-

"अभिप्रायसम्पादनात्पूजा कृता भवति न गन्धमालाद्यभिहारेण।"[1]

हंस जातक में एक सहज भाव व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि "लोग प्रायः सर्वजन-उपभोग्य वस्तुओं को पाकर सर्वप्रथम अपने आत्मीय जनों को ही याद करते हैं। यह कथन आर्यशूर के नैसर्गिक अनुभव का प्रतीक है-

प्रायेण खलु लोकस्य प्राप्य साधारणं सुखम् ।
स्मृतिः स्नेहानुसारेण पूर्वमेति सुहृज्जनम् ।।[2]

इसी प्रकार दैनन्दिन व्यवहार को अभिपुष्ट करते हुए जातकमालाकार कहते हैं कि "सुख सुलभता के कारण प्रायः अरुचिकर एवं उपेक्षित होता है किन्तु जो सुलभ नहीं है, परोक्ष है वह सुख श्रवणसुखद एवं मनोहर होता है"। इस सूक्ति की वास्तविकता में सहृदय पाठक स्वयं प्रमाण हैं-

प्रायेणप्राप्तिविरसं सुखं दैव न गण्यते ।
परोक्षरत्वात्तु हरति श्रुतिरम्यं सुखं मनः।।[3]

एक निराशावादी दृष्टिकोण से जागतिक व्यवहार को अभिव्यक्त करते हुए आर्यशूर कहते हैं कि "धर्माधर्म का विचार किये बिना सर्वभक्षी सुख से रहता है किन्तु धर्मोचित आजीविका की खोज में रहने वाला और चुन-चुनकर खाने वाला, दुखी रहता है। प्रस्तुत सूक्ति की अभिरामता उसकी वास्तविकता में है-

---

1. हस्ति जातक के अन्त में गद्यान्त भाग
2. हंस जातक, 18
3. हंस जातक, 7

धर्मो धर्मनिराशङ्क: सर्वाशी सुखमेधते ।

धर्म्या तु वृत्तिमन्विच्छन्विचिताशीह दु:खित:।।[1]

बौद्ध दार्शनिक और उपदेष्टा व्यक्तित्व का बहुत स्पष्ट प्रभाव अधोलिखित सूक्ति में देखा जा सकता है । कवि कहता है कि "संयोग का अन्त वियोग है, उन्नति का अन्त अवनति है। आयु बिजली के समान चञ्चल है, क्षणभंगुर है।अत: प्रत्येक कार्य सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए-

यत्सम्प्रयोगा विरहावसाना:

समुच्छ्रया: पातिवरूपनिष्ठा: ।

विद्युल्लताभङ्गुरलोलमायु-

स्तेनैव कार्यो दृढमप्रमाद: ।।[2]

आर्यशूर ने अत्यधिक लौकिक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त किया था। वह कहते हैं कि "प्राय: देखा जाता है कि जिन वस्तुओं के प्रति मूर्खों के मन में क्रोध होता है उनको कीर्तिगाथा सुनकर वे जल उठते हैं"-

प्रायेण खलु मन्दानाममर्षज्वलितं मन: ।

यस्मिन्वस्तुनि तत्कीर्त्या तद्विशेषेण दह्यते।।[3]

पुनर्जन्म और कर्मफल पर प्रगाढ़ विश्वास रखने वाले कवि ने न्यायसंगत तर्कपूर्वक अपनी बात कहते है कि "सतत् अभ्यास से मनुष्य के भले-बुरे कर्म उसकी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. वर्तकापोतक जातक, 1

2. शश जातक ,7

3. मैत्रीबल जातक, 15

आत्मा के सहज स्वभाव बन जाते हैं। जन्मान्तर में वे कर्म स्वप्नानुभूति की तरह अनायास होते रहते हैं"-

अभ्यासयोगाद्धि शुभाशुभानि
कर्माणि सात्म्येन भवन्ति पुंसाम् ।
• तथा विधान्येव यदप्रयत्ना -
ज्जन्मान्तरे स्वप्न इवाचरन्ति ।।[1]

बौद्ध कवि आर्यशूर के लिए गृहस्थ जीवन दु:ख की जड़ है। उनके अनुसार "धनवान् हो या निर्धन, गृहस्थ जीवन सबके लिए समान रूप से दु:खदायी है।एक को बचाने का कष्ट है तो दूसरे को अर्जित करने का कष्ट है। जिस गार्हस्थ्य में धनी-गरीब सबको समान रूप से कष्ट ही है उसमें भी सुख का आभास मिलना जन्मार्जित पाप का हो तो प्रतिफल है"-

गार्हस्थ्यं महदस्वास्थ्यं सधनस्याधनस्य वा ।
एकस्य रक्षणायासादितरस्यार्जनश्रमात् ।।[2]
यत्र नाम सुखन्नैव सधनस्याधनस्य वा ।
तत्राभिरतिसम्मोह: पापस्यैव फलोदय: ।।[3]

सांसारिक सौदेबाजी के प्रति आर्यशूर की जागरूकता इस सूक्ति में देखा जा सकता है जिसमें वह कहते हैं कि "गुणों का वर्णन और अवगुणों को छिपाना-

---

1• मत्स्य जातक,।

2• अपुत्र जातक, ।।

3• अपुत्र जातक,।2

यही संसार में विक्रय-क्रिया की प्रसिद्ध प्रक्रिया है"-

गुणसंवर्णनन्नाम दोषाणाञ्च निगूहनम् ।

प्रसिद्ध इति लोकस्य पण्यानां विक्रयक्रम:।।[1]

"व्यक्ति अपने गुण-दोषों के कारण ही आत्मीय या अनात्मीय के योग्य सम्मान या अपमान का पात्र होता है"। लगभग इसी प्रकार के भाव अर्थगौरव-गुरु भारवि ने चतुर्थ सर्ग में अभिव्यक्त किये हैं-

"गुणा: प्रियत्वेऽधिकृता न संस्तव:"।

गुण ही प्रियता के कारण होते हैं केवल परिचय नहीं। अर्थात् वस्तु का चिरकाल से परिचित होना उसे प्रिय नहीं बनाता वस्तुनिष्ठ गुण ही उस वस्तु को प्रिय बनाते हैं। अवधेय है कि इसी तरह के विचार पूर्ववर्ती कवि सम्राट् कालिदास ने "कुमारसंभव" में अभिव्यक्त किये हैं-

"गुणा: पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वय:"।

हमारा कवि आर्यशूर कहता है-

न हि स्वजन इत्येव स्वजनो बहुमन्यते ।

जनो वा जन इत्येव स्वजनाद् दृश्यतेऽन्यथा।।

गुणदोषाभिमर्षात्तु बहुमानावमानयो: ।

प्रजत्यास्पदतां लोक: स्वजनस्य जनस्य वा।।[2]

इस प्रकार एक ही बात विभिन्न समयान्तराल में भिन्न-भिन्न तूलिका से निस्सृत होती रही। वस्तुत: यही सूक्ति की सार्थकता है जो देशकाल की सीमा से अस्पृष्ट रहे।

---

1. कुम्भ जातक 9

2. अपुत्र जातक 2

पारमिताओं के अभ्यासी कवि की दृष्टि में सर्वदा दान देना चाहिए। इस प्रकार आर्यशूर ने अनेक जातकों में धन की निस्सारता और दान का माहत्म्य प्रकारान्तर से वर्णित किया है।यथा एक स्थान पर वे कहते हैं कि "धन तो बिजली के समान चन्चल है, अनेक विपत्तियों का घर है और अति तुच्छ है किन्तु दान तो अनेक गुणों का कारण है- यह जानकर भी कौन ऐसा होगा जो कन्जूस बनना चाहेगा?

विद्युल्लताचृत्तचले धने च साधारणे नैकविघातहेतौ ।

दाने निदाने च सुखोदयानां मात्सर्यमार्यः क इवाश्रयेत्।।[1]

इसी प्रकार दान की महिमा में कहते हैं कि "दान सदा साथ रहने वाला बहुत बड़ा भण्डार है। चोर,राजा,आग और पानी को पहुँच के बाहर है। दान मानसिक लोभ,जलन और अपराधरूपी धूलि को धोने वाला है। संसार-यात्रा की ~~थकावट दूर करके लक्ष्य तक पहुँचाने की~~ थकावट दूर करके लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए सुखद सवारी है। अनेक प्रकारे के सुख पहुँचाने के कारण दान आनन्ददायक नजदीकी मित्र है-

दानं नाम महानिधानमनुगं चौराद्यसाधारणम्

दानं मत्सरलोभदोषरजसः प्रक्षालनं चेतसः ।

संसाराध्वपरिश्रमापनयनं दानं सुखं वाहनम्

दानं नैकसुखोपधानसुमुखं सन्मित्रमात्यन्तिकम् ।।[2]

---

1. अविषह्यश्रेष्ठि जातक, 15

2. कुल्माषपिण्डी जातक,21

दान ही धन का सार है । अन्यथा सांसारिक सम्पदा तुच्छ और असार है। उसकी सारता मात्र यही है कि वह लोकहित में दान किया जाता है। कवि का यह भी विश्वास है कि जो नहीं दिया जाता वह नष्ट हो जाता है। यह भाव इस रुचिर सूक्ति में कहा गया है-

धनस्य निस्सारलघोः स सारो
यद्दीयते लोकहितोन्मुखेन ।
निधानतां याति हि दीयमान-
मदीयमानं निधनैकनिष्ठम् ॥[1]

आर्यशूर की दृष्टि में "जो व्यक्ति पहले "दूँगा" -यह कहकर अपनी कृपणता के कारण बाद में अपने विचार बदल डालता है उससे बड़ा पापी कोई नहीं है"-

दास्यामिति प्रतिज्ञाय योन्यथा कुरुते मनः ।
कार्पण्यानिश्चितमतेः कः स्यात्पापतरस्ततः ॥[2]

लगभग यही बात कवि निम्नलिखित सूक्ति में कहते हैं-

अदाने कुरुते बुद्धिं दास्यामीत्यभिधाय यः ।
स लोभपाशं प्रभ्रष्टमात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥[3]

दान-प्रिय व्यक्ति का लक्षण निम्नलिखित सूक्ति में कवि ने बहुत ही यथार्थ रूप से कहा है कि "दानप्रेमी व्यक्ति को घर में रखी विपुल सम्पत्ति से

---

1• शिबि जातक, 50

2• शिबि जातक, 23

3• शिबि जातक, 21

उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी प्रसन्नता उसे याचकों को दे देने में होती है-

न हि तां कुरुते प्रीतिं विभूतिर्भवनाश्रिता ।

सङ्क्रम्यमाणार्थिजने सैव दानप्रियस्य याम् ॥[1]

साधुओं और पापियों में अन्तर स्पष्ट करते हुए कवि ने एक रुचिर सूक्ति कही कि "उन्मार्ग पर चलना पापियों का स्वभाव है और अभ्यासवशात् उसे उपकार समझकर क्षमा करना साधु-स्वभाव है"-

स्वभाव एव पापानां विनयोन्मार्गसंश्रयः ।

अभ्यासान्तत्र च सतामुपकार इव क्षमा ॥[2]

इसी प्रकार निम्नलिखित सूक्ति भी द्रष्टव्य है-

प्रतिकर्तुमशक्तस्य क्षमा का हि बलीयसि ।

विनयाचारधीरेषु क्षन्तव्यं किन्च साधुषु ॥[3]

अर्थात् जो व्यक्ति प्रतिकार करने में असमर्थ है वह बलवान् व्यक्ति को क्या क्षमा करेगा? और आचार विनय सम्पन्न साधुओं को क्षमा ही क्या करना है?

जातकमालाकार ने प्रजा पर राजा की प्रतिच्छाया स्वीकार करते हुए एक सुन्दर बात कही कि "यदि राजा कुमार्गगामी होगा तो इसका परिणाम प्रजा को भोगना होगा। यदि कोई प्रजा कुमार्ग पर चले तो उतनी हानि नहीं होगी किन्तु यदि राजा कुमार्ग पर चलता है तो इसका प्रभाव समस्त जनता पर पड़ता है। इसमें समूल विनाश की आशङ्का होती है-

---

1. शिबि जातक, 2।

2. विश्वन्तर जातक, 6

3. महिष जातक, 5

फलन्ति कामं वसुधाधिपानां

दुर्नीतिदोषास्तदुपाश्रितेषु ।

सह्यस्त एषां तु तथापि दृष्टा

मूलोपरोधान्न तु पार्थिवानाम् ।।[1]

इसी प्रकार अन्यत्र कहते हैं कि "उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के मनुष्यों के काम को दिन-प्रतिदिन परीक्षण करने से राजा की बुद्धि दूसरों की बुद्धि की अपेक्षा ऊपर रहती है"-

उत्तमाधममध्यानां कार्याणां नित्यदर्शनात् ।

उपर्युपरि बुद्धीनां चरन्तीश्वरबुद्धय: ।।[2]

आर्यशूर दुष्परिणाम होने के पहले ही दोषसमार्जन के पक्षपाती हैं। वह कहते हैं कि "रोग हो ही नहीं इसके लिए रोग होने से पहले ही सावधानी बरतनी चाहिए। उपचार-दोष से जब रोग असाध्य हो जाय तब उससे मुक्ति पाने की चेष्टा बेकार है"। इसी बात को अधोलिखित सूक्ति में कहा है-

दोषोदयात्पूर्वमनन्तरं वा

युक्तन्तु तच्छान्तिपथेन गन्तुम् ।

गते प्रयासं ह्युपचारदोषै-

र्व्याधौ चिकित्साप्रणयोविघात: ।।[3]

---

1. विश्वन्तर जातक, 19

2. यज्ञ जातक, 31

3. चौथा श्रेष्ठि जातक, 11

दारिद्र्य की दारूणता के विषय में कवि की उक्तियों को पढ़कर तो ऐसा लगता है मानो वह स्वयं इस अवस्था से गुजरे हों। वह कहते हैं कि "ऐसी गरीबी को धिक्कार है जिसके कारण स्वजनों के प्रति उदासीन, उत्सव में आनन्दरहित, दान में अशक्त और दूसरों की अभिलाषा पूरी करने में असफल रहते हैं"-

स्वजनेऽपि निराक्रन्दमुत्सवेऽपि हतानन्दम् ।
धिक् प्रदानकथामन्दं दारिद्र्यमफलच्छन्दम् ।।[1]
परिभवभवनं श्रमास्पदं सुखपरिवर्जितमत्यमूर्जितम् ।
व्यसनमिव सदैव शोचनं धनविक्लत्वमतीव दारुणम्।।[2]

अर्थात् "दरिद्रता दारूण है। वह अपमान का घर है, थकावट का स्थान, सुखविहीन और शक्तिहीन है। विपत्ति की तरह दु:खद है"।

इस प्रकार आर्यशूर की सूक्तियों को पूर्णरूपेण वर्णित करना अत्यधिक विस्तृति के कारण अनुपादेय होगा। कुछ सूक्तियाँ और देखी जा सकती हैं। जैसे कवि ने कहा कि "दयालु व्यक्ति अपने भारी दु:ख में भी धीरज नहीं खोते किन्तु दूसरों के सामान्य दु:ख से भी व्याकुल हो जाते हैं"-

महत्स्वपि स्वदु:खेषु व्यक्तधैर्या: कृपात्मका: ।
मृदुनाप्यन्यदु:खेन कम्पन्ते यत्तदद्भुतम् ।।[3]

---

1. ब्राह्मण जातक, 3
2. ब्राह्मण जातक, 5
3. व्याघ्री जातक, 17

गृहस्थी को नानाविध बन्धनों एवं दुष्परिणामों का आगार मानने वाले तथा वैराग्य या प्रव्रज्या के प्रबल पोषक कवि की दृष्टि में शरीर से प्रेम करना शत्रु को बढ़ाना है-

"आत्मस्नेहमयं शत्रुं को वर्धयितुमर्हति"।[1]

• एक बहुत ही रुचिर सूक्ति कवि ने निम्नलिखित शब्दों में उपन्यस्त की है-

पुण्यैर्विहीनाननुयात्यलक्ष्मीर्विस्पन्दमानानपि नीतिमार्गे ।
पुण्याधिकैः सा ह्यवभर्त्स्यमाना पर्येत्यवमर्षादिव तद्विपक्षान्।।[2]

अर्थात् "पुण्यशील लोगों के पुण्यों के आधिक्य से तिरस्कृत एवं क्रुद्ध दरिद्रता, नीतिपथ पर डगमगाते हुए पापियों को ही घेरती है। इसी प्रकार यह सूक्ति भी कम आकर्षक नहीं कही जा सकती-

अविस्मयः श्रुतवतां समृद्धानाममत्सरः ।
सन्तोषश्च वनस्थानां गुणशोभाविधिः परः।।[3]

अर्थात् पढ़े-लिखे लोगों में अभिमान न हो, धनवानों में द्वेष न हो और वनवासियों में यदि सन्तोष हो तो फिर इनके गुणों की शोभा में चार-चाँद लग जाते हैं।

आर्यशूर मूर्खता को संसार की सबसे निकृष्ट कोटिक वस्तु मानते हैं। एक स्थान पर उन्होंने कहा कि "आपत्तिग्रस्त व्यक्ति भले लोगों की कृपा का विशेषरूप से पात्र होते हैं और आपत्तियों का मूल कारण मूर्खता है अतः मूर्खता निकृष्ट कोटि की वस्तु है"-

---

1. व्याघ्री जातक, 20
2. शाश जातक, 11

अनुकम्प्या विशेषेण सतामापद्गतो ननु ।

आपादां मूलभूतत्वाद् बाल्यं चाधिगमिष्यते।।[1]

आर्यशूर एक आदर्शवादी सूक्ति के रूप में कहते हैं कि "क्रमश: समाप्ति घट जाने पर या भाग्य के फेर से नष्ट हो जाने पर यदि मित्रों के ऊपर प्रेम प्रकट किया जाय तो यह उचित हो सकता है किन्तु अपने पास विपुल सम्पत्ति होते हुए भी मित्र की सहायता स्वीकार्य हो - यह अनुचित है"-

धने तनुत्वं क्रमशो गते वा

भाग्यानुवृत्त्या क्षयमागते वा ।

विजृम्भमाणप्रणय: सुहृत्सु

शोभेत न स्फीतधन: कृशेषु ।।[2]

शरीर की सारता अभिव्यक्त करते हुए कवि ने सरलतम शब्दों में निम्नलिखित रुचिर सूक्ति कही है-

असारस्य शरीरस्य सारो ह्येष मत: सताम् ।

यत्परेषां हितार्थेषु साधनीक्रियते बुधै: ।।[3]

अर्थात् भले लोगों के मतानुसार इस असार शरीर का सार परोपकार मात्र है।

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. अगस्त्य जातक, 2

2. मैत्रीबलजातक, 34

3. 24 वाँ महाकपि जातक, 12

सर्वजनसंवेद्य कथन प्रस्तुत करते हुए कवि ने कहा कि "विपत्ति में धैर्य छूट जाता है, शोक में शास्त्रज्ञान नष्ट हो जाता है। संसार में ऐसा एक भी प्राणी नहीं है जो विपत्ति या शोक में पड़कर विचलित न हो जाय"—

आपत्सु विफलं धैर्यं शोके श्रुतमपार्थकम् ।
न हि तद्विद्यते भूतमाहतं यन्न कम्पते ॥[1]

सुभाषित क्या है इस विषय में भी आर्यशूर ने एक रुचिर सुभाषित कहा है—

दीप: श्रुतं मोहतम: प्रमाथी
चौराद्यहार्यं परमं धनञ्च ।
सम्मोहशत्रुव्यथनाय शस्त्रं
नयोपदेष्टा परमश्च मन्त्री ॥[2]

अर्थात् "सुभाषित कानों से सुना गया वह दीपक है जो अज्ञानरूपी अन्धकार को मिटाता है। वह ऐसा धन है जिसे चोर चुरा नहीं पाते। मोहरूप शत्रु को मिटाने वाला हथियार है और नीति-उपदेशक मन्त्री है।"

इसी प्रकार आर्यशूर की निम्नलिखित सूक्तियाँ भी कोई कम रुचिर एवं आकर्षक नहीं हैं—

उपकाराशया भक्त्या शक्त्या चैव समस्तया ।
प्रयुक्तस्यातिदु:खो हि प्रणयस्याप्रतिग्रह: ॥[3]

---

1. सुतसोम जातक 14
2. सुतसोम जातक 32
3. अगस्त्य जातक, 33

"उपकार करने की दृष्टि से यदि कोई सभक्ति यथाशक्ति किसी को कुछ उपहार देना चाहे और वह स्वीकार नहीं किया जाय तो देने वाले को इससे बड़ा कष्ट होता है"।

पापं समाचरति वीतघृणो जघन्य:

• प्राप्यापदं सघृण एव तु मध्यबुद्धि: ।

प्राणात्ययेऽपि तु न साधुजन: स्ववृत्तिं

वेलां समुद्र इव लङ्घयितुं समर्थ: ।।[1]

नीच व्यक्ति अपनी क्रूरता के ही कारण प्राणियों का वध करता है। मध्यम व्यक्ति विपत्ति आने पर ही कदाचित् कदाचार में संलग्न होता है। किन्तु साधु पुरूष तो प्राण संकट झेलकर भी सदाचार का उल्लंघन नहीं करते हैं"।

"अ~~न्न भूख को, जल प्यास को, औसधि सहित मंत्र व्या~~धि को क दूर ~~करता है, उसी तरह सन्तति के उद्योग से प्राप्त धन ही गरीबी को मिटाता है~~"।

कापालमादाय विवर्णवाससा

वरं द्विषद्वेश्मसमृद्धिरीक्षिता ।

व्यतीत्य लज्जां न तु धर्मवैशसे

सुरेन्द्रतार्थेऽप्युपसंहृतं मन: ।।[2]

---

1. शक्र जातक, 18
2. ब्राह्मण जातक, 19

"गेरुआ वस्त्र पहनकर, हाथ में भिक्षापात्र लेकर, दूसरे के घरों की समृद्धि देखना अच्छा है किन्तु निर्लज्ज होकर धर्म की हत्या करके, इन्द्र का पद पाने की भी इच्छा अनुचित ही है।"

जिह्मं शुभं वा वृषभप्रचारं गावोनुगा यद्वदनुप्रयान्ति ।
उत्क्षिप्तशङ्काङ्कुशनिर्विघट्टं प्रजास्तथैव क्षितिपस्यवृत्तिम्।।[1]

"सीधी या टेढ़ी जिस राह से साँड़ चलेगा, अनुगामिनी गायें उसी के पीछे चलती हैं। उसी तरह प्रजा निश्शंक एवं अविचल भाव से राजा के आचरण का अनुगमन करती हैं"।

इसी प्रकार अधोलिखित सूक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं-

प्रवर्तने हि दु:खस्य तिरस्कारे सुखस्य च ।
धैर्यप्रयाम: साधूनां विस्फुरन्निव गृह्यते ।।[2]

स्वेच्छाविकल्पग्रथिताश्च तास्ता
निरङ्कुशा लोककथा भ्रमन्ति ।
कुर्वीत यस्ता हृदयेऽपि ताव-
त्स्यात्सोऽपहास्य: किमुत प्रपत्ता ।।[3]

विस्मृतात्ययशङ्कानां सूक्ष्मैर्विश्वासनक्रमै: ।
विकरोत्येव विश्रम्भ: प्रमादापनयाकर: ।।[4]

---

1. उन्मादयन्ती जातक, 39
2. बिस जातक, 9
3. 20 वाँ श्रेष्ठिजातक, 17
4. हंस जातक, 24

स्नेहावबद्धानि हि मानसानि प्राणात्ययं स्वं न विचिन्तयन्ति ।
प्राणात्ययाद् दु:खतरं यदेषां सुहृज्जनस्य व्यसनातिदैन्यम् ।।[1]

" न खल्वसत्सङ्गतमस्ति भूतये"।[2]

" श्रेय: समाधत्ते यथातथाप्युपनत: सत्सङ्गम:"।[3]

असंस्तुतमसम्बन्धं दूरस्थमपि सज्जनम् ।
जनोऽन्वेति सुहृत्प्रीत्या गुणश्रीस्तत्र कारणम् ।।[4]

प्रतिसङ्ख्यानमहतां न तथा करुणात्मनाम् ।
बाधते दु:खमुत्पन्नं परानेव यथाश्रितम् ।।[5]

अयुक्तवत्साध्वपि किञ्चिदीक्ष्यते
प्रकाशतेऽसाध्वपि किञ्चिदन्यथा ।
न कार्यतत्त्वं सहसैव लक्ष्यते
विमर्शमप्राप्य विशेषहेतुभि: ।।[6]

"अभ्याससिद्धिर्हि पटूकरोति,
शिक्षागुणं कर्मसु तेषु तेषु ।।"[7]

इत्यगत्या सुरश्रेष्ठ करुणाप्रवणैरपि ।
बालस्याद्रव्यभूतस्य न दर्शनमपोष्यते ।।[8]

---

1. हंस जातक, 25
2. रुरु जातक, 30
3. सुतसोम जातक, अन्तिम गद्यांश
4. अयोगृह जातक, 5
5. क्षान्ति जातक 57
6. क्षान्ति जातक, 40
7. ब्राह्मण जातक, 13

स्थिरीकृत्यार्थिनामाशां दास्यामीति प्रतिज्ञया ।
विसंवादनरूक्षस्य वचसो नास्ति निष्कृति: ।।[1]

"यदेव याच्येत तदेव दद्यान्नानीप्सितं प्रणयतीह दत्तम् ।
किमुह्यमानस्य जलेन तोयै:,(दास्याम्यत:प्रार्थितमर्थमस्मै)।।[2]

सारादानंदानमाहुर्धनानाम्
ऐश्वर्याणां दानमाहुर्निदानम् ।
दानं श्रीमत्सज्जनत्वावदानम्
बाल्यप्रज्ञै: पांशुदानं सुदानम् ।।[3]

स्वबुद्धिविस्पन्दसमाहितेन वा
यशोऽनुकूलेन कुलोचितेन वा ।
समृद्धिमाकृष्य शुभेन कर्मणा
सपत्नतेजांस्यनुभूय भानुवत् ।।[4]

जने प्रसङ्गेन वित्तस्य सद्गतिं,
प्रबोध्य हर्षं ससुहृत्सु बन्धुषु ।
आवाप्तसम्मानविधिर्नृपादपि,
श्रिया परिष्वक्त इवाभिकामया ।।[5]

अथप्रदाने प्रजृम्भितक्रम:
सुखेषु वा नैति जनस्य वाच्यताम् ।
अजातपक्ष: खमिवारुरुक्षा
विघातभावक्केवलया तु दित्सया ।।[6]

---

1. शिवि जातक, 23,
2. शिवि जातक,25

दारान्मनोऽभिलषितांस्तनयान्प्रभुत्व-

मर्थानभीप्सितविशालतरांश्च लब्ध्वा ।

येनाभितप्त मतिरेति न जातु तृप्तिं

लोभानल: स हृदयं मम नाभ्युपेयात् ॥[1]

अर्थादपि भ्रंसमवाप्नुवन्ति वर्णप्रसादाद्यशस: सुखाच्च

येनाभिभूता: द्विषतेव सत्त्वा: स द्वेषवह्निर्मम दूरत: स्यात्॥[2]

कथञ्चिदपि शक्येत यदि बालश्चिकित्सितुम् ।

तद्धितोद्योगनिर्यत्न: कथं स्यादिति मद्विध: ॥[3]

" न परदु:खातुरा: स्वसुखमवेक्षन्ते महाकारुणिका:"।[4]

प्रयत्नलभ्या यदयत्ननाशिनी

न तृप्तिसौख्याय कुत: प्रशान्तये ।

भवांश्रया सम्पदतो न कामये

सुरेन्द्रलक्ष्मीमपि किम्वथेतराम् ॥[5]

"आत्मलज्जयैव सत्पुरुषा नाचारवेलां लङ्घयन्ति"।[6]

स्वकार्यपर्याकुलमानसत्वात्पश्येन्न वाऽन्यश्चरितं परस्य

रागार्पितैग्रमति: स्वयं तु पापं प्रकुर्वन्नियमेन वेत्ति ॥[7]

---

1• अगस्त्य जातक0 15

2• अगस्त्य जातक- 18

3• अगस्त्य जातक, 23

4• मैत्री जातक ,प्रथम वाक्य

5• मैत्री बल जातक, 53 श्लोक

6• ब्राह्मण जातक , प्रथम वाक्य

निमित्तमासाद्य यदेव किञ्चन

स्वधर्ममार्गं विसृजन्ति बालिशाः ।

तपः श्रुतज्ञानधनास्तु साधवो

न यान्ति कृच्छ्रे परमेऽपि विक्रियाम्।।[1]

नापत्प्रतीकारविधिर्विषादस्तस्मादलं दैन्यपरिग्रहेण ।

धैर्यात्तु कार्यप्रतिपत्तिदक्षाः कृच्छ्राण्यकृच्छ्रेण समुत्तरन्ति।।[2]

विषाददैन्यं व्यवधूय तस्मात्कार्यावकाशं क्रिययाभजध्वम् ।

प्राज्ञस्य धैर्यज्ज्वलितं हि तेजः सर्वार्थसिद्धिग्रहणाग्रहस्तः ।।[3]

कुम्भजातक में शराब के दुष्परिणाम के बारे में आर्यशूर ने श्लोक 13 से लेकर श्लोक 27 तक मनोहारी सूक्तियाँ कही हैं।

जाते न दृश्यते यस्मिन्नजाते साधु दृश्यते ।

अभून्मे स न मुक्तश्च क्रोधः स्वाश्रयबाधनः ।।[4]

येन जातेन नन्दन्ति नराणामहितैषिणः ।

सोऽभून्मे न विमुक्तश्च क्रोधः शात्रवनन्दनः ।।[5]

उत्पद्यमाने यस्मिंश्च सदर्थं न प्रपद्यते ।

तमन्धीकरणं राजन्नहं क्रोधमशीशमम् ।।[6]

---

1. ब्राह्मण जातक श्लोक 20
2. सुपारगजातक, 10
3. सुपारगजातक, 11
4. चुड्डबोधिजातक, श्लोक नं0 22
5. चुड्डबोधिजातक, श्लोक नं0 23

येनाभिभूत: कुशलं जहाति

प्राप्तादपि भ्रश्यत एव चार्थात् ।

ते रोषमुग्रग्रहवैकृताभं

स्फुरन्तमेवानयमन्तमन्त:

काष्ठाद्यथाग्नि: परिमथ्यमाना-

-दुदेति तस्यैव पराभवाय ।

मिथ्याविकल्पै: समुदीर्यमाण-

स्तथा नरस्यात्मवधाय रोष:।।[2]

दहनमिव विजृम्भमाणरौद्रं

शमयति यो हृदयज्वरं न रोषम्।

लघुरयमिति हीयतेऽस्य कीर्ति:

कुमुदसखीव शशिप्रभा प्रभाते ।।[3]

परजनदुरितान्यचिन्तयित्वा

रिपुमिव पश्यति यस्तु रोषमेव ।

विकसति नियमेन तस्य कीर्ति:

शशिन इवाभिनवस्य मण्डलश्री: ।।[4]

न भात्यलंकारगुणान्वितोऽपि

क्रोधाग्निना संहृतवर्णशोभ: ।

सरोषशल्ये हृदये च दु:खं

महार्हशय्याङ्कगतोऽपि शेते ।।[5]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. बुद्धबोधिजातक, श्लोक नं० 25

2. बुद्धबोधिजातक, श्लोक नं० 26    3. बुद्धबोधिजातक श्लोक-27

विस्मृत्य चात्मक्षमसिद्धिपक्षं रोषात्प्रयात्येव तदुत्पथेन ।
निहीयतेन येन यशोऽर्थसिद्धया तामिस्रपक्षेन्दुरिवात्मलक्ष्म्या।।[1]

रोषेण गच्छत्यनयप्रपातं निवार्यमाणोऽपि सुहृज्जनेन ।
प्रायेण वैरस्य जडत्वमेति हिताहितावेक्षणमन्दबुद्धिः ।।[2]

क्रोधाच्च सात्मीकृतपापकर्मा
शोचत्यपायेषु समाशतानि ।
अतः परं किं रिपवश्च कुर्यु
स्तोव्रापकारोद्धतमन्यवोऽपि ।।[3]

न्तःसपत्नः कोपोऽयं तदेवं विदित मम ।
स्यावलेपप्रसरं कः पुमान् मर्षयिष्यति ।।[4]

पशुन्यवज्राशनिसन्निपाते
भीमस्वने चाशनिसन्निपाते ।
विस्रम्भभावान्मानुषमात्रधैर्यः
स्यान्निर्विकारो यदि नाम कश्चित्।।[5]

---

1. चुड्डबोधि जातक, श्लोक-30
2. चुड्डबोधि जातक,श्लोक-31
3. चुड्डबोधि जातक, श्लोक-32
4. चुड्डबोधि जातक, श्लोक-33
5. महाबोधि जातक,श्लोक-05

असह्यदु:खोदयपीतमानसा: पतन्ति चैवं व्यसनेषु मानुषा: ।
प्रलोभ्यमाना: फलसम्पदाशया पतङ्गमूर्खा इव दोपशोभया ।।[1]

मन: प्रदोषस्तु परात्मनोर्हितं विनिर्दहन्नग्निरिव प्रवर्तते ।
अत: प्रयत्नेन स पापभीरुणा जनेन वर्ज्य: प्रतिपक्षसंश्रयात् ।।[2]

शुभास्वभावातिशय: प्रसिद्ध: पुण्येन कीर्त्या च परा विवृद्धि: ।
अतोयसम्पर्ककृता विशुद्धिस्तैस्तैर्गुणौघैश्च परा समृद्धि: ।।[3]

परोपरोपरोधेषु सदानभिज्ञा व्यवस्थिति: सत्त्वतां मनोज्ञा ।
गुणाभिनिर्वर्तितवात्सज्ञा क्षमेति लोकार्थकरीकृपाज्ञा ।।[4]

अलंक्रिया शक्तिसमन्वितानां तपोधनानां बलसम्प्रदाया ।
व्यापाददावानलवारिधारा प्रत्येह च क्षान्तिरनर्थशान्ति: ।।[5]

नित्यं क्षमायाश्च ननु काल: परायत्ततया दुराप: ।
परेण तस्मिन्नुपपादिते च तत्रैव कोपप्रणयक्रम: क: ।।[6]

प्रसाध्य सौख्यं व्यसनं निवर्त्य वा सहापि दु:खेन परस्य सज्जन: ।
उपैति तां प्रीतिविशेषसम्पदं न यां स्वसौख्येषु सुखागतेष्वपि ।।[7]

---

1. रूरु जातक ,33
2. क्षान्ति जातक, 22
3. क्षान्ति जातक, 25
4. क्षान्ति जातक, 26
5. क्षान्ति जातक, 27
6. महिष जातक, 14
7. शतपत्र जातक, श्लोक 8

आर्ते प्रवृत्तिः साधूनां कृपया न तु लिप्सया ।
तामवैतु परो मा वा तत्र कोपस्य को विधिः ।।[1]

वञ्चना सा च तस्यैव यन्न वेत्ति कृतं परः ।
को हि प्रत्युपकारार्थी तस्य भूयः करिष्यति ।।[2]

कृतश्चेद्धर्म इत्येव कस्तत्रानुशयः पुनः ।
अथ प्रत्युपकारार्थमृणदानं न तत्कृतम् ।।[3]

उपकृतं किल वेत्ति न मे पर-
स्तदपकारमिति प्रकरोति यः ।
ननु विशोध्य गुणैः स यशस्तनुं
द्विरदवृत्तिमभिप्रतिपद्यते ।।[4]

वात्सल्यसौम्यहृदयस्तु सुहृत्सु कीर्तिं
विश्वासभावमुपकारसुखं च तेभ्यः ।।
प्राप्नोति सन्नतिगुणं मनसः प्रहर्षं
दुर्धर्षतां च रिपुभिस्त्रिदशालयं च ।।[5]

उपकर्त्ता तु धर्मेण परतस्तत्फलेन च ।
योगमायाति नियमादिहापि यशसः श्रिया ।।[6]

---

1. शतपत्र जातक, श्लोक 16
2. शतपत्र जातक, श्लोक 17
3. शतपत्र जातक, श्लोक 20
4. शतपत्र जातक, श्लोक 22
5. 24 वाँ महाकपि जातक, श्लोक 41
6. शतपत्र जातक-18

आदेयतरतां यान्ति कुलरूपगुणाद् गुणाः ।
आश्रयातिशयेनेव चन्द्रस्य किरणाङ्कुराः ।।[1]

गृह्ना नानोहमानस्य न चैवावदतो मृषा ।
न चानिक्षिप्तदण्डस्य परेषामनिकुर्वतः ।।[2]

यदि धर्ममुपैति नास्ति गेहमथ गेहाभिमुखः कुतोऽस्य धर्मः ।
प्रशमैकरसो हि धर्ममार्गो गृहसिद्धिश्च पराक्रमक्रमेण ।।[3]

सुखमत्र कुतः कथं कदा वा
परिकल्पप्रणयं न चेदुपैति ।
विषयोपनिवेशनेऽपि मोहाद्
व्रणकण्डूयनवत्सुखाभिमानः ।।[4]

मदमानमोहभुजगोपलयं प्रशमाभिरामसुखविप्रलयम्
क इवाश्रयेदभिमुखं विलयं बहुतीव्रदुःखनिलयं निलयम् ।।[5]

"प्रविवेकरसज्ञानां विडम्बनेव विहिंसेव च कामाः प्रतिकूलाः भवन्ति"।[6]

---

1. अपुत्र जातक, 4
2. अपुत्र जातक, 13
3. अपुत्र जातक, 14
4. अपुत्र जातक, 18
5. अपुत्र जातक, 20
6. बिस जातक, प्रथम वाक्य

सम्भावनायां गुणभावनायां

सन्दृश्यमानो हि यथा तथा वा।

विशेषतोभाति यशः प्रसिद्ध्या

स्यात्वन्यथा शुष्क इवोदपानः ।।[1]

वासितार्थस्वहृदयाः प्रायेण मृगपक्षिणः ।

मनुष्याः पुनरेकीयास्तद्विपर्ययनैपुणाः ।।[2]

उच्यते नाम मधुरं स्वनुबन्धिनिरत्ययम् ।

वणिजोऽपि हि कुर्वन्ति लाभसिद्ध्याशया व्ययम्।।[3]

स्नेहावनद्धानि हि मानसानि

प्राणात्ययं स्वं न विचिन्तयन्ति ।

प्राणात्ययाद् दुःखतरं यदेषां

सुहृज्जनस्य व्यसनार्तिदैन्यम् ।।[4]

अद्धा धर्मः सतामेष यत्सखा मित्रमापदि ।

न त्यजज्जीवितस्यापि हेतोर्धर्ममनुस्मरन् ।।[5]

---

1. 20 वाँ श्रेष्ठि जातक, 19
2. हंस जातक, 19
3. हंस जातक, 20
4. हंस जातक, 25
5. हंस जातक, 35

न देशमाप्नोति पराक्रमेण तं
न कोशवीर्येण न नीतिसम्पदा ।
श्रमव्ययाभ्यां नृपतिर्विनैव यं
गुणाभिजातेन पथाधिगच्छति ॥[1]

सुराधिपश्रीरपि वीक्षते गुणान्
गुणोदितानेव परैति सन्नतिः ।
गुणेभ्य एव प्रभवन्ति कीर्त्तयः
प्रभावमहात्म्यमिति श्रितं गुणान् ॥[2]

प्रजाहितं कृत्यतमं महीपतेः
तदस्य पन्था ह्युभयत्र भूतये ।
भवेच्च तद्राजनि धर्मवत्सले
नृपस्य वृत्तं हि जनोऽनुवर्त्तते ॥[3]

स्वगुणातिशयोदितैर्यशोभिर्जगदावर्जनदृष्टशक्तियोगः ।
रचनागुणमात्रसत्कृतेषु ज्वलयत्येव परेष्वमर्षवह्निम् ॥[4]

गुणाभ्यासेन साधूनां कृतं तिष्ठति चेतसि ।
भ्रस्यत्यपकृतं तस्माज्जालं पद्मदलादिव ॥[5]

---

1. हंस जातक, 94
2. हंस जातक, 95
3. हंस जातक, 98
4. महाबोधि जातक, 4
5. महाबोधि जातक, 22

यदि पद्मनालरचनादि च यत्तदहेतुकं ननु सदैव भवेत् ।
सलिलादिबीजकृतमेव तु तत् सति तत्र सम्भवति न ह्यसति।।[1]

असंयताः संयतवेषधारिणश्चरन्ति काममं भुवि भिक्षुराक्षसाः ।
विनिर्दहन्तः खलु बालिशं जनं कुदृष्टिदृष्टिविषाइवोरगः ।।[2]

"नात्मदुःखेन तथा सन्तः सन्तप्यन्ते यथापकारिणां कुशलपक्षहान्या"।[3]

"परहितोदर्कं दुःखमपि साधवो लाभमिव बहुमन्यन्ते"।[4]

अवार्यवीर्येष्वरिषु स्थितेषु जिघांसया व्याधिजरान्तकेषु
अवश्यगम्ये परलोकदुर्गे हर्षावकोशोऽत्र सचेतसः कः ।।[5]

कृतश्चेद्धर्म इत्येव कस्तत्रानुशयः पुनः ।
अथप्रत्युपकारार्थमृणदानं न तत्कृतम् ।।[6]

इस प्रकार उपर्युक्त विवृत्ति के आलोक में कवि की सूक्तिप्रियता सुस्पष्ट हो जाती है। सूक्ति-प्रेमी कवि की कृति में सूक्तियों का बाहुल्य है- इसमें किञ्चिद् द्वैविध्य नहीं है। यद्यपि डॉ० आर०सी० द्विवेदी एवं प्रो० भट्ट ने कहा है

---

1. महाबोधि जातक, 26
2. महाबोधि जातक, 60
3. 24 वाँ महाकपि जातक, प्रथम वाक्य
4. हस्ति जातक, प्रथम वाक्य
5. अयोगृह जातक, 9
6. शतपत्र जातक, 19

कि जातकमाला में प्रत्येक जातक में यहाँ-वहाँ सूक्तियाँ पायी जाती हैं, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं निकालना चाहिए कि जातकमाला में सूक्तियों का अल्पप्रयोग हुआ है अपितु हमें यह समझना चाहिए कि यहाँ-वहाँ तो सूक्तियाँ हर जातक में पायी जाती है लेकिन अनेक जातकों में अत्यधिक मात्रा में सूक्तियों का प्रयोग रुचिर एवं सुघड़ता के साथ हुआ है-ऐसा जातकमाला के अध्ययन से सुस्पष्ट हो जाता है। आर्यशूर के ही शब्दों में यदि हम उन्हें 'सुभाषितागार' भी कहें तो कोई अत्युक्ति विशेष नहीं होगी क्योंकि अगस्त्य जातक में कवि ने स्वयं शक्र द्वारा बोधिसत्त्व को "सुभाषितरत्नाकर" कहलाया है- "सुभाषितरत्नाकर: खल्वत्रभवान्"।[1]

अत: सुभाषित के क्षेत्र में कवि का आत्मविषयक स्वभिमत भी कहा जा सकता है। प्रबल पक्ष तो यह है कि प्रथमत: तो जातकमाला कथाओं का सङ्ग्रह है, तिस पर भी बौद्ध देशना को जन-जन तक पहुँचाने के लिए जातकमाला की रचना की गई है, तो फिर इसमें सूक्तियों का किञ्चित्कर प्रयोग हो-यह कथन सन्तोष-प्रद कैसे हो सकता है ?

इस प्रकार ऊपर जातकमाला में प्रयुक्त प्रमुख सूक्तियों का उल्लेख किया गया है अन्यथा सम्पूर्ण जातकमाला सूक्तियों से ओत-प्रोत है। बौद्ध उपदेष्टा कवि ने पदे-पदे सार्वभौम एवं सार्वजनीन आभाणकों का पुट देकर जातकमाला को लोकप्रिय बनाया है। कल्पना की उड़ान में ऊँचे उड़ना तो किसी भी कवि के लिए सरल है

---

1. अगस्त्य जातक, श्लोक 34 के बाद का वाक्य

किन्तु अर्थगाम्भीर्यपूर्ण से युक्त प्रबन्ध की रचना दुष्कर होती है। महान् कवि आर्यशूर की कल्पना-चातुरी अपेक्षाकृत बहुत नीची उड़ान भरती है क्योंकि कवि को जीवन का यथार्थ स्वीकार करने के लिए स्थल-स्थल पर पृथ्वीतल को भी छूना है। गद्य-काव्य साहित्य के आदि लेखक तथा बौद्ध धर्मोपदेशों को पाणिनीय व्याकरण की अनुगामिनी शुद्ध संस्कृत भाषा के माध्यम से लोक के सम्मुख प्रस्तुत करने वाले व्यक्तित्व को दृष्टिगत रखते हुए जातकमाला का सूक्ति प्रयोग न्यून नहीं कहा जा सकता है।

# नवम अध्याय

## उपसंहार

## उपसंहार

साहित्यिक महत्त्व के साथ-साथ जातकमाला का धार्मिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से भी कम महत्त्व नहीं है। उक्त ग्रन्थ की दार्शनिक पृष्ठ भूमिका के प्रतिपालनार्थ महायान बौद्ध धर्म की न्यूनाधिक चर्चा है। बौद्ध धर्म की तत्त्वमीमांसीय विवृति से यथा सम्भव पृथक् रहते हुए भी यह दृष्टि-गोचर होता है कि जातकमाला में महायान मत का आचारशास्त्रीय पक्ष तो प्रस्तुत हुआ ही है उसका तत्त्वविवेचनात्मक पक्ष भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । प्रबल पक्ष तो यह है कि दर्शनशास्त्र की विविध शाखाएँ आचारशास्त्र, तत्त्व-मीमांसा और धर्म-बौद्ध साहित्य में इस प्रकार गुम्फित हो गई हैं कि उन्हें अनन्यभाव से निरूपित करना कठिन है।

भारतीय इतिहास में समय-निर्धारण अत्यन्त दु:साध्य व्यापार माना गया है। जातकमालाकार के काल का निर्णय भी आनुमानिक ही है जो विशुद्धरूपेण बहिरङ्ग प्रमाणों पर आश्रित है। ईत्सिंग के उल्लेख एवं अजन्ता के भित्तिचित्रों पर उल्लिखित कतिपय जातकों आदि के आधार पर चतुर्थशताब्दी का जो काल निर्णय हुआ है वह भी एकान्तिक नहीं हो सकता। तथापि सुस्पष्ट प्रमाणों के अभाव में उनका पूर्वापर समय 300 ई० और 400 ई० के बीच स्वीकार करना पड़ता है।

आर्यशूर के व्यक्तित्व के विषय में अनुमानत: यही कहा जा सकता है कि वह एक प्रबुद्ध विद्वान् तथा उत्साही धर्मप्रचारक थे जिन्होंने अश्वघोष के समान ही बौद्ध साहित्य को हृदय बनाकर संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध किया।

जातकों से सुस्पष्ट है कि उनमें प्राणियों के प्रति दया कूट-कूटकर भरी थी। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रकृति के बाह्य एवं अन्तर्पर्यवेक्षण से ओतप्रोत था। प्रकृति का जितना अधिक उन्होंने साक्षात्कार किया था। हम यह तो नहीं कह सकते कि "विश्वन्तर जातक" में कवि ने अपने विगत दिनों की याद की है किन्तु उपदेश-काव्य होते हुए भी इसमें कवि ने करुणा की जो अजस्र धारा प्रवाहित की है वह मनुष्य के अन्तस्तल में उनके पैठ का स्पष्ट प्रमाण है। प्रायेण कहा जाता है कि किसी की शैली से उसके व्यक्तित्व का ज्ञान होता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आर्यशूर सरल चित्तवृत्ति के व्यक्ति थे, जिनको अपने जीवन, कला तथा शैली में भी आर्जव प्रिय था।

जातक कथाओं से तात्कालिक सामाजिक परिवेश का भी पाता चलता है। उस युग का भारत या तो मोक्षार्थी था या यक्ष-पिशाचादि उपदेवों का पूजक। लोग या तो सर्वोच्च्य अध्यात्मिक स्थिति में पहुँचकर तत्वचिन्तन करते थे या अज्ञान के सबसे निचले स्तर पर गिरकर प्रेतपूजा करते थे। इसके अतिरिक्त जीवन का तीसरा विकल्प था ही नहीं। बौद्ध या जैनों के आचार्य शून्य की ओर देखते थे और जन-साधारण प्रेतों की डर से थर-थर काँपता था। वह युग चमत्कारों का युग था। पूजा उत्सव होते थे मगर यक्षों या प्रेतों की ही पूजा होती थी।

प्रबन्ध में आर्यशूर की अश्वघोष व मातृचेट से अभिन्नता विषयक अब तक की अवधारणाओं का खण्डन और उनसे आर्यशूर की नितान्त भिन्नता प्रतिपादित है। जैसा कि उपर्युक्त है- आर्यशूर की जातकमाला, पारमितासमास तथा

सुभाषित रत्नकरण्डककथा – ये तीन कृतियाँ ही मूल संस्कृत में उपलब्ध होती हैं, अन्य तीन कृतियाँ मात्र तिब्बती अनुवाद में ही प्राप्त हैं। संस्कृत में प्राप्त इन तीनों की शैली में वैषम्य है जिससे इनके एककर्तृत्व पर शंका उठाई गई है। अत: प्रबन्ध में सकारण निर्दिष्ट है कि जातकमाला ही आर्यशूर को एकमात्र प्रामाणिक कृति है।

भगवान् बुद्ध उपदेश के समय लोककथाओं के साथ-साथ कल्पित कथाओं को भी प्रयुक्त करते थे। यही परिपाटी उनके विद्वान् शिष्यों ने अपनाई। बोधिसत्त्वावस्था में पारमिताओं के अभ्यास के द्वारा बुद्ध ने उच्च मानवीय गुण प्राप्त किये। उन गुणों के उपदेश देते समय वे कथाओं में गाथाएँ जोड़कर उन गुणों को प्रकट करते। वह गाथा सहित कथा भाग जातककथा कहलाई। भरहुत, साँची, तथा गया के स्तूपों पर केवल गद्य भाग से सम्बद्ध दृश्य अंकित हैं जिससे तथा 2, 3 श. ई. पूर्व में कथाभाग के भी पालि जातक शामिल होने का अनुमान होता है। गाथाएँ निस्सन्देह गद्य-भाग से बहुत प्राचीन हैं। अत: जातकों का मूलरूप "चरियापिटक" के समान मात्र गाथामय था किन्तु बिना कथाओं के कतिपय गाथाएँ बिल्कुल समझी ही नहीं जा सकती थीं, इसलिए उनके साथ पहले से ही विद्यमान लोककथाएँ जोड़ दी गईं। इस प्रकार गाथाएँ अत्यन्त प्राचीन भारतीय जनपदवाङ्मय का एक अंश हैं। हम देखते हैं कि जातक वाङ्मय पूर्वबुद्धकाल में आख्यानकों के रूप में विशेषत: लोककथाओं में निबद्ध था। बुद्ध के जीवनकाल से राजगृह में भिक्षुओं की प्रथम सङ्गीति तक जातक संग्रह बौद्धों के कर्मसिद्धान्त का उदाहरण मात्र था। द्वितीय संगीति तक यह जातक वाङ्मय नीति और धर्मप्रद कथाओं में परिणत हो गया। तृतीय संगीति के काल तक जातककथाओं का संग्रह खुद्दक निकाय के अन्तर्गत कर लिया गया है। दिनानुदिन इस संग्रह की वृद्धि होती गयी। पाँचवी श०ई०में

बोधिसत्त्व के पूर्वजन्मों के बारे में जातककथा का अलग संग्रह हुआ। इन गाथाओं का गद्य और पद्य में विस्तार कब और कैसे हुआ, आर्यशूर ने फिर 34 गाथाओं का चुनकर संस्कृत अनुवाद क्यों किया-यह ऐतिहासिक अन्वेषण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रकार जातकों के उद्गम, स्वरूप प्राचीनता आदि के साथ जातकट्ठ-कथा के लेखक के विषय में विस्तृत चर्चा है और निषेधात्मक तथा विध्यात्मक उभय-विध साक्ष्यों से आचार्य बुद्धघोष ही पालि जातकट्ठकथा के लेखक सिद्ध होते हैं। "जातकट्ठकथा" और "जातकट्ठवण्णना" को पृथक्-पृथक् लेखकों की अलग-अलग रचना मानने वाली भ्रान्त धारणा का भी निरा-करण है।

बोधिसत्त्व की अवधारणा एवं आदर्श विषयक विस्तृत विवेचन है। अर्हत् और प्रत्येक बुद्ध का परम लक्ष्य वैयक्तिक निर्वाण ही था किन्तु महायान में बोधिसत्त्व को निर्वाण तब तक स्वीकार्य नहीं था, जब तक कि हर व्यक्ति निर्मुक्त न हो जाय। बोधिसत्त्व विषयक हीनयानी दृष्टिकोण का महायान में स्वाभाविक विकास पाया जाता है। हीनयानी परम्परा में बुद्ध व बोधिसत्त्व की असाधारणता मानी गई थी तथा उनके आदर्श का सफल अनुकरण सबके वश की बात नहीं थी। यह भी निश्चित है कि अनेक बुद्ध व बोधिसत्त्व मानते हुए भी अनागतबुद्धों व बोधिसत्त्वों का स्थान हीनयान में नगण्य है। दूसरी ओर महायान परम्परा में बुद्ध व बोधिसत्त्व की असाधारणता अलौकिकता में बदल गई तथापि उनका आदर्श सबके लिए अनुकरणीय बताया गया। वर्तमान बुद्ध या बोधिसत्त्वों का ही महायान में प्राधान्य है और यह तर्कसंगत भी है कि जिस कार्य का स्वयं बुद्ध

ने अनुकरण किया उसीका उसके उनके अनुयायी भी करें।

दान शीलादि दश धर्मों (पारमिताओं) के परिपालन से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। अवधेय है कि किसी एक धर्म का नितान्त पृथक् रूप से परिपालन नहीं हो सकता। बुद्ध गौतम की बोधिसत्त्वावस्था में इन दसों धर्मों का परिपालन एक साथ चल रहा था पर एक जीवन में या उस जीवन के कृत्य विशेष में किसी एक धर्म का परमभाव प्राप्त हुआ और इसी कारण तन्निमित्ता पारमिता कहलाई।

जहाँ तक पालि जातकों से जातकमाला की तुलना का प्रश्न है, पालि जातकों की शैली वर्णन प्रधान है। घटनाओं को सीधे-सादे शब्दों में कह डालना ही उनका उद्देश्य है, परन्तु गद्य पद्यात्मक आख्यान शैली में निबद्ध जातकमाला काव्य-गुणों से ओतप्रोत है। मार्मिक स्थलों का उद्घाटन इसकी विशेषता है। मानव हृदय पर आघात करने वाले तथा आवर्जक भाव-सन्तानों का भव्य विवरण देने में आर्यशूर किसी कवि से पीछे नहीं है।

गद्य-पद्यात्मक चम्पू शैली में लिखित जातकमाला बुद्ध की कीर्तिगाथाओं एवं पवित्र चरित्रों का एक मनोहर संकलन है। आर्यशूर ने कोमलकान्त पदावलियों में गाथाओं की कुसुमाञ्जलि विश्व के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। यह सरल संस्कृतनिष्ठ, प्रसादगुम्फित मनोहर काव्य है। अभिधा के द्वारा अर्थ का सुन्दर संयोजन इसकी अपनी विशेषता है। आर्यशूर के काल तक काव्यशास्त्र का कितना विकास हुआ था, कहना कठिन है किन्तु काव्यशास्त्रीय मौलिक सिद्धान्त अलंकार, गुण, रीति, दोष इत्यादि के विचार आकार ग्रहण कर चुके थे भले ही उनका

पल्लवन नहीं हुआ हो। अतः आर्यशूर अवश्य ही काव्यशास्त्रीय तथ्यों से परिचित होंगे तथापि ऐसा प्रतीत नहीं होता कि ये किसी लक्षण ग्रन्थ को सामने रखकर जातकमाला की रचना कर रहे हों। इनका उद्देश्य धर्म के प्रति लोगों को श्रद्धा उत्पन्न करना और बोधिसत्त्व के अद्भुत चरित्रों के प्रति काव्य-कुसुमाञ्जलि का अर्पण करना था। अतः इनकी जातकमाला में जो कुछ भी काव्यशास्त्रीय तत्त्व यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं वे सायास उपनिबद्ध नहीं हुए हैं।

संस्कृत आलोचना के सिद्धान्त एवं काव्यात्मा के स्वरूप -निर्धारण की पृष्ठभूमि में यदि हम देखें तो जातकमाला में रीति तथा अलंकारों का ही निवेश मिलता है। काव्यशास्त्र के महत्तर तत्त्व जैसे ध्वनि, रस तथा मम्मट सम्मत रस-धर्मरूप गुण इसमें नहीं मिलते। अतः आर्यशूर की शैली विशुद्धोक्ति से पूर्ण मानी गयी है। इस विशुद्धोक्ति से हम कालिदास की शैली के समीप नहीं पहुँच सकते क्योंकि उनकी सरल उक्तियों के पीछे रस और ध्वनि की उदार परियोजना है। आर्यशूर ने जातकमाला की शैली को कहीं भी प्रदर्शन का विषय नहीं बनाया है। सर्वत्र एकसमान अल्पसमासयुक्त गद्य की धारा प्रवाहित नजर आती है। पद्यभाग में विषयवस्तु के अनुरूप भाषा प्रवाह, प्रसादगुण एवं सौम्यशैली का गुण मिलता है। संक्षेपतः कहा जा सकता है कि जातकमाला एक कलाकार की कृति है जिसने 27 प्रकार के छन्दों का प्रयोग कर छन्दों के प्रयोग में वैदग्ध्य प्रमाणित कर दिया है।

आर्यशूर की सबसे प्रेषणीय वस्तु प्रकृतिचित्रण है। मानव प्रकृति तथा मानवेतर प्रकृति दोनों का ही इसमें समान स्थान है। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि मानव प्रकृति अध्यात्मपरक है। दूसरी ओर कथावस्तु का विस्तार करने के लिए मानवेतर प्रकृति का प्राचुर्येण प्रयोग किया गया है जिसमें प्रकृति के घोर और रमणीय दोनों ही पक्षों का सुरम्य चित्रण है। आर्यशूर को अपने धर्मप्रचार

## सहायक ग्रन्थ

(अ) पालि एवं संस्कृतग्रंथ-


1. अपदानपालि (प०मो भागो) — पधानसंसोधको जगदीशकस्सपो, विहारराजकीयेन पालिपकासनमण्डलेन पकासितं, 1959

अभिधर्मकोश — वसुबन्धु, अनु० आचार्य नरेन्द्रदेव, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1958

2. अभिधम्मत्थसंगहो — पालिग्रन्थमाला-1, सम्पादक, अनुवादक तथा व्याख्याकर भदन्त रेवतधम्म (ब्रह्मदेश) प्रकाशक- निदेशक, शोध संस्थान, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-2

3. अभिधावृत्तिमातृका — हिन्दीभाष्यानुवादकार डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी प्रकाशक -चौखम्भा विद्याभवन, संस्करण वि०सं०2C

4. अभिनवभारती — प्रकाशक- ओरियण्टल इन्स्टीटयूट बड़ोदा, 195⁴

5. अवदानकल्पलता — क्षेमेन्द्ररचित, बौद्धसंस्कृतग्रंथावली-22, सम्पादक-डॉ पी०एल० वैद्य, प्रकाशक- मिथिला विद्यापीठ दरभंगा, 1959

6. अवदानशतक — बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्स्टन०19, इडिटेड बाइ पी०एल० वैद्य, पब्लिस्ड बाइ द मिथिला इन्स्टीटयूट आफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज एण्ड रिसर्च इन संस्कृत लर्निंग दरभंगा, 1958

7. अलंकारानुशीलन — लेखक-राजवंश सहाय हीरा, प्रकाशक-चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, गोपाल मन्दिर लेन, पो०बा०-8 वाराणसी प्रथम सं० 1970

| | | |
|---|---|---|
| 8• | अलंकारमहोदधि | नरेन्द्रप्रभसूरि, प्रका0 ओरियण्टल इन्स्टीटयूट, बड़ोदा 1842 |
| 9• | अलंकारशेखर | केशवमिश्रकृत, काशी संस्कृत सीरिज, प्रकाशक-चौखम्भा संस्कृत सीरीज 56 आफिस वाराणसी, 1927 |
| 10• | अलंकारसर्वस्व | रुय्यक, काव्यमाला-35 प्रकाशक भारतीय विद्या प्रकाशन 1•1यू0बी0जवाहरनगर बैंलोरोड नई दिल्ली-2•पो0बा0 108 कचौड़ीगली, बनारस, पुनर्मुद्रित संस्करण-1982 |
| • | अलंकाररत्नाकर | शोभाकर, ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, 1942 |
| 11• | उपनिषत्संग्रह: | प्रो0जे0एल0शास्त्री द्वारा सम्पादित प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना |
| 12• | औचित्यविचारचर्चा | क्षेमेन्द्ररचित, प्रकाशक निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1929 |
| 13• | काव्यरत्नाकर: | पं शिवदत्तचतुर्वेद: लेखक:, श्रीपरमात्मानन्द चतुर्वेद: प्रकाशक:, बी037/18 बिरदोपुर, वाराणसी |
| 14• | काव्यालंकारकारिका (अभिनवकाव्यशास्त्रम्) | रचयिता सनातनकवि रेवाप्रसाद द्विवेदी, 1977, प्रका0चौखम्भा सुरभारती, प्रकाशन, वाराणसी। |
| 15• | काव्यालंकारसारसंग्रह | उद्भट, प्रका0 ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, 1931 |

| | | |
|---|---|---|
| 16• | काव्यालंकारसूत्र ﴾आफ आचार्य वामन﴿ | व्याख्याकार, डॉबेचन झा, द्वितीय संस्करण, वि0सं02033 प्रका0 चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी |
| 17• | काव्यलंकारसूत्रवृत्ति | कामधेनुव्याख्या, विद्याधरी हिन्दी व्याख्या सहित, हिन्दी व्याख्याकार पं0केदारनाथशर्मा प्रका0चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम सं0 2034 |
| 18• | कविकण्ठाभरण | क्षेमेन्द्र, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, 1929 |
| 19• | चन्द्रलोक | जयदेव पीयूषवर्षी, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, 1939 |
| 20• | चुल्लनिद्देशपालि | खुद्दकनिकाय ग्रन्थ-4, प्रधान संसोधक जगदीसकस्सप, पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहारसरकार, 1959 |
| 21• | चुल्लवग्ग | नालंदा देवनागरी पालि सीरीज, जनरल इडिटर जगदीशकस्सप, प्रका0 पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहारसरकार, 1956 |
| 22• | छन्दस्सार: | पं0जगन्नाथ पाण्डे; चौखम्भा संस्कृत, सीरीज आफिस, 1930 |
| 23• | जातकट्ठकथा | ग्रंथ प्रथम, भिक्षु धर्मरक्षित द्वारा सम्पादित प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ काशी ﴾ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी पालि ग्रंथमाला-ग्रंथनं01﴿ |

| | | |
|---|---|---|
| 24. | जातकपारिजात | सुब्रह्मण्यमशास्त्री, रंजना पब्लिकेशन, दिल्ली, 1979 |
| 25. | जातकपालि- | पठमोदुतियो भागो, पधानसंसोधको भिक्खु जगदीसकस्सपो, बिहारराजकीयपालिपकासन मण्डलेन पकासिता, 1959 |
| 26. | जातकाभरणम् | ढुण्ढिराज दैवज्ञ, हिन्दी विमलाटीका सहित, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, 19 |
| 27. | जातकमाला | आर्यशूर, पी0एल0वैद्य द्वारा सम्पादित, प्रकाशक मिथिला इन्स्टीट्यूट आफ पोस्ट ग्रेजुएटस्टडी एण्ड रिसर्च इन संस्कृत लर्निंगदरभंगा, 1959 |
| 28. | जातकमाला | आर्यशूर, सम्पादक पं0बटुकनाथा शास्त्री, प्रका0मास्टर खिलाड़ी एण्ड सन्स, वाराणसी, संस्करण 1997 सम्वत् |
| 29. | जातकमाला | आर्यशूर, रमाचन्द्रवर्मा द्वारा सम्पादित, प्रकाशित साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस सिटी सं01981 |
| 30. | तत्त्वसंग्रह: | आचार्यशान्तरक्षितविरचित:, श्रकमलशीलकृत पञ्जिकोपेत:, बौद्धभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1 |
| 31. | थेरगाथा | भिक्षु धर्मरत्न द्वारासम्पादित, महाबोधिसभा सारनाथ, वाराणसी, 1955 |
| 32. | दशरूपक | व्याख्याकार भोलाशंकर व्यास चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी-1, 1967 |

41• पालितिपिटकसद्दानुक्कमणिका — पालि ग्रंथमाला-4
पालि विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय, वाराणसी द्वारा सम्पादित, 1977

42; प्रतापरुद्रयशोभूषण — विद्यानाथ, गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, 1909

43• बुद्धशतक — लेखक पं0 रामचन्द्रभारती
प्रकाशक-भिक्षुमहानाम, सारनाथ वाराणसी
वि0सं02001

44• बोधिचर्यावतार: — बौद्धसंस्कृतग्रंथावली-12, शान्तिदेवरचित, पी0एल0 वैद्य द्वारा सम्पादित,
प्रकाशक-मिथिला इन्स्टीट्यूट दरभंगा, बिहार, 19

45• मिलिन्दपञ्हो — संस्कृत छायाकार एवं सम्पादक डॉ0जगन्नाथ पाठक, मोतीलालबनारसीदास, वाराणसी, 1960

46• महायानसूत्रालंकार: — असंगविरचित, सम्पादक-डॉ0बगची, निदेशक-मिथि इन्स्टीट्यूट आफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडी एण्ड रिसर्च इन संस्कृत लर्निंग, 1970

47• महायानसूत्रसंग्रह — 1खण्ड, बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्सट 17 सम्पा0पी0एल0 वैद्य प्रका0मिथिला इन्स्टीयूट, दरभंगा, बिहार, 1961

48• महावग्ग — नवनालन्दा पालि देवनागरी सीरीज, 1956
सम्पादक-जगदीसकस्सप,
प्रका0 पालि पब्लिकेशन बोर्ड बिहार सरकार

49• महावास्तु अवदान — ग्रंथ 1 बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्स्ट 14, सम्पादक-डॉ0बागची, प्रका0मिथिला इन्स्टीट्यूट - दरभंगा, बिहार, 1970

50 महावंशटीका — पधानसंसोधको जगदीसकस्सपो, 1971। सम्पादक-श्रीधर वासुदेव सोहोनी, मुख्यवितरक चौखम्भा संस्कृत सीरिज, आफिस, वाराणसी

51 यमकपालि — प्रथम, द्वितीय, - तृतीयभाग, भिक्खुजगदीस कस्सप द्वारा प्रकाशित, 1961। प्रकाशक-पालि प्रकाशन बोर्ड बिहार सरकार

52• रसकौस्तुभ — वेणीदत्तकृत, सम्पादक एवं व्याख्याकार डॉ0 ब्रह्ममित्र अवस्थी, 1978 इन्दुप्रकाशन 8/3रूपनगर, दिल्ली 110007

53• रसगंगाधर — पं0राजजगन्नाथकृत, व्याख्याकार पं0मदन मोहन झा, प्रकाशक-चौखम्भा विद्याभवन, चौक वाराणसी, 1955

54• ललितविस्तर — बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्स्ट-1, सम्पादक डॉ0पी0एल0 वैद्य, मिथिलाविद्यापीठ द्वारा प्रकाशित, 1958

55• वाक्यपदीय — भर्तृहरिकृत, प्रका0 सरस्वती भवन ग्रंथमाला, वाराणसी, 1963

56• वाग्भट्टालंकार — वाग्भट्टकृत, व्यंकटेश्वर प्रेस बम्बई, 20/3 सं0

57• वाग्वल्लभ: — श्रीदु:खभञ्जन, प्रका0चौख0संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी सिटी, 1933

58• वाल्मीकीयरामायण — प्रथम एवं द्वितीय भाग, अनुवादक रामनारायण-दत्तशास्त्री, प्रकाशक-मोतीलाल जालान, गीता प्रेस गोरखपुर

59• विमर्शिनी — जयरथकृत (अलंकारसर्वस्वविमर्शिनी) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1939

60• विशुद्धिमग्गो — पठमो, दुतियो भागे, प्रधान सम्पादक बद्रीनाथ शुक्ला, डॉ रेवत धम्म द्वारा पुनर्सम्पादित, प्रकाशक निदेशक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, वाराणसेय संस्कृत वि०वि०वाराणसी, 1969

61• व्यक्तिविवेक — व्याख्याकार डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1979

62• वृत्तरत्नाकरम् — भट्टकेदार, सम्पादक-श्रीधरानन्दशास्त्री, पंजाब संस्कृतपुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाजार लाहौर-1, सं०1994

63• वृत्तरत्नाकरम् तथा छन्दोमञ्जरी — केदारभट्ट तथा गंगादास, कलकत्ता, 1915 ई०

64 वृत्तविवेचनम् — दुर्गासहायविरचितम्, सम्पादक के०वी०शर्मा, प्रका० विश्वेश्वरानन्द इन्स्टीट्यूट, पी०ओ० साधु आश्रम होशियारपुर, पंजाब, 1969

65• शतपथब्राह्मणान्तर्गतानामाख्यानानां विकासक्रमदृष्ट्या समीक्षात्मकमध्ययनम्" — पी०एच०डी०थीसिस, शेषनाथ द्विवेदी, जी०एन० झा, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद

66• शिक्षासमुच्चय: — बौद्ध संस्कृत ग्रंथावली-11, सम्पादक डॉ०पी०एल०वैद्य, मिथिला इन्स्टट्यूट दरभंगा, बिहार 1961

67• श्रीमद्भागवद्गीता — (शांकरभाष्यसहित) अनु०हरेकृष्ण दास गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं०2018

68• श्रुतबोध — कालिदासविरचित, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस-वाराणसी

69. श्रृंगारतिलक (रूद्रट) सहृदयलीला (रूय्यक) — सम्पादक-डा0आर0पिशल, प्रका0प्राच्य प्रकाशन जगतगंज, वाराणसी, I संस्करण 1968

70. सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम् — बौद्धसंस्कृत ट06 सम्पादक-डॉ0पी0एल0वैद्य, मिथिला इन्स्टीट्यूट दरभंगा, बिहार, 1960

71. सरस्वतीकण्ठाभरण — व्याख्याकार कामेश्वरनाथमिश्र, प्रका0-चौखम्भा ओरिएण्टल सीरीज, वाराणसी, 1976

72. साहित्यचूडामणि — (काव्यप्रकाशटीका) भट्टगोपालकृत, अनन्तशयन संस्कृत ग्रंथावलि 1926, 1930

73. साहित्यदर्पण — (विश्वनाथाचार्य), श्रीदुर्गाप्रसादद्विवेदी द्वारा संकलित, प्रका0पाणिनि, 4225 ए, स्ट्रीट न01, अन्सारी रोड, दरयागंज न्यूदेल्ही, 1982

74. साहित्यरत्नकोशेबौद्ध संग्रह: — नलिनाक्षदत्त द्वारा सम्पादित, प्रका0साहित्य आकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली, 1962

75. सुभाषितावलि: — कश्मीरी कवि वल्लभदेव द्वारा संकलित अनुवा0रामचन्द्र मालवीय, प्रका0आनन्दवन्धु, विवेकानन्दनगर, जगतगंज, वाराणसी-2, 1974

76. सूक्तिमुक्तावलि: — जल्हण, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, 1938

(ख)

## हिन्दीग्रंथ


1• अभिनवरससिद्धान्त — सम्पादक तथा टीकाकार डॉ० दशरथ द्विवेदी, प्रका०विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षीभवन, चौक वाराणसी, प्रथम सं० 1973

2• अशोक के अभिलेख — डॉ०राजबली पाण्डेय, प्रका० ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी-1 1 संस्करण 2022 सं०

3• अलंकारों का क्रमिक विकास लेखक श्री पुरुषोत्तमशर्माचतुर्वेदी, सम्पादक-शिवदत्तशर्मा चतुर्वेदी, प्रका० सुन्दरलालजैन, मोतीलालबनारसीदास, वाराणसी, 1सं०1967

4• अलंकारमीमांसा — डॉ०रामचन्द्र द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड जवाहरनगर, दिल्ली-7, प्रथम सं०1965

5• आचार्यबुद्धघोष व उनकी अट्ठकथाएं — लेखक-डॉ०शिवचरणलाल जैन, प्रका०अल्पना प्रकाशन, अन्सारी रोड, दरयागंज, दिल्ली।

6• उपनिषद्वाणी — लेखक-स्वामी विष्णुतीर्थ, प्रकाशक श्री साधना-ग्रंथमाला प्रकाशनसमिति, नारायणकुटी सन्यास आश्रम देवास(म०प्र०), 1964

7• औचित्यविचारचर्चा — अनु०चौ०श्रीनारायण सिंह, प्रका० हरिहर प्रकाशन श्रीराष्ट्रभाषा विद्यालय रामनगर, वाराणसी, सं०2017 वि०

8• कथासरित्सागर — 1, 2, 3खण्ड, अनु0जटाशंकर झा, श्री प्रफुल्लचन्द्रओझा
प्रकाशक-बिहारराष्ट्रभाषा परिषद, पटना-4,
1973

9• काव्यपरीक्षा — श्रीवत्सलाञ्छन, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा,
बिहार, 1956

10• काव्यशास्त्र के परिदृश्य — डॉ0सत्यदेव चौधरी,
प्रकाशक-अलंकार प्रकाशन झील दिल्ली
110051, 1975

11• काव्यशास्त्रीयनिबन्ध — डॉ0सत्यदेव चौधरी,
वासुदेव प्रकाशन दिल्ली-9, 1963

12• काव्यशास्त्रमार्गदर्शन — लेखक-कृष्णकुमारगोस्वामी,
प्रकाशक-एस0ई0एस0एण्ड कम्पनी, फव्वारा,
दिल्ली-6, 1970

13• कवि और काव्यशास्त्र — प्रो0 सुरेश चन्द्र पाण्डे,
राका प्रकाशन इलाहाबाद, 1981
400 ए, मोतीलालनेहरूरोड, इलाहाबाद

14• गीतादर्शन — प्रवचन, भगवान रजनीश,
प्रकाशक स्वामी गोविन्दसिद्धार्थ, अध्यक्ष महाराष्ट्र
राज्य, नवसन्यास अन्तर्राष्ट्रीय, ए टू जेड इन्ड-
स्ट्रियल एस्टेट, फर्गुसन रोड, लोअर परेल, बम्बई
1974

15• जातक (1से 6खण्ड) — आनन्दकौशल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग

16• जातककथा — आनन्दकौशल्यायन, सस्तासाहित्यमण्डल, प्रकाशन

17. जातककालीन भारतीय संस्कृति — मोहनलाल महतो वियोगी, विहारराष्ट्रभाषा परिषद पटना, 1958

18. जातकपद्धति — केशवपण्डित, सम्पादक रामाधीर शर्मा, खेलाड़ी एण्ड सन्स, वाराणसी, 1948

19. जातकमाला — आर्यशूर, सम्पादक व अनुवादक सूर्यनारायण चौधरी, प्रका० मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी, प्र० ।। सं० 1971

20. जातकमाला एक अध्ययन — डॉ० कमलाकान्त मिश्र, प्रका०-प्राचार्य, गंगानाथा झा, केन्द्रीय संस्कृत अनुसंधानसंस्थान, इलाहाबाद, 1977

21. दर्शन संग्रह (भारतीय दर्शन का सामान्य विवरण) — ले० डॉ० दीवानचन्द्र, हिन्दीसमिति ग्रंथमाला -। प्रकाशनभवन, सूचना विभाग, लखनऊ, उ०प्र०, 1958

22. धर्म और दर्शन — डॉ० बल्देव उपाध्याय, प्रकाशक शारदा मन्दिर 20/17, गणेशदीक्षित लेन, वाराणसी

23. धर्मदर्शन की रूपरेखा — हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, 1977

24. निदानकथा — बुद्धघोषविरचित, सम्पादक तथा अनुवादक-डॉ० महेश तिवारी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी

25. पालिसाहित्य का इतिहास — डा० भरत सिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, प्रयाग, 1986

26. पालिसाहित्य का इतिहास — राहुल सांस्कृत्यायन, विद्यामन्दिर प्रेस वाराण 1963

28• प्राचीनभारतका सामाजिक इतिहास — डॉ० जयशंकर मिश्र, बिहार हिन्दी, ग्रंथ अकादमी, प्रेमचन्द्र मार्ग, राजेन्द्र नगर, पटना, 4 सं01986

29• बुद्ध और बौद्धधर्म — आचार्य चतुरसेनशास्त्री, हिन्दी साहित्य मण्डल, बाजार, सीताराम देहली, 1947

30• बुद्धकालीन समाज और दर्शन — मदनमोहनसिंह, धर्मयुगप्रेस पटना, 1972

31• बुद्ध धर्म के उपदेश — भिक्षुधर्मरक्षित, अजन्ताप्रेस, लिमिटेड पटना-4, 1951

32• बुद्धवचनामृत — संम्पादक-शासनश्री महास्थविर महाबोधिसभा सारनाथ वाराणसी, 1956 ई0

33• बौद्धधर्म के विकाश का इतिहास — विमल चन्द्र पाण्डेय, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0प्र0सरकार

34• बौद्धधर्म-दर्शन — आचार्य नरेन्द्रदेव, विहारराष्ट्रभाषा परिषद, सम्मेलन भवन, पटना-3, 1956

35• बौद्धधर्म के विकाश का इतिहास — डॉ० गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, हिन्दी समिति सूचना विभाग उ0प्र0 सरकार, लखनऊ

36• बौद्धधर्मदर्शन तथा साहित्य — भिक्षुधमरक्षित, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बांस फाटक वाराणसी

37• बौद्धनिकायों का इतिहास — श्रीनारायण श्रीवास्तव, किशोर विद्यानिकेतन, भदैनी वाराणसी, 1981

38• बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिकझलक — परशुरामचतुर्वेदी, साहित्यभवन (प्रा0लिमि0), इलाहाबाद, 1958

| | | |
|---|---|---|
| 39. | बौद्ध संस्कृति | राहुलसांस्कृत्यायन, आधुनिकपुस्तक भवन, 30-31, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता, 1952 |
| 40. | भगवान्‌बुद्ध | धर्मानन्द कोसम्बी, राजकमल प्रकाशन लिमिटेड, बम्बई, 1956 |
| 41. | भरहुतस्तूप | मूललेखक अलेक्जेण्डर कनिंघम अनु0डॉ0तुलसीराम शर्मा, प्रका-श्री भगवान सिंह, भारतीय पब्लिशिंग हाउस बी-9/45, सोनारपुरा वाराणसी, 1975 |
| 42. | भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका | डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1963 |
| 43. | भारतीय दर्शन | डॉ0राधाकृष्णन अनुवादक नन्दकिशोर गोभिल, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरगेट दिल्ली, 1989 |
| 44. | भारतीयदर्शन | उमेशमिश्र, प्रकाशनब्यूरो, सूचना विभाग, उ0प्र0 सरकार, लखनऊ |
| 45. | भारतीय दर्शन | लेखक बल्देवउपाध्याय, शारदामन्दिर, रवीन्द्रपुरा दुर्गाकुण्ड, वाराणसी-5 |
| 46. | भारतीयदर्शन और मुक्तिमीमांसा | डॉ0किशोरदास स्वामी, महालक्ष्मी ग्लासवर्क्स प्राइवेट लि0, डॉ0ई0मोझेस रोड, जेकब सर्कल बम्बई |
| 47. | भारतीयदर्शन काइतिहास भाग-1 | ले0डॉ0एस0एन0दासगुप्त, अनुवादक कलानाथ शास्त्री, सुधीरकुमार प्रका0 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर- |
| 48. | भारतीयदर्शन की कहानी | डॉ0संगमलाल पाण्डेय, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता इलाहाबाद-2 |

49• माध्यमिकदर्शन — डॉ0हृदयनारायण मिश्र,आराधना ब्रदर्स, 124/152 सी0गोविन्दनगर,कानपुर-6,1980

50• रसगंगाधर एक समीक्षात्मक अध्ययन — कु0चिन्मयी माहेश्वरी, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी,ए26/2, विधालयमार्ग तिलक नगर जयपुर-4,1986 प्र0सं0

51• रससिद्धान्त — डॉ0नगेन्द्र,नेशनल पब्लिकशिंग हाउस,चन्द्रलोक जवाहर नगर,दिल्ली,1964

52• रससिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र — डॉ0 निर्मला जैन,नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जवाहरनगर,दिल्ली-7,1967

53• वाचस्पतिमिश्र द्वारा बौद्ध दर्शन का विवेचन — ले0डॉ0श्रीनिवासशास्त्री प्रका0कुरुक्षेत्र विश्वविद कुरुक्षेत्र

54• विश्वधर्मदर्शन — श्री साँवलिया विहारीलाल वर्मा,प्रका0विहार राष्ट्रभाषा परिषद,सम्मेलन भवन पटना-3

55• शब्दशक्ति — डॉ0पुरुषोत्तमदास अग्रवाल,सुशील बोहरा, बोहरा प्रकाशन,बोरड़ी का रास्ता जयपुर-3, 1970 1सं0

56• साहित्यविवेक — विश्वनाथ भट्टाचार्य,सम्पादक सातकडिमुखो-पाध्याय,मनीषा प्रकाशन वाराणसी,2032 विद

57• सौन्दर्यतत्व और काव्यसिद्धान्त — डॉ0 सुरेन्द्र वारलिङ्गे,अनुवादक-मनोहरकाले, नेशनल पब्लिंगशिंग हाउस 26एचन्द्रलोक जवाहर, नगर दिल्ली,1963

58• संस्कृत आलोचना — डॉ0 बलदेव उपाध्याय,प्रकाशन ब्यूरो,सूचना विभाग,उ0प्र0सरकार लखनऊ,1957

59• संस्कृतकविदर्शन — डॉ0भोलाशंकर व्यास,चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 11 सं0वि0सं02025

| | | |
|---|---|---|
| 60. | संस्कृत काव्यकार - | लेखकतथा सम्पादक डॉ0हरिदत्तशास्त्री प्रका0 साहित्यभण्डार सुभाषबाजार, मेरठ, II संस्करण 1970 |
| 61. | संस्कृत साहित्य का इतिहास | मूललेखक ए0बी0कीथ, अनुवादक-डॉ0मंगलदेवशास्त्री सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, नेपाली खपरा, वाराणसी |
| 62. | संस्कृत साहित्य का इतिहास | डॉ0गैरोला, चौखम्भा विधाभवन, वाराणसी, 2023 वि0सं0 |
| 63. | संस्कृत सुकविसमीक्षा | ले0 डॉ0 बल्देव उपाध्याय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, I सं0 2020 वि0सं0 |
| 64. | संस्कृतसाहित्य मेंसादृश्य-मूलक अलंकारों का विकास | ब्रह्मानन्दशर्मा, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी 1964 |
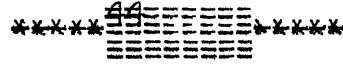
1. Alankarmanjusha — Of Batta Devashanker Purohit Published by S.R. Vaidya, Ujjain Oriental Manuscript Library, 1954.

2. The Bodhisattva Doctrine in Buddhist Sanskrit Literature — By Dr. Hardayal, Motilal Banarsidas, Indological Publisher and Book seller, Delhi, Patna, Varanasi. 1932

3. Bhoja's Shringar Prakash — V. Raghavana, published with the help of education and social welfare department, India Govt., Punarvasu, I-Shri Krishnapuram Street, Madras, 1978.

4. Budhaghosha's Parables — Translated from Burmese by Captain T. Rogers, Alok Publication, A-28 East of Kailash, New Delhi, Reprinted 1977.

5. Buddhism In India and Srilanka — J. Barthelemy Saint Hilare, Published by Mrs. Chitna Kohli for Chitna Publications, East Park Road, New Delhi-110005.

   Ed. 1975.

6. Buddhism of Tibet And Key to Middle Way — By Tenzin Gyatso, Upkar Publishing House, Pvt. Ltd., Delhi, 1975.

7. Buddhist Birth Stories (Jataka Tales) — By Rhys Davids, Published by Sri Bhagavan Singh, Indological Book House, New Delhi-1973.

8. Buddhist Conception of Spirits — B.C. Law, Luzac and Co., 46, Great Russel Street, London, W.C.S., 1936.

9. Buddhist India — By Rhys. Davids, published by Motilal, Banarshi Das, Delhi, Patna, Varanasi, 1971.

| | |
|---|---|
| 10. Buddhist Logic (Vol. I) | Th. Stcherbatsky, Bibliotheca Buddhica XXVI, Munsi Manoharlal, Publishers Pvt. Ltd., 54, Rani Jhansi Road, New Delhi. 1932. |
| 11. Buddhist Philosophy In India and Ceylon | A.B. Keith, Chaukhambha Sanskrit Series Office, Varanasi 1963. |
| 12. Buddhist Sects in India | By Nalinaksha Dutt, Motilal Banarsidas, Delhi II Ed. 1978. |
| 13. A Companion to Sanskrit Literature | By Suresh Chandra Banerji, Motilal Banarsidas, Delhi I Ed. 1971 |
| 14. The conception of Buddhist Nirvana | Th Stcherbatsky, Moti Lal Banarsidas, Delhi |
| 15. Concepts of Poetry (An Indian Approach) | Kalipada Giri, Published by Shyampada Bhattacharji, Sanskrit Pustak Bhandar, 38-Bidhan Sarani, Calcutta, 1975. |
| 16. Concept of Riti and Guna In Sanskrit Poetics | P.C. Lahiri, The University of Dacca, 1937 |
| 17. An Encyclopaedia of Religion and Ethics. | Gangaram Garga, K.M. Mittal, Mittal Publishers, 1857, Trinagar, New Delhi I Ed. 1982. |
| 18. Encyclopaedia of Religion and Ethics. | James Hastings, Edenburg, T and T. Glark, 38 George Street, Newyork, Charls Scribners Sons, 597, Fifth Avenue, 1971. |
| 19. Gilgit Manuscripts | Edicated by Nalinaksha Dutt, I, II, III Vol. 1939, 1941-42 Printed for his highness Government Jammu and Kashmir By Mr. J.C. Sarkhel at the Calcutta Oriental Press Ltd., 9, Panchanan Lane, Calcutta. |

20. History and Literature of India — By Rhys Davids, Bhartiya Publishing House, Varanasi, I Ed. 1896.

21. History of Buddhism in Ceylone — Walfol Rahula, M.D. Gunasen & Co. Ltd, 207 Olcott Mawath, Colombo, II Ed. 1966.

22. History of Buddhism in India — By Deviprasad Chattopadhyaya, Indian Institute of Advanced Study, Simla 1970.

23. History of Buddhism in India. — By Taranatha, translated from the Tibetans by Lama Chimpa, Alukachattopadhyaya, Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1970

24. A History of Indian Literature (Vol. II) — Winternitz, Oriental Book Reprint Corporation, 54, Rani Jhansi Road, New Delhi, 1972 (II Ed.).

25. A History of Pali Literature — B.C. Law (Vol. I) Kegan Paul Trench Trubner & Co. Ltd. 38, Great Russel Street, London, W.C.I., 1933.

26. History of Pali Literature (I, II Vol.) — B.C. Law, Indian Publication House, Varanasi, 1974

27. History of Sanskrit Literature — A.B. Keith, Oxford, At the Clarendon Press, 1928.

28. History of Sanskrit Pactics — P.V. Kane, Bombay 1951

29. Introduction to Pali — A.K. Warden, II Ed. 1974, Pali Text Society, London.

30. Introduction to Pali — Late Anomadarsi Barua, Bhartiya Vidya Prakashan, Kachaurigali, Varanasi, Bunglow Road Jawaharnagar, Delhi-7, II Ed. 1977.

31. An Introduction to Pali Literature — S.C.Banerji, Shankar Bhattacharya, Punthi Pustak, 34,Mohan BaganLane, Calcutta-4,1964.

32. The Jatakamala (Garland of Birth Stories of Aryasura ) — By J.S.Speyer ,Motilal Banarsidas, Indological Publishers and Book sellers ,Delhi,Patna,Varanasi.

33. The Jatakamala of Aryasura — Critically edited in Original Sanskrit text By Dr.Hendrik Kern, Indological Book House,New Delhi

34. Jatakas,Stories of Buddhist Former Births — Edited by E.B.Cowell,Cosmo Publications,10/78 ,Library Road, Delhi-6 , Reprinted 1973.

35. The Jataka — Edited by V.Fausboll published for the Pali Text Society by Messrs Luzac & Co.Ltd.,46,Great Russel Street,London,W.C.I,1962.

36. The Jatakamala of Aryasura,A Selection — By R.C.Dwivedi and Pro.M.R.Bhat, Sunderlal Jain,Motilal Banarsidas, Delhi,1966.

37. Life and Works of Buddhaghosha — B.C.Law,Nag Publications, 8A/4-A-3,Jawaharnagar,Delhi, Reprinted 1976.

38. Life of Buddhaghosha — Edward J.Thomas,Kegan Paul Trench, Trubner & Co.Ltd.,Newyork 1927.

39. Literary History of Sanskrit Budhism — G.K.Nariman ,Indological Book House,Varanasi,Delhi-1973.

40. Manual of Indian Buddhism — Hendrik Kern,Motilal Banarsidas, Delhi ,Reprinted 1974.

41. A Manual of Buddhist Philosophy — William Montgoomery,Oriental Reprinters,72, Hazaratganj,Lucknow.

42. Pali Literature and Language — Wilhelm Geiger, Oriental Books Reprint Corporation, 54, Rani Jhansi Road, New Delhi. III Reprint, 1978.

43. Significance of Jatakas — Gokuldas De, Calcutta University, 1951

44. Some Aspects of Literary Criticism — A Sankaran, University of Madras, 1942.

45. Studies in the Buddhistic Culture of India — Lalmani Josi, Motilal Banarsidass, Delhi, Revised Ed. 1977

46. Studies in the Buddhistic Jatakas — Binoy Chandra Sen, Published by P. Bhattacharya for Saraswat Library, 206, Bidhan Sarani, Calcutta, I Ed. 1974.

47. Studies in Jatakas In conception with Bodhisattva Idea. — T. Sugimoti, Ph.D. thesis of Patna University, 1966

48. A Study of the Jatakas -Analytical and Critical — M.L. Feer, Sushil Gupta Private Ltd., 22/3-C, Callif Street, Calcutta-4. 1963.

49. A Study on the Jatakas and Avadanas- Critical and Comparative — Published by Alo Sarkar & Sucharit Sen Gupta, 1981

50. Studies on some concepts of Alankarashastra — Dr. V. Raghavana, The Adyar Library and Research Centre, The Theosophical Society, Revised Ed. 1973.

51. The way to Nirvana — L. De. La Vallee Pousin, Cambridge University Press, London, 1917

(द) 

## कोश

| | | |
|---|---|---|
| 1. | अमरकोशः (दाक्षिणात्यव्याख्योपेतः) | द अड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सेण्टर अड्यार, मद्रास, 1971 |
| 2. | पालि हिन्दी कोश | भदन्त आनन्द कौशल्यायन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, 1975 |
| 3. | पौराणिक कोश | राणा प्रसाद शर्मा ज्ञानमण्डल लिमिटेड, चौक, वाराणसी, 1971 |
| 4. | प्राचीनचरित्रकोश | सिद्धेश्वरशास्त्री, भारतीय चरित्रकोशमण्डल पूना, 1964 |
| 5. | प्राचीन भारतीय संस्कृतिकोश | सम्पादक डॉ0 नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरयागंज, नई दिल्ली 1981 |
| 6. | वाचस्पत्यम् | श्री तारानाथ भट्टाचार्य, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस 1962 |
| 7. | वैदिक इण्डेक्स | मैकडॉनल एण्ड कीथ, दो भागों में, अनुवादक रामकुमार राय, चौखम्भा वाराणसी, 1962 |
| 8. | संस्कृतहिन्दी कोश | वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली-7, II सं0 1969 पुनर्मुद्रित 1984 |

11. A Dictionary of comparative Religion — By S.G.F. Brandon, London, 1970

12. Dictionary of Pali Proper Names (Vol.I, II) — By G.P. Malalasekera, Pali Text Society, London, 1974.

13. English Sanskrit Dictionary — By Vamana Shiva Ram Apte, Motilal Banarsidas, Delhi, Reprint 1987.

14. English Sanskrit Dictionary — Anundoram Barooah, Publication Board, Assam, Gauhati-3, Reprint 197

15. Oxford Dictionary (Anglo Hindi Edition) — Edited by R.K. Kapoor, Verma Book Depot, 4053, Nai Sarak, Delhi-6.

16. Pali English Dictionary — By Rhys Davids, Oriental Book Reprint Corporation, 54, Rani Jhansi Road, Delhi.

17. Sanskrit English Dictionary — Sir, Monier William, Oriental Publishers, 1488, Pataudi House, Daryaganj, Delhi.

18. Sanskrit English Dictionary — Compiled by Theodore Beneify Milan Publication Services, D17, B.K. Dutt Colony, New Delhi, I Ed. 1866, Reprint 1982.

## पत्रिकाएँ

1. "इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज", इलाहाबाद
2. "उशती"-गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, प्रयाग
3. "कल्याण" गीताप्रेस, गोरखपुर
4. नागरी प्रचारिणी पत्रिका-नागरी प्रचारिणी सभा काशी
5. "प्राच्यप्रज्ञा"-अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
6. "भारती"-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
7. "वाक्"-डक्कन कालेज पत्रिका कलकत्ता
8. विश्वसंस्कृतम्"-विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर
9. "सम्मेलनपत्रिका" - हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
10. "सरस्वतीसुषमा"-सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी
11. "संगमनी"-संस्कृत साहित्य परिषद् दारागंज प्रयाग

1. Adyar Library Bulletin Adyar ,Madras
2. Allahabad University Studies
3. Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute,Poona.
4. Annals of Baroda Oriental Research Institute ( The problems of the classification of Alankars-P.K.Gode,Vol. II,1921,PP 69-72).
5. Annals of Oriental Research,Adyar University,Madras.
6. Bulletin of Daccan College Research Institute, Poona.
7. Calcutta Oriental Journal (Rasabhas in Alankara Literature-S.P.Bhattacharya, Vol.II 1935).
8. The Calcutta Review (University of Calcutta )
9. Indian Antiquary
10. Indian Antiquary,Journal of Dricental Research , Edited by Jas Burgess, Indological Reprint Corporation,Delhi 1971.
11. Indological Journal of Vishveshvaranand Vedic Research Institute,Hoshyarpur.
12. Journal of the American Oriental Society,New Haven,U.S.A.
13. Journal of Asiatic Society of Bombay
14. Journal of Asiatic Society of Bengal,Calcutta.
15. Journal of Calcutta Review
16. Journal of the Department of Letters,University of Calcutta.

17. Journal of Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Allahabad.

18. Journal of International Dayanand Vidyapeetha, New Delhi

19. Journal of the Pali Text Society, edited by Rhys. Davids, Published for the Pali Text Society by Henery Prowde, Oxford University Press.

20. Sanskrit And Indological Studies, Punjab University, Hoshiyarpur.

21. 'Pragya' Banaras Hindu University Journal Varanasi.

22. 'Studies', Rajasthan University Journal, Jaipur.